THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

मेरुतुङ्गाचार्य कृत जैनमेघदूतम् का समीक्षात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोधप्रबन्ध

शोधकर्त्री

सीमा द्विवेदी

शोधनिर्देशिका

प्रो० राजलक्ष्मी वर्मा

संस्कृतविभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2002

प्रस्तावना

जैन धर्मावलम्बी कविजनो ने अपनी काव्यरचना द्वारा संस्कृत-साहित्य के बहुमुखी विकास मे अपना विशेष योगदान दिया है। सर्वप्रथम सामन्तभद्र ने संस्कृत-भाषा मे भक्ति रस से ओत-प्रोत स्त्रोतों की रचना कर संस्कृत काव्य का मङ्गलाचरण किया। तदन्तर अनेक जैनकवियो ने चरितकाव्यो, महाकाव्यो व दूतकाव्यों की रचना की यह एक अल्पज्ञात तथ्य है कि जैन धर्म के सिद्धान्तो को लेकर जैन कवियों ने संस्कृत में दूतकाव्यों की रचना की है। प्रायः कालिदास द्वारा विरचित मेघदूतम् का ही नाम अधिक प्रख्यात है। जैन कवियो ने मेघदूत के समानजैन मेघदूतम् , पवनदूतम् , शीलदूतम् आदि अनेक दूतकाव्यो की रचना की है। जहां पवनदूतम् , शीलदूतम् पार्श्वाभ्युदय आदि की रचना मेघदूतम् की समस्यापूर्ति के लिए की गई है वही आचार्य मेरुतुङ्ग ने जैनमेघदूतम् की एक स्वतन्त्र काव्य के रूप में रचना की है। इसमे कवि ने विप्रलम्भ श्रृङ्गार रस को प्रधान मानते हुए काव्य का पर्यवसान शान्त रस में किया है। जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को आधार मानकर इस काव्य का प्रणयन किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय 'आचार्य मेरुतुङ्ग कृत जैनमेघदूतम् का समीक्षात्मक अध्ययन'। इनमें जैनमेघदूतम् के विविध पक्षों पर गम्भीरता से विचार करने का प्रयास किया गया है। इस शोध-प्रबन्ध में आठ परिच्छेद है।

प्रथम अध्याय दूतकाव्य की परम्परा से सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत 'दूत' शब्द की व्युत्पत्ति पर संस्कृत हिन्दी शब्दकोष, अभिधान चिन्तामणि, अग्निपुराण आदि ग्रन्थो के अनुसार कियाहै। दूत काव्यों के प्रारम्भिक स्त्रोत

ऋग्वेद व वाल्मीकि रामायण, महाभारत श्रीमद्भगवत, बौग०जातक कथाएँ

दूतकाव्यो को दो भागो मे विभाजित कर उनकी गवेषणात्मक समीक्षा की गई है। दूत काव्यों का वर्गीकरण जैन जैनेतर काव्यो की दृष्टि से किया गया है।

दूसरे अध्याय में आचार्य मेरूतुङ्ग के व्यक्तित्व एवं कृतित्वपर विचार किया गया है। इसमे आचार्य मेरूतुङ्ग के स्थिति काल जीवन परिचय, उनके जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण घटनाओं व रचनाओं की चर्चा की गई है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है कथावस्तु और चरित्राङ्कन। इस अध्याय के अन्तर्गत काव्य की कथावस्तु तथा कवि की चरित्राङ्कन शैली का समीक्षात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का विषय है - जैनमेघदूतम् की रस योजना। इस अध्याय में साहित्य-शास्त्र के विभिन्न विद्वानों के अनुसार रसतत्त्व निरूपण किया गया है। विभिन्न रसो के स्वरूप का भी विश्लेषण करने की चेष्टा की गई है। जैनमेघदूतम् में उपलब्ध विभिन्न रसों के चित्रण की विशेषताओं तथा काव्य के अङ्गी व अङ्गभूत रसों की समालोचना इस अध्याय का विचारणीय विषय है।

काव्य शिल्प नामक पञ्चम अध्याय में काव्य की भाषा शैली गुण रीति, अलङ्कार, छन्द आदि तत्त्वों व उनके प्रयोग की दृष्टि से मेरूतुङ्गाचार्य की कविता का समीक्षात्मक आकलन प्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय 'काव्य सौन्दर्य' के अन्तर्गत मेरूतङ्गाचार्य के प्रकृति चित्रण, विम्बि विधान, तथा काव्य के सौन्दर्य में श्रीवृद्धि करने वाले भावपक्ष व कलापक्ष की विशिष्टताओं पर विचार किया गया है।

सातवॉ अध्यायहै जीवन दृष्टि और जीवन मूल्य इसमें कवि की जीवन दृष्टि को समझाने की चेष्टा की गई है। कवि ने जैन धर्म के सिद्धान्तों को

अपने काव्य मे समाहित किया है इसकी समीक्षा की गई है। आचार्य मेरूतुङ्ग जैनमत मे आस्था रखते है। इस काव्य को उन्होंने जैन सिद्धान्तों व जीवन मूल्यो का आकार बनाकर प्रस्तुत किया है।

अन्तिम अध्याय मे मेरूतुङ्गाचार्य के कविरूप की सर्वाङ्गीण समीक्षा करते हुए उनके काव्य की विशिष्टताओ का सक्षिप्त आकलन दिया गया है।

जैनधर्म के सिद्धान्तो पर आधारित जैनमेघदूतम् काव्य पर प्रस्तुत प्रबन्ध वर्तमान भौतकवादी युग में जीवन के परम लक्ष्य का सङ्केत देने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

इस शोध कार्य में जिन साहित्य मर्मज्ञ विद्वानों एवं महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति मै हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हूँ।

सर्वप्रथम मै अपनी निर्देशिका डा० राजलक्ष्मी वर्मा के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिनके मार्गदर्शन मे मै यह कार्य कर सकी।

मेरे माता-पिता का त्याग एवं सहयोग भी इस कार्य की सफलता का एक प्रमुख घटक तत्त्व रहा है। मेरे ससुराल पक्ष से जो सहयोग मिला है वह भी बहुत महत्त्व रखता है। यह शोध-कार्य मेरे श्वसुर के अध्ययन के प्रति लगाव का द्योतक कहा जाय, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। मेरे पति देव का इस कार्य मे हर प्रकार से मेरी सहायता करना तथा समय-समय पर उत्साहवर्द्धन करते रहना भी इस कार्य की सफलता मे बहुत सहायक रहा है। मैं इन सभी शुभेच्छुओं के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के अधिकारियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करना नहीं भूलूँगी।

गङ्गानाथ झा संस्कृत विद्यापीठ, पब्लिक लाइब्रेरी के अधिकारियों एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पुस्तकालयाध्यक्ष डा० रीता पाण्डेय तथा अन्य कर्मचारियो द्वारा किये गये सहयोग के लिएमैं उपकृत हूॅ।

वाराणसी विश्वविद्यालय तथा पार्श्वनाथ जैन पुस्तकालय के अधिकारियों ने भी इस कार्य मे अपना पूर्ण सहयोग दिया है।, उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के वरिष्ठ अध्यापक डा० शङ्कर दयाल द्विवेदी ने भी मेरे शोध कार्य में अमूल्य, सहयोग दिया उसके लिएमैं उनकी सदैव ऋणी हूॅ। इसके अतिरिक्त इस कार्य मे जिन लोगो का परोक्ष या अपरोक्ष रूप मे जो सहायता प्राप्त हुआ है, उसके लिए मै उन सब के प्रति आभार व्यक्त करती हूॅ।

शोध कार्य को इस रूप में प्रस्तुत करने में मुझे श्रीमती अलका द्विवेदी के द्वारा जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए वे धन्यवाद की पात्र हैं।

गुरूजनों के आशीर्वाद से मेरा यह प्रयास आप सबके समक्ष प्रस्तुत है इसमें मेरी अल्पज्ञता से जो अशुद्धियॉ रह गयीं हों उनके लिए मैं विद्वज्जनों से क्षमा चाहती हूॅ।

सविनय,

(सीमा द्विवेदी)

शोधच्छात्रा

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ-संख्या
प्रथमोऽध्यायः दूतकाव्य परम्परा	1-62
द्वितीयोऽध्यायः मेरूतुङ्गाचार्य का व्यक्तित्व और कृतित्व	63-74
तृतीयोऽध्यायः कथावस्तु और चरित्राङ्कन	75-109
चतुर्थोऽध्यायः जैनमेघदूतम् की रस योजना में रस विमर्श	110-153
(क) रस तत्त्व	
(ख) जैनमेघदूतम्	
पञ्चमोऽध्यायः काव्य शिल्प	154-194
(क) भाषा	
(ख) शैली (गुण रीतियाँ)	
(ग) अलङ्कार	
(घ) छन्द	
षष्ठोऽध्यायः काव्य सौन्दर्य	195-213
(क) प्रकृतिचित्रण	
(ख) बिम्बयोजना	
(ग) उपमान	
सप्तमोऽध्यायः जीवन दृष्टि एवं जीवन मूल्य	214-222
अष्टमोऽध्यायः मूल्यांङ्कन	223-231
सहायक-ग्रन्थ सूची	232-239

प्रथमोऽध्यायः

दूत काव्य की परम्परा

दूत काव्य की परम्परा

संस्कृत साहित्य मे विरही नायक अथवा नायिका का अपनी प्रेयसी अथवा प्रियतम के पास प्रणय सन्देश भेजना ही दूतकाव्य का विषय रहा है। इसलिए इसे 'दूतकाव्य' अथवा सन्देश काव्य से अभिहित किया जाता है।

दूतकाव्य की परम्परा के पूर्व दूत शब्द की संक्षेप मे व्याख्या करना आवश्यक है, अतः दूत शब्द की व्याख्या विभिन्न शास्त्रो के अनुसार इस प्रकार है-

दूत शब्द का शाब्दिक अर्थ संस्कृत-हिन्दी कोशानुसार 'सन्देशहर' या 'सन्देशवाहक' होता है।[१] आंग्लभाषा मे इसे (Messenger) कहते है। अमरकोष के अनुसार दूत शब्द की व्युत्पत्ति है- दु गतौ+क्त (त)=दूत।[२]

दूतनिभ्यां दीर्घश्च (उ.३/९०) सूत्र द्वारा दु के उको दीर्घ होकर दूत शब्द व्युत्पन्न हुआ है। अमरकोष में दूत का अर्थ निम्नवत् स्पष्ट किया गया है-स्यात्सन्देशहरो दूतः।[३]

आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि में दूत की परिभाषा इस प्रकार से की है-'स्यात्सन्देशहरोदूतः'[४]

इस प्रकार दूत शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर सन्देशहारक अर्थात् किसी एक व्यक्ति के सन्देश को उसके दूसरे अभीष्ट व्यक्ति तक पहुँचाने वाले व्यक्ति को दूत कहते है।

---

१ संस्कृत हिन्दी कोश पृ. सं. ४६८, वामन शिवराम आप्टे

२ अमरकोष २/६/१६

३ अमरकोष २/६/१६

४ अभिधान चिन्तामणि ३/३९८

आचार्य विश्वनाथ ने दूत का त्रिविध रूप स्पष्ट करते हुए लिखा है : -

निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा सन्देशहारकः।

कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधाः।।[१]

दूत उसे कहते है जिसे विविध कार्यो हेतु यतस्ततः भेजा है। ये दूत ३ प्रकार के है (१) निसृष्टार्थ (२) मितार्थ और (३) सन्देश हारक।

निसृष्टार्थ दूत वह है जो दोनो (नायक अथवा नायिका) के मन की बात समझकर स्वयं ही सभी प्रश्नो का समाधान कर लेता है और प्रत्येक कार्य को स्वयं सुसम्पादित करता है -

उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वदति चोत्तरम्।

सुश्लिष्टं कुरूते कार्यं निसृष्टार्थस्तु संस्कृतः।।[२]

मितार्थ दूत वह है जो बात तो कम करे परन्तु जिस कार्य के लिए भेजा गया हो, उस कार्य को अवश्य सम्पादित कर ले तथा सन्देशहारक दूत वह है जो उतनी ही बात करे जितनी उसे बतायी गयी हो।

मितार्थ भाषी कार्यस्य सिद्धकारा मितार्थकः।

यावद्भाषितसन्देशहारः सन्देशहारकः।।[३]

मनु स्मृति मे भी दूत के लक्षण बताए गये हैं -

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।

इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ।।

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् ।

---

१ साहित्य दर्पण ३/४७

२ ,, ,, ३/४८

३ ,, ,, ३/४९

वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते।।[१]

राजा को चाहिए कि वह सब शास्त्रो का विद्वान, इंगित आकार और चेष्टा को जानने वाला शुद्धचरित, चतुर तथा कुलीन दूत को नियुक्त करे। अनुरक्त शुद्ध चतुर, स्मरण शक्ति युक्त देश काल का विज्ञात, सुरूप वाला निर्भीक एवं वाग्मी दूत श्रेष्ठ होता है। आगे चलकर मनु दूत की महत्ता का वर्णन करते है -

आमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।

नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते संधिविपर्ययौ।।

दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।

दूतस्तत्कुरूते कार्ये भिद्यन्ते येन वा न वा।।[२]

गरूण-पुराण में दूत का लक्षण निम्नवत् दिया गया हैः-

बुद्धिमान्मतिमाश्चैव परचितोपलक्षकः

क्रूरो यथोक्तवादी च एव दूतो विधीयते।।[३]

बुद्धिमान, मतिमान, परचिताभिप्राय, विज्ञाता, क्रूर तथा जैसा कहा जाये वैसा कहने वाला दूत होना चाहिए।

साहित्य के रस शास्त्र में दूत का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रति भाव के परिपाक के लिए दूत अपरिहार्य सा विदित होता है। शृङ्गार रस मे अवलम्ब और आश्रय उभयाश्रित और उभयान्वित रहते है। नायक और नायिका में दोनों एक दूसरे के लिए अवलम्ब और आश्रय दोनों ही होते है। अतः रतिभाव की समग्र अवस्थिति के लिए नायक तथा नायिका दोनों में रति भाव

---

१ मनु समृति ७/६३-६४

२ ,, ,, ७/६५-६६

३ गरूण पुराण ६/८/८

जागृत होना चाहिए इसलिए दूत की साहित्य मे आवश्यकता मानी गई है। साहित्य मे नायक अथवा नायिका की ओर से दूत अथवा दूती का भेजा जाना सर्वविदित ही है। प्रायः विरह की पूर्वराग और मन अवस्थाओं में दूत अथवा दूती प्रेषण का व्यापार देखने मे आता है। विरही जब विरह मे प्रक्षिप्त हो जाता है तब उसे चेतन और अचेतन तथा पशु-पक्षी और मनुष्य का विवेक नही रहता। वह हर किसी के सामने हॅसता रोता गाता तथा प्रलाप करता रहता है। ऐसी अवस्था में विरह नायक अथवा नायिका का जिस किसी को भी दूत बनाकर अपने प्रिय के पास भेजना कुछ अस्वभाविक नहीं है। जब चेतन और अचेतन का ही विवेक न रहे, तब पशु-पक्षियों तक से अपनी विरह वेदना का निवेदन करना कुछ भी अनुचित नहीं प्रतीत होता है। इसलिए अधिकांश सन्देश काव्यों में पशु-पक्षी दूत बनाए गये है। प्रक्षिप्त अवस्था तो तब और भी अधिक प्रकट होती है जब हम पवन चन्द्र, पदांक, तुलसी इत्यादि को भी दूत कार्य मे लगा हुआ देखते हैं तो आश्चर्य होता है। अन्त में मन भक्ति तथा शील जैसे सूक्ष्म और भावात्मक पदार्थ को भी दूत कार्य मे नियुक्त किया हुआ पाते है। किसी-किसी काव्य में पौराणिक पात्रों को भी दूत कार्यो मे सम्पादित करते हुए पाते हैं। इस प्रकार इन दूत काव्यों में विभिन्न पशु-पक्षियों तथा अन्य जड़ चेतन पदार्थो को भी दूत कार्यो में नियुक्त किया गया है।

संस्कृत काव्य साहित्य की एक विशिष्ट परम्परा के रूप में इस दूत काव्य विधा का प्रारम्भ वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक स्पष्टतया मिलता है।

उदाहरणतया ऋग्वेद को दूतकाव्यपरम्परा में दूतकाव्य का आदिस्रोत मान सकते है क्योकिं भारतीय साहित्य में ऋग्वेद ही सर्वप्राचीन ग्रन्थ है। इस वेद में सर्वप्रथम पशुओं द्वारा दूत कार्य करने का उल्लेख मिलता है। आचार्य वृहस्पति की गायों को बल नामक असुर के योद्धा पणि लोग जब अपहरण

करके ले जाते है और उन गायो को गुफा में छिपा देते है, तब इन्द्र उन गायो की खोज के लिए सरमा नामक कुतिया को पणि केपास भेजते हैं। सरमा नदी को पार करके बलपुर पहुँचती है और वहाँ गुप्त स्थान में छिपाई हुई गायो को खोज निकालती है। इस अवसर पर पणि लोग सरमा को अपने पक्ष मे करना चाहते हैं।[१] इस सम्वाद से ज्ञात होता है कि भारतीय साहित्य में पशुओ को दूत रूप मे भेजने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

एक अन्य स्थल पर ऋग्वेद मे दूसरी कथा उपलब्ध होती है जिसमे राजा रथवीति की पुत्री के प्रति श्यावाश्व ऋषि अपना प्रणय सन्देश रात्रि के माध्यम से भेजते है इसका उल्लेख आचार्य शौनक द्वारा प्रणीत बृहद्देवता मे भी मिलता है।[२] ऋग्वेद में अन्य स्थल पर यम-यमी सम्वाद का उल्लेख मिलता है।[३]

वाल्मीकि रामायण में भी दूत सम्प्रेषण सम्बन्धी प्रसंग दृष्टिगोचर होता है। हनुमान जी को कार्य पटु एवं पराक्रमी समझकर श्री रामचन्द्र जी स्वनामाङ्कित अँगूठी सीता के अभिज्ञानार्थ देते हैं और उन्हे दूत रूप में भेजते है। सीता जी द्वारा कुछ सन्देह प्रकट करने पर हनुमान श्री रामचन्द्र के गुण पराक्रम का वर्णन कर फिर सीता जी से कहते हैः-

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः

त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ।।[४]

तदन्तर हनुमान जी सीता जी को फिर विश्वास दिलाते है और रामचन्द्र जी की अँगूठी दिखाते हैं -

---

१ ऋग्वेद १०/७/१०७

२ ,, ५/६१/१७,१८,१९

३ ब्रहदेवता ५/७४-७५

४ बाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड ३४/३५

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।

रामनामकिंत चेदं पश्य देव्यगुलीयकम्

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना

समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि।।

अन्म मे सीता जी हनुमान को श्री राम जी को दूत मान लेती हैः

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्षिता।

उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छतिं ।।[१]

सीता जी द्वारा वापस चलने के लिए प्रस्तुत न होने पर हनुमान जी उनसे कुछ अभिज्ञान माँगते है। सीता जी अभिज्ञानार्थ चूड़ामणि देती है और अपना सन्देश भी भिजवाती हैं।[२]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में दूत द्वारा सन्देश प्रेषण मार्ग वर्णन तथा अभिज्ञान स्वरूप किसी वस्तु का देना किसी घटना का उल्लेख करना यह बात पाई जाती है। इन सभी बातो का पूरा-पूरा सामञ्जस्य कालिदास जी के मेघदूत में भी मिलता है।

रामायण के बाद महाभारत में भी दूत प्रेषण का वृतान्त कई प्रसंगों मे देखने में आता है। युधिष्ठिर श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर में कौरवराज दुर्योधन की सभा में दूत रूप में भेजते हैं। इस दूत सम्प्रेषण में विशुद्ध राजनैतिक भाव दृष्टिगत होता है, परन्तु महाभारत में वनपर्व के नलोपाख्यान मे आये हुए हंस दमयन्ती संवाद को तो निश्चित रूप से ही सन्देश काव्यों का पथ प्रवर्तक मानना पड़ेगा। हंस-दमयन्ती सम्वाद में हंस द्वारा नल और दमयन्ती एक दूसरे के लावण्य की, गुण की, योग्यता की निरन्तर चर्चा सुनते रहने से नल

---

१ वही ३५/८४

२ सुन्दरकाण्ड ४

और दमयन्ती परस्पर अप्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे प्रेम से करने लगते है। एक समय नल मन ही मन दमयन्ती का ध्यान करते-करते अपने उद्यान में पहुॅचता है तभी वहॉ पर एक हंसो का समूह आता है। उनमे से एक हंस को नल पकड़ लेते है। वह हंस नल से कहता है-

ततोऽन्तरिक्षगो वाचं व्याजहार नलं तदा।

हन्तव्योऽस्मि न ते राजन् करिष्यामि तव प्रियम् ।।

दमयन्ती सकाशे त्वां कथयिष्यामि नैषध।

यथा त्वदन्यं पुरूषं न सा मंस्यति कर्हिचित् ।।

एवमुक्तस्ततो हंसमुत्ससर्ज महीपतिः।

ते तु हंसाः समुत्पत्य विदर्भानगमस्ततः।।[१]

इसी प्रकार २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२ श्लोक मे भी हंस दमयन्ती से सम्बन्धित बातों का वर्णन नल के सम्मुख करता है। इसके अतिरिक्त राजा नल का भी देवताओं के दूत के रूप में दमयन्ती के पास जाना सर्वविदित ही है।[२]

महाभारत के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में भी ऐसे कई स्थल पाये जाते है, जो कि निश्चित रूप से कई दूतकाव्यो के आधार स्वरूप है। भागवत के दशम स्कन्ध के ३०वें अध्याय में इस प्रकार की कथा है। एक बार रास क्रीडा के प्रसंग में भगवान कृष्ण के प्रेम को पाकर गोपियाँ कुछ अभिमान करने लगती है। उनके अभिमान को दूर करने की भावना से कृष्ण जी अन्तर्धान हो जाते हैं और उनके विरह में उन्मत्त की तरह अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, तुलसी, मल्लिका, युथिका और आम्र इत्यादि वृक्षों से उनका पता

---

१ महाभारत वन पर्व (नलोपाख्यान) ५३/२०-२३

२ महाभारत वन पर्व (नलोपाख्यान) ५३/५४

पूछती फिरती है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ४६वे अध्याय में भी सन्देश काव्य अथवा दूत काव्य की कुछ रूपरेखा पाई जाती है। कृष्ण जब गोकुल से मथुरा आ जाते है और बहुत दिनों तक गोकुल जाने का उन्हे अवसर नही मिलता है तब वे नन्द और यशोदा के दुःख को दूर करने तथा गापियो को सान्त्वना देने के लिए अपने प्रिय मित्र उद्धव को गोकुल भेजते है। इस प्रकार नन्द और यशोदा के दुःख को दूर कर जब उद्धव मथुरा जाने को उद्यत होते है तब कुछ गोपियाँ उनके रथ को रोककर खड़ी हो जाती हैं। तभी कही से एक भ्रमर आ जाता है गोपिकाएँ उसको श्रीकृष्ण का दूत समझकर उससे कहती है -

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः

कुचविलुलित-माला कुङ्कुमश्मश्रुभिर्वः।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं

यदुसदसि विडम्ब्यो यस्य दूतस्त्वमीदृक् ।।[१]

श्रीमद्भागवत के इस प्रसंग के आधार पर ही श्री रूप गोस्वामी के उद्धव सन्देश तथा माधव कविन्द्र के उद्धवदूत की रचना हुई है। उक्त प्रसंग मे भ्रमर को भी दूत कल्पित किया गया है। अतः यह प्रसंग रूद्र न्याय वाचस्पति के भ्रमर दूत तथा अन्य दूतों का भी आधार है उपर्युक्त प्रसंगो के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में एक और स्थल पर भी दूत द्वारा सन्देश प्रेषण का कार्य पाया जाता है। रूक्मिणी का विवाह शिशुपाल से निश्चित हो जाता है किन्तु रूक्मिणी इस विवाह सम्बन्ध को नहीं चाहती हैं, वह श्री कृष्ण से विवाह करना चाहती हैं इसी प्रसंग में विदर्भ से द्वारका को दूत के रूप में एक ब्राह्मण भेजा जाता है।[२] दूत के पहुँचने पर कृष्ण जी उसका स्वागत

---

१ श्रीमद्भागवत १०/४७/१२

२ श्रीमद्भागवत १०/५२/२१-२७

सत्कार करते है, कुशलमंगल पूछते है तथा उसके आने का कारण भी जानना चाहते है। इसी समय ब्राह्मण श्री कृष्ण को रूक्मिणी का सन्देश सुनाता है रूक्मिणी के इस सनदेश को सुनकर निश्चित समय पर विदर्भ देश मे आ जाते है और पूर्वयोजनानुसार रूक्मिणी को पार्वती के मन्दिर से अपहृत कर लाते है। इस प्रसंग मे दूत द्वारा पूर्व अनुराग के कारण दूत-सम्प्रेषण स्पष्ट ही होता है।

बौद्ध साहित्य मे भी दूत सम्प्रेषण के कई प्रसंग देखने को मिलता है। सर्वप्रथम जो एक कथा मिलती है वह इस प्रकार है कि काशी का एक श्रेष्ठ अपने कलण्डुक नामक दास की खोज मे अपने एक पालतू शुक को भेजता है। शुक दास को खोजकर वापस आकर श्रेष्ठी को उसकी सूचना देता है।[१]

एक दूसरी कथानुसार एक व्यक्ति शूली के दण्ड को प्राप्त एक काक को अन्तरिक्ष में उड़ते हुए देखकर उसके द्वारा अपनी प्रिय पत्नी के पास अपना सन्देश भिजवाता है। वह काक से कहता है -

उच्चे सकुण डेमान पत्तयान विहंगम।

वज्जासि खोत्वं वामूरूं चिरं खोसा करिस्सति।।[२]

कुंतनि जातक में एक ऐसी कथा का वर्णन है जिसमे एक ऐसे पक्षी का वर्णन है जो कोशलराजा के पास रहता था और दूत के समान राजा का सन्देश सम्प्रेषण करता था।[३]

एक अन्य स्थल पर एक और कथा मिलती जिसमे उत्तर पाञ्चाल की अत्यन्त रूपवती राजकुमारी पञ्चाल- चण्डी का वर्णन मिलता है। पञ्चाल तथा विदेह देश की राजाओं में गहरी शत्रुता थी। पञ्चाल राजा ने अपने शत्रु को

---

१ कलण्डुक जातक, १२७

२ काम विलाप जातक १९७

३ कुंतनि जातक १४३

नीचा दिखाने हेतु एक चाल चली। उसने अपनी पुत्री की प्रशंसा मे कवियो से अनेक रचनाएँ निर्मित करवाई। संगीतज्ञो द्वारा कुछ पक्षियों के गले में घण्टियाँ बंधवायी तथा उन पक्षियों को कवियो द्वारा रचित रचनाएँ कण्ठस्थ करवायी। तब इन पक्षियो को विदेह राजा के राज्य में भेजा गया। वे पक्षी पञ्चाल राजकुमारी के रूप लावण्य की प्रशंसा एवं रचनाओं का गायन करते तथा साथ मे यह भी कहते कि राजकुमारी विदेहराजा पर अनुरक्त है और वह उसी का वरण करना चाहती है। पक्षियो का गीत सुनकर विदेहराजा भी अनुरक्त हो गया। इस प्रकार पक्षियो द्वारा पञ्चालराजा ने विदेह राजा पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल मे लोग पक्षियो को प्रशिक्षित करके उनसे दूत कार्य सम्पादित करवाते थे।

बौद्ध साहित्य के बाद हमे जैन साहित्य में भी दूत सम्प्रेषण के प्रमाण प्राप्त होते है। जैन साहित्य मे 'पउमचरियं' सर्वप्राचीन ग्रन्थ है जिसके रचनाकार विमलसूरि है। इस काव्य में कई स्थलों पर दूत सम्प्रेष्ण का प्रसंग सर्वप्रमुख है। इस काव्य मे भी पवनसुत हनुमान को कविराज ने दूतरूप में उपस्थित किया है। सर्वप्रथम जब हनुमान श्री राम से मिलते हैं, तब श्री राम उनको दूत रूप मे लंका जाने के लिए कहते है। हनुमान इस दौत्यकर्म को अतिलघु समझ कर श्री राम से कहते है -

सव्वे वि तुज्झ सुपुरिस! पडिउवयारस्स उज्जया अम्हे।
गन्तूण सामि! लंकं, रक्खसबाहं पसाएमो।।
सा मिय देहाऽऽणत्तिं, तुह महिला जेण तत्थ गन्तूणं।
आणोमि भुयवलेणं पेच्छसु उक्कण्ठिओ सिग्घं।।[१]

---

१ पउमचरिचं, सुन्दरकाण्ड ४९/२७-२८

इस प्रकार हनुमान की इस महागर्जना को सुनकर श्रीराम हर्षोल्लासित हो, सीता के लिए उनको अपना सन्देश देते है। राम का सन्देश पाकर पुलकितबाहु हनुमान सीता की खोज मे चल पड़े। लंका पहुॅचने पर निर्धूम आग सदृश बाये हाथ पर मुॅह रखे हुए, खुले बाल, ऑसू बहाती हुई सीता जी का उन्हे दर्शन होता है।

देवी सीता की विरह कातरता को देखकर हनुमान जी अत्यधिक दु:खित होते है और वे सीताजी के समक्ष तुरन्त प्रस्तुत हो जाते है। उन्हें अपने सम्मुख देखकर सीताजी ने हनुमान से पूछा-

कत्थ पएसे सुन्दर। दिट्ठो ते लक्खणेण सह पउमो

निरूवहअंगोवंगो? किं व महासोगसन्निहिओ?।।

अह वा किं मह विरहे, सिढिलीभूयस्य वियलिओरण्णे

लद्धो भद्द! तुमे कि अंगुलिमुद्दओ एसो?[१]**।।**

यह सुनकर हनुमान सीता जी को प्रणाम कर श्रीराम की कुशलवार्ता के साथ उनकी दशा का भी वर्णन करते हैं। हनुमान श्री राम की कुशलवार्ता कह कर, भोजनकर सीता देवी से कहते हैं -

निव्वक्तभोयणविही विन्नविया मारूईण जणयसुया।

आरूहसु मज्झ खन्धे, नेमि तहिं जत्थ तुह दइओ।।[२]

उस सन्दर्भ मे सीता देवी कुलवधू के गुणों का वर्णन करती है,[३] अपना सन्देश भी श्री राम को देने के लिए कहती है।[४] इस प्रकार उनका

---

[१] पउमचरियं, सुन्दरकाण्ड ५३/२१-२६

[२] पउमचरियं, सुन्दरकाण्ड ५३/२७-३९

[३] पउमचरियं, सुन्दरकाण्ड ५३/६१-६२

[४] पउमचरियं, सुन्दरकाण्ड ५३/६४-७२

सन्देश लेकर श्री राम के समक्ष हनुमान उपस्थित होते हैं और श्री राम को सीता देवी का सन्देश सुनाते है।[1]

इस प्रकार प्रचीन संस्कृत साहित्य मे पशु-पक्षियो द्वारा दूत सम्प्रेषण होता था जिसे देखकर परवर्ती कवियो ने भी अनेक दूत काव्य की रचना की जिसमे दूत वाहक के रूप मे पशु-पक्षियों, अचेतन पदार्थो का चुनाव किया। प्राचीन काल मे पशु पक्षी को नायक बनाकर कथा लिखी गई है उदाहरणार्थ हितोपदेश तथा पञ्चतन्त्र। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त भारतीय लोक गीतो मे भी पक्षियो द्वारा पत्र भेजने की परम्परा थी। विरहणी दूर देश में गये पति की याद कर उसे सन्देश काक और अन्य पक्षियो द्वारा ही भेजती थीं।

इस प्रकार काव्य की परम्परा वेद से लेकर वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, जैन ग्रन्थ, बौद्ध ग्रन्थ तक में मिलती हैं।

वाल्मीकि रामायण के बाद श्री भास रचित दूतवाक्यम् और दूतघटोत्कच का भी स्थान मिलता है।

अतः परवर्ती कवियो ने प्राचीन संस्कृत साहित्य मे दूत-सम्प्रेषण कार्य से प्रेरणा पाकर अनेक दूतकाव्यों की रचना की है। जिसमें सर्वप्रथम कालिदास का मेघदूतम् है।

संस्कृत के दूतकाव्यों का आदिमग्रन्थ महाकवि कालिदास का मेघदूतम्[2] है। जिसमे धनपति कुबेर के शाप से निर्वासित एक विरही यक्ष की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण है। मेघदूत कालिदास के अन्तः प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का भव्य भण्डार है। यहाँ बाह्य प्रकृति को जो प्रधानता

---

१ पउमचरियं, सुन्दरकाण्ड ५४/३-११

२ संस्कृत साहित्य का इतिहास प्र. सं. २२७
- आ. बल्देव उपाध्याय

मिली है वह संस्कृत के अन्य किसी काव्य मे नहीं । काव्य दो भागो मे विभाजित है पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ तो यहॉ से वहॉ तक प्रकृति की ही मनोहर झाँकी या भारतभूमि के स्वरूप का ही मधुर गान है। कवि की पैनी दृष्टि में ग्रीष्म ऋतु की मन्द प्रवाहिनी नदी उस प्रेषित पतिका के समान प्रतीत होती है जो अपने पति के वियोग में मलिन वसना बन बड़े क्लेश से अपना जीवन बिताती है। प्राकृतिक दृश्यो मे विज्ञानसम्मत तथ्यों का भी पर्याप्त सन्निवेश है। यक्ष तथा उसकी प्रेयसी की विरहावस्था का वर्णन कर कवि ने मार्मिक मनोहर चित्र उपस्थित किया है। मेघदूत वस्तुतः विरह पीड़ित उत्कण्ठित हृदय की मर्म भरी वेदना है। जिसके प्रत्येक पद्य मे प्रेम विह्वलता विवशता तथा विकलता अपने को अभिव्यक्ति कर रही है। पूर्वमेघ बाह्य प्रकृति का मनोरम चित्र है तो उत्तरमेघ अन्तःप्रकृति, अनुभव पर प्रतिष्ठित अभिराम वर्णन है। श्रृङ्गार रस के वातावरण मे ही परिपुष्ट महाकवि कालिदास द्वारा विरचित इस दूत काव्य में सन्देश सम्प्रेषण हेतु धूम, तेज, जल, वायु के संयोग से निर्मित मेघ को चुना गया है।

काव्य मे मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग है। काव्य में श्लोको की संख्या के बारे में मत वैभिन्न्य है। बल्देव उपाध्याय के मतानुसार १११ श्लाकों का काव्य है। जबकि काशी नाथ १२१ श्लोक मानते हैं। मल्लिनाथ ने श्लाकों की संख्या ११५ बतायी है। उसी प्रकार मेकड़ोनल ने ११५ श्लोक कहे है और विल्सन ने इस काव्य की श्लोकों की संख्या ११६ दी है। इस प्रकार अपनी विश्वमोहनी कथावस्तु के साथ यह दूत काव्य विश्वविख्यात हो गया है साथ ही दूतकाव्य की परम्परा का सिरमौर भी बन बैठा है।

यहाँ समस्त दूतकाव्यों को दो भागों में विभाजित किया जाता है -

(क) संस्कृत साहित्य में उपलब्ध जैनेतर दूतकाव्य।

(ख) संस्कृत साहित्य में उपलब्ध जैनदूतकाव्य।

सर्वप्रथम डा० राम कुमार आचार्य द्वारा रचित 'संस्कृत के सन्देश काव्य' नामक पुस्तक मे उपलब्ध दूतकाव्यो का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है-

(क) संस्कृत-साहित्य मे उपलब्ध जैनेतर दूतकाव्य

१. धोयी या धोयिक कवि का पवनदूत

२. पूर्ण सारस्वत कवि का हंसदूत

३. अनिर्ज्ञात कवि का हंससन्देश

४. वेदान्त-देशिक का हंसदूत

५. लक्ष्मीदास का शुकसन्देश

६. वासुदेव कवि का भृंगसन्देश

७. उद्दण्ड कवि का केकिल सन्देश

८. उदय कवि का मयूर सन्देश

९. वामन भट्ट बाण का हंसदूत

१०. विष्णुदास कवि का मनोदूत

११. विष्णुत्रात का कोक सन्देश

१२. रूपगोस्वामी का उद्धवसन्देश

१३. रूपगोस्वामी का हंसदूत

१४. माधव कवीन्द्र का उद्धवदूत

१५. शतावधान कवि का भृंगदूत

१६. रूद्रन्याय पञ्चानन कवि का भ्रमरदूत

१७. रूद्रन्याय पञ्चानन का पिकदूत

१८. कृष्ण सार्वभौम कवि का पदांकदूत

१९. तैलंग ब्रजनाथ का मनोदूत

२०. श्रीकृष्ण न्यायपञ्चानन का वातदूत

२१. भोलानाथ का पान्थदूत

२२. बिज्ञसूरि वीरराघवाचार्य का हनुमद्दूतम्

पवनदूत[१] (वि०द्वादश त्रयोदश शताब्दी) - पवनदूत एक सुन्दर दूतकाव्य है। यह कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। 'धूयि' 'धोयी' 'धोई' अथवा 'धोयिक' नामक कवि इसके रचयिता है। पवनदूत की श्लोक सं० १०१ तथा १०३ मे कवि ने अपने लिए स्वयं कविक्ष्माभृतां चक्रवर्ती और कवि नरपति कहा है। पवनदूतम् के अन्त मे भी इति श्री धोयीकविराजविरचितम् इत्यादि लेख मिलता है। पवनदूत की कथा इस प्रकार है कि गौड़ देश के राजा लक्ष्मण-सेन की दक्षिण दिग्विजय में मलयपर्वत पर कनक नगरी में रहने वाली कुवलयवती नाम की एक गन्धर्व - कन्या राजा को देखकर उससे प्रेम करने लगती है। राजा लक्ष्मणसेन बंगाल में जब अपनी राजधानी मे लौट आता है, तो कुवलयवती उसके विरह में बड़ी व्याकुल रहने लगती है। वसन्त ऋतु के आने पर वसन्त की वायु को अपना संदेश वाहक बना कर वह राजा के पास अपनी विरह व्यथा सुनाने के लिए भेजती है। मेघदूत के समान दूतकाव्य भी मन्दाकान्ता छन्दो मे लिखा गया है। भाषा सरल सरस और प्रसादगुण युक्त है।

हंस सन्देश[२] (वि० त्रयोदश-शतक का प्रारम्भ) - इस दूतकाव्य के रचनाकार श्री पूर्णसारस्वात हैं। इस दूतकाव्य की कथा काल्पनिक है। दक्षिण

---

[१] संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. २३८

- डा. राम कु. आ.

[२] वही पृ. सं. २५३

भारत के कांचीपुर नगर की कोई स्त्री किसी उत्सव के अवसर पर श्री कृष्ण की विजय यात्रा देखकर उनके प्रेम मे मुग्ध हो जाती है। इस प्रकार व्याकुल अवस्था मे उसका कुछ समय व्यतीत हो जाता है। अन्त मे कृष्ण-विरह में चिन्तित वह घूमते-घूमते पुष्पवाटिका पहुँचती है। वहाँ उसे एक राजहंस दिखाई देता है। वह उसका स्वागत करती है तथा उससे कुशलवार्ता इत्यादि पूछती है। अन्त मे अपने प्रिय कृष्ण के पास सन्देश ले जाने के लिए प्रार्थना करती है। समग्र काव्य मे कुल १०२ श्लोक हैं। विषय की दृष्टि से यह काव्य सर्वथा नवीन है। इसके अतिरिक्त कवि की कल्पना तथा भाव-विन्यास भी बड़े सुन्दर है। सुकुमार भाव तथा अनुभूति के वर्णन के उपयुक्त माधुर्य प्रसाद गुणयुक्त भाषा है। काव्य मे वैदर्भी रीति है।

हंस सन्देश[१] (वि० सं० चतुर्दश-शतक) - प्रस्तुत दूतकाव्य के रचयिता वेकटनाथ या वेदान्त देशिक हैं। इस दूतकाव्य की कथावस्तु रामायण से संबद्ध है। सीताजी की खोज करने बाद जब हनुमान जी लंका से लौट आते है, तब श्री रामचन्द्रजी रावण से युद्ध करने से पूर्व अन्तरिम काल मे सीताजी को सान्त्वना देने के लिए राजहंस को दूत बनाकर लंका भेजते हैं। इस दूतकाव्य मे दो आश्वास है। प्रथम आश्वास मे ६० तथा द्वितीय में ५१ श्लोक है। मन्दाकान्ता छन्द का ही काव्य मे प्रयोग है। काव्य की शैली बड़ी मधुर है। प्रसाद और माधुर्य गुण से काव्य ओत प्रोत है। क्लिष्ट और लम्बे समास प्रायः इस काव्य में नही है।

हंस सन्देश नामक एक अन्य दूतकाव्य भी प्राप्त होता है। इस दूत काव्य के रचनाकार के बारे मे कुछ ज्ञात नहीं है। इस काव्य की कथा इस प्रकार है - कोई शिवभक्त शिवभक्तिरूपी अपनी अनन्य प्रेयसी के सुखद सम्पर्क से अद्वैतानन्द में मग्न था। अपने पूर्व कर्मो के प्रभाव से माया के

---

१ संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. २६८

वशीभूत हो जाने के कारण वह शिवभक्ति से वियुक्त हो जाता है। किसी तरह कुछ दिन बीतने के बाद वह अपने मनरूपी हंस को दूतबनाकर शिवलोक में स्थित अपनी प्रेयसी शिवभक्ति के पास प्रेम-सन्देश देकर भेजता है-[१] इस प्रकार भाषा भाव छन्द तथा प्रक्रिया इन सभी दृष्टियो से यह सन्देश काव्य सुन्दर रचना है। वृत्तियों के सन्दर्भ मे कवि ने कहा है -

गौडवैदर्भपांचाल भालाकांर सरस्वती

यस्य नित्यं प्रशंसर्न्ति सन्तससौर भवेदिनः।

शुक संदेशः- इस दूत काव्य के रचयिता श्री लक्ष्मी दास है। शुक संदेश का रचना काल ६६६ कोलम्ब वर्ष सन् १४६१ ई. है। इस दूतकाव्य की कथा इस प्रकार है - गुणकापुरी मे शरद ऋतु की रात्रि मे अपने प्रासाद के ऊपर दो प्रेमी सुखमय विहार मे मग्न थे। इतने में नायक को अकस्मात् ऐसा स्वप्न आता है कि वह अपनी प्रेयसी से बिछुड़ गया है और घूमते-घूमते रामेश्वर के समीप रामसेतु पर पहुॅच गया है। तदन्तर स्वप्न मे ही वह अपनी प्रेयसी के पास शुक के द्वारा सन्देश भेजता है। प्रस्तुत दूतकाव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है। अलंकार योजना तथा कोमल कल्पना से यह काव्य भरा पड़ा हुआ है।

भृंग सन्देशः-[२] यह भृंग सन्देश दक्षिण भारत के किसी वासुदेव नामक कवि की रचना है। यह सन्देश काव्य सं. १५७५ ई. में लिखा गया है। इस सन्देश काव्य की कथावस्तु इस प्रकार है कि किसी समय रात्रि में नायक अपनी प्रेमिका के साथ अपने प्रासाद पर निद्राविहार कर रहा था। इसी अवसर पर कोई यक्षी उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे मलयपर्वत पर उड़ा कर ले जाने लगी। मार्ग में अपने यक्ष को आता देखकर वह उसे स्यानन्दूर मे

---

१ वही पृ. सं. २८०

२ संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. ३०३

छोड़ जाती है, जब वह नायक जागता है तब अपने को अकेला पाकर उसे बड़ा दुःख होता है। इस अवसर पर एक भृंग उड़ता हुआ उसके पास आता है बस, वह उसको ही दूत बनाकर अपनी प्रेयसी के पास भेजता है। काव्य एक सरस रचना है। विप्रलम्भ शृङ्गार ही प्रधान रस है। विषय भेद होते हुए भी काव्य मे शैली की एक रूपता है, अतः सुन्दर भावों के साथ ललित भाषा मे लिखा गया यह काव्य पाठको को मुग्ध करने वाला है।

कोकिल सन्देश[१] (वि० पंचदश-षोडश शतक) - इस दूतकाव्य के रचनाकार उद्दण्ड कवि है। कोकिल सन्देश काव्य की कथावस्तु इस प्रकार है- कोई प्रेमी अपने प्रासाद पर प्रेयसी के साथ प्रेमालाप करते-करते सो जाता है। प्रातः काल होने पर वह देखता है कि कम्पा नदी के तट पर स्थित कांची नगरी मे भवानी के मन्दिर के पास वह पड़ा हुआ है। इसी अवसर पर उसे आकाश वाणी सुनाई पड़ती है कि वरूणपुर से विमान द्वारा आती हुई अप्सराएँ उसे यहाँ ले आई है। यदि वह पांच महिने तक कांची मे निवास करेगा तो फिर कभी उसका अपनी प्रेयसी से वियोग नहीं होगा। इस आकाशवाणी को सुनने के बाद वह वहाँ निवास करने लगता है। दो तीन महीने बाद वसन्त ऋतु के आने पर अत्यधिक विह्वल हो जाता है और कोकिल से प्रेयसी के पास अपना सन्देश ले जाने का प्रार्थना करते है। भावों के अनुकूल, सरस और प्रवाहपूर्ण भाषा है। मेघदूत की शैली, छन्द, विषय व्यवस्था तथा भाव योजना से यह काव्य पूर्णतया प्रभावित है। कहीं-कहीं भावसाम्य के साथ-साथ शब्द साम्य भी है। काव्य की शैली और प्रवाह निर्दुष्ट है।

---

१ संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. ३०३

मयूर संदेश[1] - इस दूतकाव्य के रचयिता उदय कवि है। इस काव्य का रचनाकाल ई पञ्चदश शतक का पूर्वार्ध अथवास १४००ई. के कुछ बाद का समय ही मयूर सन्देश का रचनाकाल है। उपर्युक्त दूतकाव्य की कथावस्तु इस प्रकार हैः- मालाबार के राजा श्रीकण्ठ के परिवार का कोई राजकुमार अपनी रानी मारचेमन्तिका के साथ प्रसाद की छत पर विहार कर रहा था। विद्याधर भूल से उसको पार्वती के साथ स्वच्छन्द विहार में संलग्न साक्षात् शिव समझ बैठे। उनकी इस भूल पर यह राजकुमार उनका उपहास करने लगा। विद्याधरो ने इस पर राजा को एक मास के लिए अपनी प्रेयसी से वियुक्त रहने का शाप दे दिया। राजा के प्रार्थना करने पर किसी तरह विद्याधरों ने उसे स्यानन्दूर मे रहने की अनुमति दे दी। अपनी प्रेयसी के विरह मे निमग्न वह राजा मयूर द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अन्नकर नगरी में सन्देश भेजता है। इस दूतकाव्य के पूर्वभाग और उत्तर भाग दो भाग है। पूर्वभाग में १०७ और उत्तर भाग में ९२ श्लोक हैं। विचार तारतम्य वस्तु वर्णन छन्द तथा शिल्पविधान की दृष्टि से यह काव्य मेघ संदेश का सफल अनुकरण है। माधुर्य और प्रसाद गुण होने पर भी लम्बे और क्लिष्ट समास है। उदाहरण-

अविरतमदधारा धोरणी पारणोदयन्।

मदमधुकरमालाकूजितोद्घोषिताराम्।।

हंसदूत[2] - इस दूतकाव्य के रचनाकार वामन भट्ट बाण हैं। हंसदूत का समयकाल वि० पञ्चदश शतक है। हंसदूत काव्य की कथा मेघदूत की जैसी है। इस दूत काव्य में केवल इतना भेद है कि हंसदूत में यक्ष रामगिरि पर्वत पर न रहकर सुदूर दक्षिण भारत में कैलाश पर्वत पर रहता है और मेघ के स्थान पर हंस को अपना दूत बनाता है। इसके दो भाग है (१) पूर्व भाग

---

[1] सं० के सन्देश काव्य प्र० सं० ३३३

[2] सं० के सन्देश काव्य प्र० सं० ३३३

मयूर संदेश[1] - इस दूतकाव्य के रचयिता उदय कवि हैं। इस काव्य का रचनाकाल ई. पञ्चदश शतक का पूर्वार्ध अथवास १४००ई. के कुछ बाद का समय ही मयूर सन्देश का रचनाकाल है। उपर्युक्त दूतकाव्य की कथावस्तु इस प्रकार हैः- मालाबार के राजा श्रीकण्ठ के परिवार का कोई राजकुमार अपनी रानी मारचेमन्तिका के साथ प्रसाद की छत पर विहार कर रहा था। विद्याधर भूल से उसको पार्वती के साथ स्वच्छन्द विहार मे संलग्न साक्षात् शिव समझ बैठे। उनकी इस भूल पर यह राजकुमार उनका उपहास करने लगा। विद्याधरो ने इस पर राजा को एक मास के लिए अपनी प्रेयसी से वियुक्त रहने का शाप दे दिया। राजा के प्रार्थना करने पर किसी तरह विद्याधरों ने उसे स्यानन्दूर मे रहने की अनुमति दे दी। अपनी प्रेयसी के विरह मे निमग्न वह राजा मयूर द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अन्नकर नगरी मे सन्देश भेजता है। इस दूतकाव्य के पूर्वभाग और उत्तर भाग दो भाग है। पूर्वभाग में १०७ और उत्तर भाग मे ९२ श्लोक है। विचार तारतम्य वस्तु वर्णन छन्द तथा शिल्पविधान की दृष्टि से यह काव्य मेघ संदेश का सफल अनुकरण है। माधुर्य और प्रसाद गुण होने पर भी लम्बे और क्लिष्ट समास है। उदाहरण-

अविरतमदधारा धोरणी पारणोदयन्।

मदमधुकरमालाकूजितोद्घोषिताराम्।।

हंसदूत[2] - इस दूतकाव्य के रचनाकार वामन भट्ट बाण हैं। हंसदूत का समयकाल वि० पञ्चदश शतक है। हंसदूत काव्य की कथा मेघदूत की जैसी है। इस दूत काव्य मे केवल इतना भेद है कि हंसदूत में यक्ष रामगिरि पर्वत पर न रहकर सुदूर दक्षिण भारत मे कैलाश पर्वत पर रहता है और मेघ के स्थान पर हंस को अपना दूत बनाता है। इसके दो भाग है (१) पूर्व भाग

---

[1] सं० के सन्देश काव्य प्र० सं० ३३३

[2] सं० के सन्देश काव्य प्र० सं० ३३३

इसमे ६१ श्लोक है। (२) उत्तर भाग इसमे ६० श्लोक हैं। मन्दाक्रान्ताछन्द का ही सम्पूर्ण काव्य में प्रयोग है। माधुर्य और प्रसाद गुण युक्त भाषा में ही काव्य की रचना की गई है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है। स्थान-स्थान पर भाव पूर्ण सूक्तियाँ और उदात्त वर्णन इस काव्य मे दृष्टिगोचर होते है जैसे-

को वा लोके विरहजनितां वेदनां सोदुमी।

अतः यह सन्देश काव्य प्रथम कोटि की साहित्यक रचना है।

मनोदूत[१]- दूत काव्यो की परम्परा मे इस मनोदूत काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। इस दूतकाव्य के रचयिता विष्णुदास हैं। मनोदूत का रचनाकाल वि० सं० १५२१ है। जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है इस काव्य में मन को दूत बनाया गया है। कवि विष्णु दास स्वयं एक भक्त के रूप मे पाठको के समक्ष इस काव्य में आते हैं। संसार में लोगों के पापों और दुःखो की चिन्ता करते, विकल होकर वे भगवान कृष्ण की शरण में जाने का विचार करते है। वे अपने मन को दूत बनाकर भगवान के चरण कमलो में अपना नम्र निवेदन सन्देश के रूप में भेजने की चेष्टा करते हैं। इस दूतकाव्य मे भावों की सरलता के साथ-साथ भाषा भी बड़ी मधुर और ललित है। शान्त रस के अनुकूल काव्य मे माधुर्य गुण और वेदर्भी रीति का ही अनुकरण है। काव्य में शब्द विन्यास का नैपुण्य है। बसन्तलिका छन्द है।

कोक सन्देश[२]**:-** यह दूतकाव्य त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज से प्रकाशित हुआ है। कोक सन्देश का रचनाकार विष्णुत्रात नामक कोई कवि है। इस काव्य में एक राजकुमार श्री विहारपुर से कामाराम नामक नगर में अपनी प्रेयसी के पास कोक के द्वारा अपना प्रेम सन्देश भेजता है। काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द है। काव्य की कथा काल्पनिक है। विप्रलम्भ श्रृंगार पूर्ण

---

१ **संस्कृत के सन्देश काव्य पृ० सं० ३४५-३५४**

२ **संस्कृत के सन्देश काव्य पृ० सं० ३६२**

काव्य मे है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। काव्य में सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। विषय व्यवस्था, शैली, छन्द और भाव विन्यास सभी मे मेघदूत का अनुकरण किया गया है।

उद्धव-संदेश[१] - उद्धव संदेश दूतकाव्य के रचयिता रूप गोस्वामी हैं। प्रस्तुत दूत काव्य का समय वि० षोडश शतक का उत्तरार्ध माना गया है। कवि ने अपनी कल्पना से मार्गवर्णन, मार्ग मे द्रष्टव्य स्थानो का महत्व, गोपियो के चरित का कीर्तन तथा अन्य रमणीय प्रसंग उपस्थित कर काव्य को मधुर बना दिया है। उपर्युक्त काव्य मे श्रीकृष्ण गोपियों की विरह-वेदना का वर्णन उद्धव से करते हैं तत्पश्चात् राधा की मनोव्यथा का वे विशेष रूप से उल्लेख करते है तथा उसको सान्त्वना देने के लिए उद्धव से गोकुल जाने की प्रार्थना करते है। काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृगार ही है। समग्र काव्य मे मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग है। काव्य में कुल १३१ श्लोक है। यह दूतकाव्य मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। अतः इसकी भाषा शैली आदि पर मेघदूत की स्पष्ट छाप दीख पड़ती है।

हंसदूत[२] :- इस दूतकाव्य की कथा काल्पनिक ही है। श्रीमद्भागवत से प्रेरणा लेकर ही यह काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। भगवान् श्री कृष्ण जब अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं तब राधा अपने खिन्न मन को बहलाने के लिए अपनी सखियों के साथ यमुना-तट पर जाती है। वहाँ कृष्ण की स्मृति आ जाने पर तत्काल मूर्छित हो जाती है। इस प्रकार जब वह पुनः चैतन्य को प्राप्त करती हैं उसी समय किसी सखी को हंस दिखाई पड़ जाता है वह उसे अपना दूत बनाकर कृष्ण की सभा में मथुरा भेजती हैं। हंसदूत काव्य के रचनाकार रूपगोस्वामी है। प्रायः दूतकाव्यों में

---

१ संस्कृत के सन्देश काव्य पृ० सं० ३७५-७६

२ संस्कृत के सन्देश काव्य पृ० सं० ३८५

मंगलाचरण का प्रयोग नही होता। लेकिन इस कवि ने काव्य के आदि मे कृष्ण की स्तुति मे मंगलाचरण भी किया है। समस्त काव्य मे शिखरिणी छन्द का ही प्रयोग है। वैदर्भी रीति तथा माधुर्य गुण का प्रयोग है। इस दूत काव्य मे कवि ने भक्ति की पवित्र धारा बहाई है।

उद्धवदूत[१] :- उद्धवदूत के रचयिता श्री माधव कवीन्द्र भट्टाचार्य हैं। इस दूतकाव्य का रचनाकाल वि० सप्तदश शतक है। जैसा काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस काव्य में उद्धव को दूत बनाया गया है। श्रीकृष्ण गोपियों के लिए अपना संदेश देकर उद्धव को मथुरा से गोकुल भेजते है। काव्य मे विप्रलम्भ श्रृंगार का मुख्य रूप से चित्रण किया गया है। तदनुसार माधुर्यगुण और वैदर्भीरीति का प्रयोग है। मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग है। केवल अन्त के श्लोक में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है। काव्य में कुल १४१ श्लोक है।

भ्रमरदूतः- इस दूतकाव्य के रचयिता रुद्रन्यायपञ्चानन हैं। भ्रमर काव्य का समय वि० सप्तदश शतक का उत्तरार्द्ध है। इस दूत काव्य की कथा रामायण की कथा से सम्बन्ध रखती है। कवि ने अपनी कल्पना से मूल कथा मे एक और घटना बढ़ा दी है। रावण जब सीताजी को हर कर लंका ले जाता है तब सीताजी की खोज करते करते रामचन्द्र माल्यवान् पर्वत पर पहुँचते है। वहाँ से सीताजी की खोज के लिए हनुमान जी को लंका भेजते हैं। हनुमान एक ही दिन में सीताजी का पता लगाकर तथा चूड़ामणि लेकर वापस आ जाते है। इधर रामचन्द्र जी सीताजी के विरह में व्याकुल रहते है, निकट के सरोवर मे भ्रमर दिखलाई पड़ जाता है। बस वे भ्रमर को अपना दूत बनाकर सीता के पास भेजते हैं। कवि ने मेघदूत से प्रेरणा लेकर ही यह काव्य लिखा है। बंगाल के संस्कृत दूतकाव्यों में यह काव्य एक सरस तथा सुन्दर रचना है। यद्यपि विषय भाव तथा भाषा और शैली इत्यादि की दृष्टि से

---

[१] संस्कृत के सन्देश काव्य पृ० सं० ३९७-९८

यह काव्य मेघदूत का अनुकरण है। फिर भी काव्य मे अनेक स्वतन्त्र कल्पनाएं पाई जाती है और विप्रलम्भ शृंगार का तो बड़ा ही भाव पूर्ण चित्रण किया गया है। काव्य की भाषा मधुर तथा प्रसाद पूर्ण है। समग्र काव्य मे १२३ श्लोक है। जो मन्दाक्रान्ता छन्द मे उपनिबद्ध है।

पिकदूत[१] :- पिकदूत काव्य के रचयिता भी रूद्रन्यायपञ्चानन है। यह पिकदूत एक बहुत छोटा सा दूतकाव्य है। इस दूतकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ते के प्रो० चिन्ताहरण चक्रवर्ती एम० ए० के निजी पुस्तकालय में है। इस काव्य में मथुरा मे स्थित श्रीकृष्ण के पास राधा ने वृन्दावन से पिक को अपना दूत बना कर भेजा है। इस दूत काव्य का समय विक्रम सप्तदश शतक का उत्तरार्ध है। दूतकाव्यो के शिल्पविधान मे शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग कर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। विरह वर्णन में तीव्रता होते हुए भी शृङ्गारिकता संयत रूप से काव्य मे पाई जाती है। भाव तथा रस के अनुकूल काव्य में माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति सर्वत्र पाई जाती है।

भृङ्गदूत :- यह सन्देशकाव्य 'नागपुर विश्वविद्यालय पत्रिका' सं. ३ दिसम्बर, १९३७ में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुतदूत काव्य के रचयिता शताव धानकवि श्रीकृष्ण देव हैं। काव्य की कथा इस प्रकार है- पूर्णानन्द, परमपुरूष, कमलनयन श्री कृष्ण भगवान् के विरह में एक गोपी अत्यन्त व्याकुल रहती है। चांदनी रात भी कल्प के समान उसे प्रतीत होती है। एक दिन सूर्योदय होने पर मधुर-मधुर गूंजता हुआ एक भौरां उसे दिखाई पड़ जाता है। बस, कृष्ण के पास अपना सन्देश भेजने के लिए उसे अपना दूत बनाकर श्री कृष्ण के पास भेजती है। यह काव्य पूर्णतया मेघूदत की शैली पर ही लिखा गया है। मन्दाक्रान्ता छन्द का ही काव्य में प्रयोग है। काव्य की

---

१ **सं० के सन्देश काव्य पृ० सं० ४२२-२३**

भाषा प्रसाद गुणयुक्त है तथा भावो की कोमलता भी है। स्थान-स्थान पर कोकिल शुक और भौरो के मधुर रव तथा संगीत की मधुर धारा का प्रवाह सा काव्य मे दीख पड़ता है। काव्य मे अनुप्रास की छटा दर्शनीय है जैसे 'कुञ्जे कुञ्जे कलितकुसुमे कल्पयन्नगरागम् है।

पदाङ्कदूत :-[१] प्रस्तुत दूतकाव्य के रचयिता कृष्णसार्वभौम हैं। इस दूतकाव्य का समय वि. सं. १७८० है। कृष्ण के विरह में व्याकुल तथा उन्मत्त हो घूमती हुई गोपी अपने घर से यमुना तट पर स्थित किसी कुंज में जाती है। वह कृष्ण को न पाकर वह अचेतन अवस्था में हो जाती है। कुछ समय पश्चात मूर्च्छा चेतन अवस्था की स्थिति आने पर उसे श्री कृष्ण के चरण चिह्न दिखलाई पड़ता है अतः वह श्रीकृष्ण के चरण चिह्न से दूत के रूप में कृष्ण के पास मथुरा जाने की प्रार्थना करती है। काव्य में कुल ४६ श्लोक है। अन्त का एक श्लोक शार्दूलविक्रीडत छन्द में है। शेष समस्त श्लोक मन्दाक्रान्ता छन्द में ही है। इस दूतकाव्य में साहित्य भक्ति और दर्शन इन तीन धाराओ का काव्य मे अपूर्व संगम है। बौद्ध दर्शन का खण्डन भी कवि ने खूब ही किया है। काव्य सरस तथा अपूर्व संगम है। बौद्ध दर्शन का खण्डन भी कवि ने यथास्थान खूब ही किया है। काव्य सरस तथा मोहनीय है।

मनोदूत :-[२] इस दूत काव्य का लेखक तैलंग ब्रजनाथ हैं। मनोदूत का समय वि. सं. १८१४ है। इस काव्य की कथा महाभारत की द्रौपदीचीर हरण घटना पर आश्रित है। युधिष्ठिर द्यूतक्रीडा में द्रौपदी को दाव पर लगाते है और हार जाते है। दुर्योधन के आदेशानुसार दुःशासन द्रौपदी का केश पकड़ कर उसे बलपूर्वक राजसभा में खींच लाता है। वहाँ कर्ण उसका बड़ा

---

[१] संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. ४३५-३६

[२] संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. ४४५-४६

तिरस्कार करता है और दुःशासन को उसके वस्त्र उतारने का आदेश देता है। इस असहाय अवस्था में द्रौपदी भगवान कृष्ण की याद करती है तथा किसी और को समीप न पाकर मन को ही दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास द्वारका भेजती हैं। सम्पूर्ण काव्य मे कुल २०२ शिखरिणी छन्द है। छन्द की दृष्टि से दूत काव्य की परम्परा मे यह सर्वथा नवीन है। भाषा मे सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। रचना प्रसादगुण युक्त है। करूण रस प्रधान है। कवि ने यमक और अनुप्रास का बड़ा चमत्कार दिखाया है। कही-कही अलंकार के अभाव में भी लययुक्त मधुर शब्द विन्यास द्वारा कवि ने सुन्दरपद्यों की रचना की है यथा-

विना दिव्योद्धारं भवजलधितारं व्रजवधू-

हृदो हारं रूपद्रविणजितमारं नरवरम् ।।

वातदूत :-[१] प्रस्तुत दूतकाव्य के रचयिता श्री कृष्णनाथ न्याय पञ्चानन है। वातदूत का समय वि. सं. १९२२ है। इस काव्य की कथा रामायण से सम्बद्ध है। रावण दण्डाकरण्य में पञ्चवटी से सीताजी को हर कर लंका ले जाता है। वहॉ अशोक वाटिका मे ठहरा देता है पतिवियोग मे सीताजी का हृदय व्याकुल रहता है। वसन्त ऋतु में शीतल वायु के सुखद स्पर्श से कुछ शान्ति का अनुभव करती है। अन्त मे वायु को दूत बनाकर उसके साथ श्री रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी के पास अपना विरह सन्देश भेजती हैं। मेघदूत से प्रेरणा पाकर यह दूत काव्य लिखा गया है। समग्र काव्य में १०० श्लोक है। जो मन्दाकान्ता छन्द में लिखे गये हैं। काव्य में विप्रलम्भ शृङ्गार रस होते हुए भी संयम से काम लिया गया है। भाषा की दृष्टि से काव्य कुछ दुरूह ही है। माधुर्य तथा प्रसाद गुण की काव्य में न्यूनता है और गौडी रीति का ही काव्य में अनुसरण किया गया है। उदाहरणार्थ- **चञ्चच्चञ्चु क्षत शत गलद्रक्त धाराकुलाङ्गः -------तं संजिगाय।।**

---

१ संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. ४५१-५२

पान्थदूत :-[१] इस सन्देश काव्य की केवल एक ही हस्तलिखित प्रति (सं. ३८९०) इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन मे सुरक्षित है। पन्थदूत का रचनाकाल आधुनिक काल है। इस दूतकाव्य की कथावस्तु श्रीमद्भागवत से सम्बद्ध है। कृष्ण और गोपियो के प्रेम को ही लेकर यह काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है- यमुना के किनारे कोई गोपी कृष्ण की स्मृति मे मूर्छित होकर गिर पड़ती है। उसकी सेविकाये उसे जल इत्यादि से चेतन अवस्था मे लाती है। इसी अवसर पर मथुरा की ओर जाता हुआ एक पथिक दिखलाई पड़ जाता है। बस गोपियां उसी को अपना दूत बनाकर कृष्ण के पास अपना प्रेम सन्देश भेजती है। इस काव्य मे विरह का वर्णन थोड़ा है, पर कृष्ण को तरह-तरह के उपालम्भ दिये गये है। इस काव्य मे पथिक को गापियो का दूतकल्पित करके कवि ने काव्य में कुछ वास्तविकता ला दी है।

हनुमद्दूतम् :-[२] इस काव्य के रचयिता श्री विज्ञसूरि वीरराघवाचार्य है। आधुनिक सन्देशकाव्यो मे इस सन्देश काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। इस काव्य मे मेघूदत के प्रत्येक पद की चतुर्थ पंक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। काव्य का समय वि. सं. १८८५ है। इस काव्य की कथा वाल्मीकि रामायण से सम्बद्ध है। रामचन्द्रजी के द्वारा हनुमान जी को सीता जी की खोज मे लंका भेजने की घटना के आधार पर इस दूत काव्य की रचना की गई है। काव्य की कथा इस प्रकार है। प्रस्रवण गिरि पर सुग्रीव इत्यादि के सहित रामचन्द्र जी ठहरे हुए हैं। सीता जी की खोज के लिए विभिन्न दिशाओं

---

१ संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. ४६१-४६२
लेखक तथा प्रकाशक- डा. रामकुमार आचार्य एम. ए. पीएच. डी. व्याकरणाचार्य प्रध्यापक, स्वातकोत्तर संस्कृत विभाग गर्वमेन्ट कालेज अजमेर। आगरा वि. द्वारा सं. १९५७ मे पी. एचडी. की उपाधि के लिए स्वीकृतशोधग्रन्थ।

२ वही, पृ. ४७०-४७१

मे वानरो का दल भेजा जा रहा है। लंका की ओर भेजे जाते हुए हनुमान जी को विशेष बलशाली तथा कुशल देखकर रामचन्द्र जी उनका विशेष स्वागत करते है। तथा अभिज्ञान स्वरूप अपनी अँगूठी देकर उन्हें सीता जी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश भी सुनाते हैं। मौलिक दूत काव्य होने के साथ-साथ मेघूदत की समस्या पूर्ति होने के कारण आधुनिक संदेश काव्य मे एक विशिष्ट स्थान रखता है। मन्दाक्रान्ता छन्द ही काव्य मे प्रयुक्त है। यह दूत काव्य दो भागो मे बँटा हुआ है पूर्व भाग में ६८ तथा उत्तर भाग में ५८ श्लोक हैं। काव्य मे विप्रलम्भ शृङ्गार रस प्रधान है। विषय, भाव तथा शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत जैसा है। अतः भावों तथा रस की समानता ने भी काव्य को दुरूह नही बनने दिया है। शिल्प विधान के दृष्टिकोण से भी यह दूतकाव्य ठीक ही है। मेघदूत की समस्यापूर्ति होने के कारण जैनेतर दूतकाव्यो मे इस काव्य का एक विशिष्ट स्थान है।

उपर्युक्त दूतकाव्यों के अतिरिक्त अन्य और भी दूतकाव्यों का अन्य काव्यो मे उल्लेख मिलता है जिनका संक्षिप्त मे वर्णन वर्णक्रमानुसार इस प्रकार है।

अनिलदूतम् :-[१] यह दूत काव्य कृष्ण कथा पर अधारित है। काव्य में वायु द्वारा दौत्य-कर्म सम्पादित करवाया गया है। इस दूतकाव्य के रचयिता श्री रामदयाल तर्क रत्न है। दूत काव्य का प्रथम श्लोक हैः-

श्रीमत्कृष्णे मधुपुरगते निर्मला कापि बाला
गोपी नीलोत्पलनयनजां वारिधारां वहन्ती।
म्लानिप्राप्त्या शशधरनिभं धारयन्ती तदास्यं
गाढप्रीतिच्युतिकृतजरा निर्भरं कातराऽभूत्।

---

[१] **प्राच्य वाणी मन्दिर कलकत्ता की हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में द्रष्टव्य।**

इस दूत काव्य की कथा इस प्रकार है कि कृष्ण के मथुरा चले जाने पर निर्मला नामक एक गोपबाला विरह से बहुत व्याकुल हो उठती है। अपनी इस विरह व्यथा को श्रीकृष्ण तक पहुँचाने हेतु वह वायु को अपना दूत बनाकर अपना विरह सन्देश श्री कृष्ण के पास भेजती है। काव्य पूर्ण रूप मे उपलब्ध नही है, उसके कुछ अंश मात्र उपलब्ध हैं।

अब्ददूत :-[१] यह दूत काव्य राम कथा पर आधारित है। उसके रचनाकार श्रीकृष्णचन्द्र है। काव्य अप्रकाशित है। मूलप्रति तालपत्र पर लिखित सुरक्षित है। काव्य में १४९ श्लोक है। कथा यह है कि श्री रामचन्द्र जी सीता के विरह मे व्याकुल है और मलयपर्वत पर विचरण करते है और तभी आकाश मे मेघ को देखकर अत्यधिक विरहातुर हो जाते हैं और उसे अपना दूत बनाकर सीता के पास अपना विरह सन्देश भेजते हैं।

अमर सन्देश :-[२] इस दूत काव्य के रचनाकार के विषय मे किञ्चिन्मात्र भी जानकारी नहीं है। इस काव्य का उल्लेख सूचीपत्र पर प्राप्त हुआ है।

कपिदूतम् :- इस काव्य के रचनाकार के विषय में कुछ भी जानकारी प्राप्त नही है। ढाका विश्वविद्यालय के पुस्तकालय (हस्तलिखित ग्रन्थ सं. ९७५ वि.) मे इस काव्य की एक खण्डित हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है।

काकदूतम् :- इस दूतकाव्य के रचयिता कवि श्री गौरगोपाल शिरोमणि जी है। काव्य की कथा कृष्ण भक्ति पर आधारित है। इस काव्य में दौत्य कर्म को एक काक द्वारा सम्पादित करवाया गया है।

---

१ अप्रकाशित (आचार्य मेरूतुङ्ग कृत जैन मेघूदतम् (भूमिका मूल, टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित) डा. रविशंकर मिश्र।

२ श्री जीवानन्द सागर द्वारा उनके काव्य संग्रह के प्रथम भाग के तृतीय संस्कृरण में सन् १८८८ में कलकत्ता से प्रकाशित डा. जोन हेबालिन द्वारा उनके काव्य संग्रह १८४७ में कलकत्ता में प्रकाशित।

इस दूतकाव्य की कथा इस प्रकार है कि राधा कृष्ण के वियोग में बहुत व्याकुल हो उठती है। अतः काक को अपना दूत बनाकर (उसके द्वारा अपनाविरह सन्देश श्री कृष्ण के पास पहुँचाती हैं।

काव्य का रचनाकाल शक सं. १८११ है। काव्य बहुत ही सुन्दर है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से काव्य पूर्णता को प्राप्त है। कवि ने अपनी निपुणता का पूरा समायोजन किया है। काक दर्शनोपरान्त श्री राधा के मन में दो तरह की भावनाएँ उत्पन्न होने लगता है कि या तो यह काक मेरा उपकार ही करेगा या फिर अपकार अर्थात नाश ही करेगा। काक मे यह दोनों शुभ और अशुभ सूचक भाव सन्निविष्ट है। यथा-

काकोदरो यादृश एव जन्तोः काकध्वजो वा जलसम्भवस्य।

काकोलरूपः किमु नाशकोऽत्र काकोऽयमागान्मम सन्निधाने।।

इस दूतकाव्य मे अनेक छन्दो का प्रयोग किया गया है।

काकदूतम् :-[१] इस काव्य के रचयिता के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। मात्र 'सहृदय' नामक मासिक पत्रिका के अंक मे इस काव्य का उल्लेख मिलता है।

काकदूतम् :-[२] इस काव्य के रचनाकार के विषय में कुछ भी ज्ञात नही है। इसमें कारागार मे पड़ा एक ब्राह्मण काक के द्वारा अपनी प्रेयसी कादम्बरी के पास अपना सन्देश भेजता है। यह एक व्यंग्यपरक दूतकाव्य है। समाज को नैतिकता की शिक्षा देने के विचार से रचा गया है।

---

१ बंगीयदूतकाव्येतिहास डा. जे. बी. चौधरी प्र. ९७

२ संस्कृत साहित्य का इतिहास-कृष्णमाचारियर, पृ. सं. ३६५

कीरदूतम् :-[१] यह दूतकाव्य श्री कृष्ण की कथा पर अधारित है। यह श्री रामगोपाल द्वारा रचा गया है। इसमें दूत सम्प्रेषण का कार्य एक कीर अर्थात् शुक के माध्यम से करवाया जाता है। श्री कृष्ण से वृन्दावन चले जाने पर गोपियाँ उनके वियोग मे बहुत व्याकुल है और अपनी विरह व्यथा का सन्देश एक कीर के माध्यम से श्री कृष्ण तक पहुँचाती है। काव्य मे १०४ श्लोक है। काव्य अद्यावधि अप्रकाशित है।

कीरदूतम् :-[२] यह दूतकाव्य वेदान्तदेशिक के पुत्र वरदाचार्य द्वारा रचा गया है। कीरदूत काव्य अप्राप्त है। परन्तु मैसूर की गुरू परम्परा मे इसका उल्लेख मिलता है।

कोकिलदूतम् :-[३] कृष्ण भक्ति को लेकर प्रस्तुत यह दूतकाव्य कवि श्री हरिदास जी द्वारा रचा गया है। काव्य का रचनाकाल शक सं. १७७७ है। काव्य में १०० श्लोक है। काव्य मन्दाक्रान्ता मे रचा गया है। दूतकाव्य की कथावस्तु निम्न प्रकार हैः- श्री राधा के हृदय मे विरहव्यथा अति मार्मिकता से समाविष्ट हो चुकी थी, क्योकि उनके प्रियतम श्रीकृष्ण उन्हें छोड़कर मथुरा को चले गये थे। फलतः मन को शान्त करने के उद्देश्य से राधा एक कोकिल को ही अपने प्रियतम के पास सन्देश देकर भेजती है। इस काव्य में कवि की निपुणता पूर्ण रूप से प्रतिभासित होती है।

कोकिलसन्देश :-[४] दूतकाव्य परम्परा में अपने नाम का यह दूसरा दूत काव्य है। इस काव्य की रचना श्री नरसिंह कवि ने की है। इसकी कथा

---

१ श्री हरिप्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थो की सूची के भाग १, पृ. ३९, संख्या ६७ पर द्रष्टव्य

२ संस्कृत के सन्देश काव्य- रामकुमार आचार्य परिशिष्ट२।

३ कालिदास की मणिमाला व्याख्यासहित सुधामय प्रमाणित द्वारा कलकत्ता से बंगीय सं. १३९१ में प्रकाशित।

४ अद्यार पुस्तकालय के हस्तलिखित सूचीपत्र के द्वितीय भाग मे

इस प्रकार है - कि एक कामपीड़ित नायक अपनी नायिका के पास अपना विरह सन्देश कोकिल के माध्यम से भेजता है। इस प्रकार इसमें सन्देश सम्प्रेषण का कार्य एक कोकिल के माध्यम से करवाया गया है।

कोकिलसन्देश :- इस दूत काव्य के पूर्व इसी नाम के तीन और दूतकाव्य मिले है। इस दूतकाव्य के काव्यकार श्री वेकटाचार्य जी है। इसमे भी एक नायक अपनी विरहिणी नायिका के पास अपना सन्देश एक कोकिल के माध्यम से भेजता है।

कोकिल सन्देश :-[१] इस दूतकाव्य के रचनाकार वेदान्तदेशिकं के पुत्र श्री वरदाचार्य जी हैं। यह दूतकाव्य, इस काव्य परम्परा में अपने नाम के ही अन्य काव्यों में पञ्चम है। इसमें भी कोकिल के माध्यम से एक विरही अपनी विरहिणी के पास अपना विरह सन्देश भेजता है। इस दूतकाव्य का उल्लेख मैसूर की गुरू परम्परा में मिलता है।

कोकिलसन्देश :-[२] श्री गुणवर्धन द्वारा प्रणीत यह दूतकाव्य इस परम्परा का षष्ठम् दूतकाव्य है। इसमे भी सन्देश का सम्प्रेषण कार्य कोयल द्वारा करवाया गया है।

कृष्णदूतम् :-[३] इस दूतकाव्य के रचनाकार श्री नृसिंह कवि जी है। काव्य में कृष्ण को दूत के रूप में चित्रित किया गया है। इस दूतकाव्य का मात्र उल्लेख मिलता है अभी काव्य प्रकाशित नहीं हो पाया है।

---

१ डब्लू एफ. गुणवर्धन न्यूयार्क द्वारा सम्पादित।

२ सीलोन ऐण्टिक्वेरी, भाग ४ पृ. १११ पर द्रष्टव्य, अप्रकाशित

३ अड्यार पुस्तकालय की हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की सूची के भाग २ संख्या ४ पर द्रष्टव्य।

गरूड़ सन्देश :- अपने नाम का यह दूसरा दूतकाव्य श्री नृसिंहाचार्य द्वारा प्रणीत है। जो कि तिरूपति स्थान के हैं। इस काव्य के बारे मे कोई भी अन्य सामग्री नही प्राप्त होती है।

गोपीदूतम् :-[१] यह दूतकाव्य कृष्ण कथा पर आधारित है। इस काव्य के रचनाकार श्री लम्बोदर वैद्य जी है। इस काव्य में गोपिकाओं ने धूलि के माध्यम से श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजा है। काव्य का नामकरण दूत पर आधारित न होकर दूत सम्प्रेषण कर्ता के नाम पर आधारित है। कथा कुछ इस प्रकार है कि मथुरा चले जाने पर गोपियॉ श्रीकृष्ण के वियोग मे व्याकुल हो उठी। मथुरा जाते समय गोपियों ने श्रीकृष्ण का अनुगमन भी किया पर निष्फल होकर वापस आ गयीं। उस समय श्रीकृष्ण के रथ से उड़ती हुई धूलि को देख उन गोपियो ने उसी धूलि को ही अपना दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास भेजकर अपना सन्देश भेजा यथा —

गते गोपीनाथे मधुपुरमितौ गोपभवनाद्
गता यावद्धूली रथचरणजा नेत्रपदवीम् ।
स्थितास्तावल्लेख्या इव विरहतो दुःखविधुरा
निवृत्ता निष्पेतुः पथिषु शतशो गोपवनिताः।।

घटखर्परकाव्यम् :-[२] संस्कृत के दूतकाव्यों मे इस काव्य का स्थान सर्वप्रथम है। यह दूतकाव्य मेघ सन्देश से भी पहले का लिखा हुआ है।

---

१ काव्य संग्रह : जीवानन्द विद्यासागर जिल्द ३, पृ. ५०७-५३०, कलकत्ता १८८८ अप्रकाशित।

२ पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला : ५१

-संपादक डा. सागरमल जैन

आचार्य मेरूतुङ्ग कृत जैनमेघदूतम्

भूमिका, मूलटीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित पृ. सं. ४०

कथावस्तु भी लगभग मेघूदत के ही समान है। यद्यपि नाम एवं स्वरूप से यह काव्य एक सन्देश काव्य सदृश नहीं प्रतीत होता, पर वस्तुतः यह काव्य भी एक सन्देश काव्य ही है। मात्र २२ श्लोक के इस अतिलघुकाय काव्य मे विभिन्न सुमधुर कर्णप्रिय छन्दों को प्रयुक्त कर कवि ने इस काव्य को एक सफल सन्देशकाव्य का स्वरूप प्रदान कर दिया है। महाकाव्यो तथा मेघदूतकाव्य के मध्य मे भावपक्ष एवं कलापक्ष इन दोनो दृष्टियो से यह काव्य एक अन्तरिम शृंखला का कार्य करता है। इस प्रकार संस्कृत के सन्देशकाव्यो के विकास के इतिहास मे इस घटखर्पर काव्य के महत्व को अस्वीकृत नही किया जा सकता है।[१] एक पुस्तक में 'घटखर्परकाव्यम्' न लिखकर 'घटकर्पर' नाम का काव्य मिलता है, जिसमे २१ पद्यों का छोटा से संग्रह है। इस दूतकाव्य मे वर्षाकाल के प्रारम्भ मे एक वियोगिनी द्वारा अपने प्रियतम के पास भेजे गये सन्देश का वर्णन है। इसमें कवि ने यमक के विषय मे गर्वोक्ति की हैः- जीयेय येन कविना यमकैः परेण तस्मै वहेयमुदकं घटकर्परेण। यमक के चमत्कार के अतिरिक्त घटकर्पर एक साधारण कोटि की रचना है। शैली की कृत्रिमता और शाब्दिक आडम्बर का आग्रह इसे कालिदास के बाद की रचना सिद्ध करते है। लेकिन जाकोबी का अनुमान है कि यह मेघदूत से पहले की रचना है क्योकि यदि बाद मे लिखा गया होता तो लेखक को गर्वोक्ति करने का साहस नहीं होता। परन्तु यह कथन सर्वथा निराधार है। इस काव्य की शैली और शब्दों का प्रयोग इसे कालिदास के 'मेघदूतम' से बाद की रचना सिद्ध करते हैं।

चन्द्रदूतम् :-[२] दूतकाव्य की परम्परा में यह अपने नाम का दूसरा दूतकाव्य है। इस काव्य के काव्यकार जम्बूकवि श्री विनयप्रभु जी हैं। इस

---

[१] **संस्कृत गीतकाव्य का विकास-डा. परमानन्द शास्त्री**

[२] **डा. जे. बी. चौधरी द्वारा सन् १९४१ में कलकत्ता से प्रकाशित (पार्श्वनाथ**

काव्य मे भी चन्द्र के माध्यम से ही दौत्यकर्म सम्पादित करवाया गया है। काव्य अति लघु है। इस्र दूतकाव्य में मात्र २३ श्लोक है भाषा बहुत परिमार्जित है। इसमे मालिनी छन्द का प्रयोग किया गया है। काव्य लघु होते हुए भी अत्यन्त रमणीय है।

झंझावात :- इस दूत काव्य की रचना राष्ट्रीय भावना को लेकर की गई है। रचनाकार श्रुतिदेवशास्त्री है। इस काव्य की रचना सन् १९४२ मे होने वाले आन्दोलन के समय हुई थी। काव्य में झंझावात को रोककर उसे दूत बनाकर इसके द्वारा अपना सन्देश-सम्प्रेषण किया गया है। नेता जी सुभाष चन्द्रबोस इस काव्य के नायक है। तथा उन्होने द्वितीय महायुद्ध के दौरान बार्लिन मे रहकर भारतीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने मे अपना संघर्ष जारी रखा था। उसी समय नेता जी ने एक दिन रात्रि में उत्तर की ओर से आते हुए झंझावात को रोककर उसी के द्वारा भारत की जनता को अपना सन्देश सम्प्रेषित किया है।

तुलसीदूतम् :-[१] इस दूतकाव्य के रचनाकार त्रिलोचन कवि हैं। यह दूतकाव्य कृष्ण कथा पर आधारित है। जैसा कि इस काव्य के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमे तुलसी वृक्ष द्वारा दौत्यकर्म सम्पादित करवाया गया है। काव्य में कुल ५५ श्लोक है। काव्य का रचनाकाल शक संवत १६३० है। काव्य की कथा इस प्रकार है कि कोई एक गोपी श्रीकृष्ण के विरह से संतप्त होकर वृन्दावन में प्रवेश करती है। वहॉ एक तुलसी के वृक्ष को देखकर अत्यधिक दुःख सन्तप्त हो जाती है और उसी द्वारा अपना सन्देश श्रीकृष्ण

विद्याश्रम ग्रन्थमाला ५ संपादक सागर मल जैन आ. मेरूतुङ्ग कृत जैन मेघदूतम् (भूमिका मूल टीका हिन्दी अनुवाद सहित-डा. रविशंकर मिश्र पृ. सं. ४२-४३ संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता के पुस्तकालय में पाण्डुलिपि उपलब्ध। प्राच्य वाणी मन्दिर, कलकत्ता के ग्रन्थ सूची पत्र के ग्रन्थ संख्या १३७ में द्रष्टव्य। अप्रकाशित

के पास भेजती है। कवि ने अपनी भावनाओं को काव्य में मूर्तरूप दे दिया है। इसलिए काव्य अत्यधिक चमत्कारपूर्ण बन गया है।

तुलसीदूतम् :-[१] कवि श्री वैद्यनाथ द्वारा प्रणीत एक और तुलसीदूतम् नामक दूत काव्य मिलता है। इसका रचना काल शक संवत १७०६ निर्धारित किया गया है। इस काव्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह काव्य प्रथम तुलसीदूतम् काव्य के पूरे-पूरे अनुकरण पर लिखा गया है। दोनों काव्यों की भाषा शैली रचना वैशिष्ट्य सब समान है। केवल काव्यकार और रचनाकाल से इन दोनो काव्यो की भिन्नता ज्ञात होती है। काव्य बहुत सुन्दर है पर इसका अभी तक पूर्णाश उपलब्ध नहीं हो पाया है।

दात्यूहसन्देश :-[२] इस सन्देशकाव्य के बारे में कुछ भी अधिक जानकारी नही प्राप्त है। काव्य के रचयिता श्रीनरायण कवि हैं।

दूतवाक्यम् :- दूतकाव्य परम्परा में आदिकाव्य 'रामायण' के बाद भी भास रचित इस दूतकाव्य की ही गणना है। काव्य की कथा विप्रलम्भ शृङ्गार पर आधारित न होकर राजनीति से सम्बन्धित है। युधिष्ठिर के दूत श्री कृष्ण दुर्योधन के दरबार में सन्धिप्रस्ताव हेतु जाते हैं। लेकिन दुर्योधन इसे नहीं स्वीकार करता है, प्रत्युत उन्हे अपमानित करता है। अतः श्रीकृष्ण उसे विनाश एवं महाभारत संग्राम की पूर्व सूचना देकर वापस चले आते हैं। काव्य बहुत सुन्दर है।[३]

प्राच्य वाणी मन्दिर कलकत्ता के ग्रन्थ संख्या १३७ के रूप में द्रष्टव्य। अप्रकाशित (आ. मेरूतुङ्गकृत जैन मेघदूतम् भूमिका मूल टीका हिन्दी अनुवाद आदि-डा. रविशंकर मिश्र पृ. सं. ४३।

२ त्रावनकोर की संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थसूची की ग्रन्थ सं. १९५ पर द्रष्टव्य अप्रकाशित।

३ प्रकाशित है पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थ माला ५१ संपादक-डा. सागरमल जैन

दूतघटोत्कच :-[१] दूतवाक्यम् के रचयिता श्री भास ही इस दूतकाव्य के भी रचनाकार है। इसमें भी कथा प्रसंग राजनीति से प्रेरित है, शृङ्गार पर आधारित नही। महाभारत का युद्ध जब अवश्यम्भावी हो जाता है तब श्री कृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजते हैं। गया वह वहॉ पहुॅचकर विनाश की स्थिति से दुर्योधन को अवगत कराते है, पर दुर्योधन कुछ नहीं सुनता है। तब घटोत्कच आदि भी युद्ध हेतु तैयार होते हैं। काव्य बहुत अच्छा है।

देवदूतम् :-[२] इस दूत काव्य के कर्त्ता के विषय में किंचदपि जानकारी नही है। परन्तु यह काव्य हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय से प्रकाशित आधुनिक दूतकाव्यो मे उल्लेखित है।

नलचम्पू :-[३] अन्यदूतकाव्यो की भॉंति इस दूतकाव्य की कथा रामभक्ति या कृष्णभक्ति पर आधारित न होकर पौराणिक कथा पर अधारित है। पुण्यश्लोक नल की कथा इस दूतकाव्य मे वर्णित है। काव्य के रचयिता श्री त्रिविक्रमभट्टजी है। काल निर्धारण में कुछ मत वैभिन्र्य अवश्य है पर प्राप्त सूत्रो के आधार पर ई. सन् ९१५ मे इस काव्य ग्रन्थ की रचना स्वीकृत हुई है।

काव्य में नल एवं दमयन्ती की प्रेमकथा वर्णित है। काव्य में दूत सम्प्रेषण की झलक एक ही स्थान पर नहीं, प्रत्युत अनेक स्थलों पर मिलती है। हंस एक पक्षी विशेष काव्य के नायक एवं नायिका है जो दोनों का दूत

आचार्य मेरूतुङ्ग कृत जैनमेघूदतम् (भूमिका मूल टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित-डा. रविशंकर मिश्र पृ. सं.

१ प्रकाशित (वहीं उद्धृत है पृ. सं. ४४)

२ प्रकाशित (वहीं उद्धृत है पृ. सं. ४५)

३ प्रकाशित (आ. मेरूतुङ्ग कृत जैग मेषदूतम् भूमिका, मूल टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित-डा. रवि शंकर मिश्र पृ. सं. ४५)

बनकर, उन दोनो के सन्देश को एक दूसरे के पास पहुँचाता। है वहीं नल देवताओ का दूत बनकर उनके सन्देश को अपनी प्रिया तथा काव्य की नायिका दमयन्ती के पास तक पहुँचाता है। काव्य बहुत ही विचित्र है।

काव्य में सात उच्छवास है। जिनमें सब मिलाकर ३७७ श्लोक है। काव्य अपूर्ण है। इस विषय मे रचनाकार के प्रति एक कथा मिलती है कि एक बार उन्हे राजपण्डित पिता जी की अनुपस्थिति में एक अन्य पण्डित से शास्त्रार्थ में विजय हेतु वाग्देवी से वर मिला। कि इस प्रकार यह काव्य अधूरा ही रह गया। अपूर्ण होने पर यह काव्य अपने आप मे अद्भुत है।

पद्मदूतम्ः-[1] राम कथा पर आधारित यह दूतकाव्य श्री सिद्धनाथ विद्यावागीश द्वारा प्रणीत है। काव्य में एक पद्म अर्थात् कमल को दूत बनाया गया है। सागर पर पुल बाँधने हेतु श्रीराम सागर तट पर पहुँचते है। सीताजी अशोक वाटिका मे थी। यह समाचार सीताजी को मिलता हैं कि श्री रामचन्द्र सागर तट पर पुल बाँधने हेतु आये हैं। इस समाचार को जानने के पश्चात् सीता जी के हृदय में तीव्र मिलनोत्कण्ठा उत्पन्न होती है। पर दूर होने के कारण यह असम्भव था। इसलिए अशोक वाटिका में विद्यमान एक कंमलपुष्प को देखकर उसी के माध्यम से अपना विरह सन्देश श्री राम के पास भेजती है। इस दूत काव्य में कुल ६२ श्लोक हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य एक पूर्ण दूतकाव्य के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

पदाङ्कदूतम्ः-[2] कवि भोलानाथ द्वारा यह दूतकाव्य रचित है। पूर्व के दूतकाव्य की भाँति इस दूत काव्य में भी पदचिह्न को ही, दूत के रूप में

---

[1] **विक्रम संवत १२२५ में कलकत्ता से प्रकाशित तथा इण्डिया आफिस पुस्तकालय के कैटलाग मे पृ. १८२६ पर द्रष्टव्य**

[2] **इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, केटलाग भाग ६ ग्रन्थ सं. १४६७ अप्रकाशित**

नियुक्त किया गया है। काव्य अभी अप्रकाशित है। मात्र सूचीपत्र में उल्लेखित है।

पवनदूतम्ः-[१] इस दूतकाव्य की रचना श्री जे. बी. पद्मनाभ ने की है इसमें भी पवन को ही दूत रूप में निश्चित किया गया है।

पिकदूतम्ः-[२] यह दूतकाव्य अम्बिकाचरणदेव शर्मा द्वारा प्रणीत है। काव्य में सन्देश हारक का कार्य पिक द्वारा ही सम्पादित करवाया गया है। काव्य का सम्पूर्ण भाग उपलब्ध नहीं है। काव्य का कुछ अंश ही प्राप्त है। इस काव्य मे कोई गोपकान्ता श्रीकृष्ण के वियोग मे व्याकुल है। परन्तु वह कोयल की आवाज सुनती है तो प्रसन्न हो जाती हैं और वह कोयल द्वारा अपना सुमधुर सन्देश श्री कृष्ण के पास पहुँचाती है।

पिकदूतम्ः-[३] एक और पिकदूतम् नामक काव्य मिलता है। इसके रचयिता के विषय में ज्ञान नहीं है फिर भी काव्य अत्युत्तम है। पिक को ही दूत बनाकर इस काव्य की रचना की गई है।

पिकसन्देशः- इस काव्य के रचयिता श्री रंगनाथाचार्य जी है। इस काव्य मे भी एक पिक को दूत के रूप में नियुक्त कर इसके द्वारा सन्देश कथन किया गया है। काव्य प्रकाशित है।

प्लवङ्गदूतम्ः-[४] संस्कृत दूतकाव्य परम्परा का यह अत्याधुनिक दूतकाव्य है। इसके रचयिता प्रो. वनेश्वर पाठक है, जो राँची विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर अधिष्ठित है। इस काव्य में एक प्लवङ्ग के द्वारा दौत्य

---

१ संस्कृत साहित्य का इतिहास कृष्णमाचारियर, पृ. २७५

२ प्राच्य वाणी मन्दिर, कलकत्ता में काव्य के कुछ अंश उपलब्ध है (अप्रकाशित)

३ श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती कलकत्ता के व्यक्तिगत पुस्तकालय में पाण्डुलिपि उपलब्ध हैं, (अप्रकाशित)

४ सुबोध ग्रन्थमाला कार्यालय, राँची द्वारा प्रकाशित

कर्म सम्पादित करवाया गया। इसमे दो निःश्वास है पूर्व निःश्वास और उत्तर निऽश्वास। इस दूत काव्य मे कोई भारतीय व्यक्ति नौकरी करने के लिए अपनी पत्नी के साथ पेशावर जाता है। वहॉ एक सरकारी नौकरी करने लगता है। पेशावर के निकट जावरोद गाँव में उसका छोटा सा सुन्दर मकान था जिसकी दीवारो पर राम-राम नाम अंकित था। अतः वह श्री राम का भक्त था। एक बार उसे सरकारी काम से वाराणसी आना पड़ता है। इसी बीच पाकिस्तान और भारत मे युद्ध छिड़ जाता है। और वह पाकिस्तान लौटने मे असमर्थ होकर अपनी पत्नी-वियोग के दिनो को अत्यधिक कष्ट से व्यतीत करने लगता है। चिन्ता से व्यथित होकर विश्वनाथ मन्दिर आता है। वहॉ मण्डप मे भक्तो के साथ श्रीरामचन्द्र की कथा सुनता है। उस कथा प्रसंग में जब वह राम द्वारा सीता के पास हनुमान से भेजे गये सन्देश की बात वह सुनता है तो उसे भी अपनी पत्नी का स्मरण हो जाता और वह स्मरण कर ध्यानमग्न हो जाता है। आँखे खुलने पर वह सामने प्लवङ्ग (वानर) को देखता है। प्लवङ्ग को देखकर वह प्रसन्न हो जाता है और उसका सत्कार करता है। उस प्लवङ्ग से अपनी प्रिया के पास सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना करता है। इसके साथ ही वह पाकिस्तान आने वाले मार्ग को विस्तार से बताता है तथा उस गन्तप्य मार्ग में जितने भी धार्मिक ऐतिहासिक स्थल और व्यक्ति हैं उनका दर्शन करने की भी उससे प्रार्थना करता है।

द्वितीय निःश्वास मे वह भारतीय व्यक्ति दूत बने प्लवंग या बन्दर से अपनी पत्नी के विरही रूप तथा उसकी मनोदशा का भी वर्णन करता है। इसप्रकार वह प्लवङ्ग उसकी प्रार्थना को स्वीकार करता है और वह पाकिस्तान जाने को तैयार हो जाता है। तभी राम की कथा समाप्त हो जाती है और भक्तों को देखकर वह प्लवङ्ग वहाँ से भाग जाता है। जब भक्तों की जयकार सुनकर प्रवासी का ध्यान टूटता है तो वह बहुत दुःखित हो जाता है। वह अत्यन्त खिन्न मन से अपने स्थान पर वापस आ जाता है। परन्तु उसकी

विकलता बढ़ती जाती है। अतः अब वह अपने मन के भावों को संस्कृत पद्यो मे निवद्ध कर पत्नी के नाम से दिल्ली मन्त्रणालय में भेजता है। उसके इस पत्र को परराष्ट्र मन्त्री पाकर उसकी पत्नी का पता लगाता है। तभी दोनो देशो के लोगो का अपने-अपने देश में प्रत्यावर्तन होता है। प्रवासी तथा उसकी पत्नी भारत रहना स्वीकार करते है। इसलिए भारत सरकार उसकी पत्नी को काशी पहुँचा देती है। वह प्रवासी अपने क्लेशों को भूलकर हर्ष का अनुभव करता है। काव्य के पूर्व निःश्वास में ८० तथा उत्तर नि५श्वास में २४ श्लोक है। काव्य अत्याधिक रोचक है।

मेघसन्देश विमर्शः-[१] कृष्णमाचार्य द्वारा यह दूतकाव्य रचा गया है। कालिदास के मेघूदत कां परवर्ती काव्य साहित्य पर कितना प्रभाव पड़ा। प्रस्तुत काव्य इस प्रभाव का स्पष्ट परिचायक है।

बुद्धिसन्देशः-[२] यह एक आधुनिक प्रकाशित रचना है इसके रच़यिता सुब्रह्मण्य सूरि जी है। इस दूत काव्य मे बुद्धि द्वारा सन्देश सम्प्रेषित किया गया है।

भक्तिदूतम्ः-[३] मात्र शृङ्गारिक काव्य के रूप में यह काव्य रचा गया है। काव्य के रचनाकार श्री कालिचरण है। काव्य का कथानक राम व कृष्ण भक्ति पर आधारित न होकर स्वयं काव्यकार के ही जीवन से सम्बन्धित है। कवि कालीचरण की प्रियतमा मुक्ति अपने प्रियतम से वियुक्त थी। इसीलिए मुक्ति के प्रति कवि ने भक्ति-दूती मुख से अपना सन्देश भेजा है। काव्य में कुल २३ श्लोक है। इस प्रकार काव्य अतिलघु होते हुए भी सुन्दर है।

---

१ संस्कृत साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला

२ संस्कृत साहित्य का इतिहास कृष्णमाचरियर पृ. सं. ३८० पैरा ३५२

३ श्री आर. एल मिश्र के संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची के भाग ३, संख्या १०५१ पृ. २७ पर द्रष्टव्य (अप्रकाशित)

भ्रमर सन्देशः-[१] दक्षिण भारत मद्रास के कवि श्री महालिङ्ग शास्त्री द्वारा यह दूतकाव्य रचित है। काव्य की कथा इन्द्रदेव से सम्बन्धित है। काव्य मे देवराज इन्द्र द्वारा भ्रमर को दूत बनाकर इन्द्राणी के पास अपना विरह सन्देश भेजा गया है।

भृंग सन्देशः-[२] श्री गंगानन्द कवि द्वारा प्रणीत अपने नाम का यह तीसरा दूतकाव्य है। यह काव्य १५वी शती के पूर्वाद्ध में रचा गया है। काव्य अप्रकाशित है। इसके सम्बन्ध मे अन्य कोई सूचना नही है।

मधुकरदूतम्ः-[३] यह दूतकाव्य स्वतन्त्र कथा पर आधारित है। यह दूतकाव्य श्री राज गोपाल द्वारा प्रणीत है। कवि सेण्ट्रल कालेज बंगलौर में सन् १९२२ से १९३४ तक संस्कृत विभागाध्यक्ष थे।

मधुरोष्ठसन्देशः-[४] इस दूतकाव्य का हस्तलिखित ग्रन्थ सूची में मात्र उल्लेख है। पर इसके शीर्षक से स्पष्ट होता है कि इसमे नायक-नायिका के प्रति दूत सम्प्रेषण का माध्यम कोई सुन्दर मधुरोष्ठ रहा है।

मनोदूतम्ः- यह दूतकाव्य श्री राम शर्मा द्वारा रचित है। सम्पूर्ण काव्य शिखरिणी छन्द मे निबद्ध है। यह दूतकाव्य सन्देश पाने वाले एवम् भेजने वाले की उक्ति प्रोक्ति, रूप में प्राप्त होता है। विषय विभाग हेतु परिच्छेद शब्द का प्रयोग मिलता है। काव्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में प्राप्त है। काव्य की रचना भागवत तथा पुराण की कथा पर आधारित है। इस प्रकार मनोदूतम् पर

---

१ त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज से सं. १२८ के रूप में संवत् १९३७ में प्रकाशित

२ संस्कृत के सन्देश काव्य-रामकुमार आचार्य परिशिष्ट २, अप्रकाशित

३ संस्कृत के सन्देशकाव्य, रामकुमार आचार्य परिशिष्ट २ अप्रकाशित

४ ओरियण्टल लाइब्रेरी, मैसूर का संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र ग्रन्थ सं. २५१ पर द्रष्टव्य अप्रकाशित

भक्ति रस पर आधारित है। इस प्रकार मनोदूतम् पर भक्ति रस आधारित एक सफल दूतकाव्य है।[१]

मनोदूतम्ः-[२] किसी अज्ञातनाम कवि द्वारा यह दूतकाव्य रचा गया है। समान्यतः इसमे दार्शनिक तत्त्व अधिक समाविष्ट हैं, क्योकि काव्य मे आत्मा और जीव का सम्बन्ध दिखलाया है।

मनोदूतम्ः-[३] यह दूतकाव्य भट्ट हरिहर के हृदयदूतम् के साथ प्रकाशित हो चुका है। इस काव्य की रचना इन्दिरेश ने की है।

मनोदूतम्ः-[४] विक्रम संवत १९६३ में श्री भगवद्दत्त नामक कवि ने मात्र १६-१७ वर्ष की लघुतर अवस्था मे ही इस दूतकाव्य की रचना की है। इसमें ११४ श्लोक है। यह काव्य कवि की कवित्वशक्ति व विस्मयकारक मेधा का स्पष्ट परिचायक है।

मयूखदूतम्ः-[५] इस दूतकाव्य के रचयिता मारवाड़ी कालेज रॉची के संस्कृत के विभागाध्यक्ष प्रो. रामाशीष पाण्डेय है। यह कृति भी दूतकाव्य परम्परा की अत्याधुनिक कृति है। काव्य में १११ मंन्दाक्रान्ता श्लोक है। इस दूतकाव्य में पटना के एक अनुसन्धाता छात्र ने इग्लैड में अपनी प्रेयसी के पास मयूख (रवि किरण) को दूत के रूप मे प्रेषित किया है। इस दूतकाव्य मे पटना से इग्लैड तक के महत्त्वपूर्ण स्थलों का भी वर्णन हुआ है।

---

१ बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता द्वारा सन् १९३७ में प्रकाशित तथा "हृदयदूत" के साथ प्रकाशित, प्रकाशन चुन्नी लाल बुकसेलर, बड़ामन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई

२ रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय, कश्मीर के लिखित ग्रन्थों की सूची पत्र पृ. १६० और २८६ अप्रकाशित।

३ चुन्नी लाल बुकसेलर, बड़ा मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई से प्रकाशित

४ जैनसिद्धान्त भास्कर (१९३६ ई.) भाग ३ किरण पृ. ३६। अप्रकाशित

५ श्याम प्रकाशन नालन्दा (बिहार) से ई. १९७४ में प्रकाशित।

मयूर सन्देशः-[१] यह दूतकाव्य श्रीरंगाचार्य द्वारा प्रणीत है। इस काव्य मे दूत सम्प्रेषण का माध्यम मयूर को बनाया गया है। राम या कृष्ण कथा पर आधारित न होकर काव्य की कथा स्वतन्त्र है।

मयूर सन्देशः-[२] इस तृतीय मयूर सन्देश के रचनाकार श्री निवासाचार्य जी है। एक स्वतन्त्र कथा को लेकर इस काव्य का भी रचना की गई है। काव्य बहुत सुन्दर है।

मयूर सन्देशः-[३] किसी अज्ञात कवि द्वारा रचित इस दूतकाव्य का ग्रन्थ भण्डारों की सूचियो में मात्र उल्लेख ही है। एक स्वतन्त्र कथा पर ही यह दूतकाव्य भी आधारित है।

मानस सन्देशः-[४] अपने अन्तर्मन को दूत बनाकर इस दूतकाव्य मे सन्देश सम्प्रेषण सम्पादित हुआ है। काव्य के रचनाकार श्री वीर राघवाचार्य हैं। जिनका काल सन् १८५५ से १९२० तक का है। यह एक आधुनिक दूतकाव्य के रूप मे देखा जाता है।

मानस सन्देशः-[५] सन १९५९ से १९१९ ई. के बीच में इस दूतकाव्य की श्री लक्ष्मण सूरि जी ने रचना की है। इस दूतकाव्य के रचनाकार पचयप्पा कालेज, मद्रास में संस्कृत के प्रोफेसर थे। इनके अनेक ग्रन्थ मद्रास से मुद्रित भी हो चुके है।

---

१ अड्यार पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्र भाग २ से. ८।

२ मद्रास से प्रकाशित

३ ओरियण्टल लाइब्रेरी, मद्रास के हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की सूचीपत्र के भाग ४ में ग्रन्थ सं. ४२९८ पर द्रष्टव्य, अप्रकाशित।

४ ओरियण्टल हस्तलिखित पुस्तकालय, मद्रास के ग्रन्थ सं. २९६४ पर द्रष्टव्य अप्रकाशित।

५ संस्कृत के सन्देश काव्य रामकुमार। आचार्य परिशिष्ट अप्रकाशित

मारूत सन्देशः-[१] किसी एक अज्ञातनामा कवि द्वारा रचित इस दूतकाव्य मे मारूत द्वारा सन्देश सम्प्रेषण सम्पन्न करवाया गया है। काव्य प्रकाशित नहीं हो पाया है।

मित्रदूतम्ः-[२] दूत काव्य परम्परा के सबसे आधुनिक दूत काव्य के रूप मे यह मित्र दूतम् दूतकाव्य प्राप्त होता है। इस नवीन दूतकाव्य के रचनाकार रॉची विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो. दिनेशचन्द्र पाण्डेय है।

मेघदूत से ही प्रेरणा लेकर इस नवीन दूतकाव्य की रचना हुई है। रॉची विश्वविद्यालय का एक छात्र अपनी एक सहपाठिनी चारूदेवी से प्रेम करने लगता है और वह धीरे-धीरे अध्ययन से वह विमुख हो जाता है। इस कारण उसे विश्वविद्यालय से बहिष्कृत कर दिया गया। वह छात्र निष्कासित हो जाने पर छात्रावास के निकट ही एक मन्दिर में रहने लगता है। वह अपनी प्रेमिका के वियोग में अपने दिल को बहलाने के लिए उसी स्थान पर जाकर भटकता रहता है, जहॉ कभी दोनो एक साथ भ्रमण करते थे। एक दिन वही कल्पनालोक में विचरण करते-करते अपनी प्रेयसी के ध्यान मग्न था तभी अचानक ध्यान टूटने पर अपने सामने एक मित्र को देखता है। उसी से अपनी प्रिया के पास सन्देश भेजता है। मार्ग का वर्णन भी आधुनिक है। सन्देश अतिशीघ्र पहुँचाने के लिए अपने मित्र को वुाययान से जाने को कहता है। क्योंकि उसकी प्रिया परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात रॉंची से कश्मीर चली गयी है। अतः रॉंची से कश्मीर तक का यात्रा वर्णन है।

काव्य में ९७ श्लीक हैं। नवीन शब्दों का प्रयोग हैं। व्याकरणात्मक त्रुटियाँ भी नहीं मिलती हैं। नैतिक तथा अध्यात्मिक उपदेश भी काव्य में

---

१ **संस्कृत के सन्दश काव्य रामकुमार। आचार्य परिशिष्ट २ अप्रकाशित**

२ **संस्कृत के सन्देश काव्य रामकुमार। आचार्य परिशिष्ट २ अप्रकाशित**

मिलते है। काव्य मन्दाक्रान्ता छन्दो का प्रयोग है। कवि अपनी काव्य निपुणता प्रदर्शनार्थ प्रारम्भ मे मंगलाचरण स्वरूप एकाक्षर एवं द्वयक्षरात्मक तीस श्लोक दिये है। काव्य का सम्पूर्ण अंश नही उपलब्ध है फिर भी काव्य अद्वितीय है।

मेघप्रति सन्देश[१]**:-** दक्षिण भारत के आधुनिक कवि श्री मन्दिकल राम शास्त्री द्वारा यह दूतकाव्य रचा गया है। सन् १९२३ ई० के लगभग इन्होंने इस दूतकाव्य की रचना की है। यक्ष के सन्देश को लेकर मेघ अलकापुरी पहुँचता है। वहाँ वह यक्ष की प्रिया को यक्ष का सन्देश सुनाता है प्रिय के सन्देश को सुनकर उसे विरह व्यथा के कारण अति वेदना होती है। अतः हाथ के सहारे से किसी प्रकार उठकर धीरे-धीरे वह मेघ से वर्तालाप करती है तथा यक्ष के पास अपना प्रति सन्देश ले जाने की प्रार्थना करती है। इस काव्य में मेघ द्वारा यक्ष के सन्देश को सुनकर अपनी प्रिया मेघ के ही द्वारा यक्ष के पास अपना प्रति सन्देश भेजती है। अतः इस काव्य का नाम मेघप्रति सन्देश उचित ही है। काव्य के प्रथम सर्ग में ६८ एवं द्वितीय सर्ग ९६ श्लोक है। मन्दाक्रान्ता छन्द भी प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार यह काव्य अतिसुन्दर है।

यज्ञ मिलनकाव्यम्:- संवत् १९वीं शती में रचा गया यह दूतकाव्य महामहोपध्याय श्री परमेश्वर द्वारा प्रणीत है। इन्होने धर्मकाण्ड, कर्म काण्ड, नाटक काव्य कोष आदि विविध पक्षों पर अपने विचार व्यक्त किया है।

मुद्गरदूतम्:-[२] पं. रामगोपाल शास्त्रीं द्वारा रचित यह दूतकाव्य स्वतन्त्र कथा पर आधारित एक अति मनोरंजक दूतकाव्य है। कवि ने काव्य में मुद्गर अर्थात गदा को सन्देश दिया है। समाज में फैली तमाम तरह की भ्रष्टताओं

---

१ **गवर्नमेंट प्रेस, मैसुर से सन् १९२३ में प्रकाशित**

२ **संस्कृत के सन्देशकाव्य रामकुमार अचार्य, परिशिष्ट २ अप्रकाशित**

तथा बुराइयों को अपने प्रहार से ठोककर ठीक कर देने की कथा को सन्देश का रूप दिया गया है। काव्य व्यंग्यपूर्ण है।

मेघदूतम्ः-[१] विक्रम कवि द्वारा रचित यह दूत काव्य अभी तक अनुपलब्ध ही है, इसका मात्र उल्लेख ही उपलब्ध होता है।

मेघदूतम्ः-[२] लक्ष्मणसिंहकृत यह दूतकाव्य केशवोत्सव स्मारक संग्रह की भूमिका के पृष्ठ १६ पर उल्लिखित है।

मेघदौत्यम्ः-[३] मेघदूतम् के ही अनुकरण पर इस दूतकाव्य की भी रचना की गई है। श्री त्रैलोक्यमोहन इस काव्य के रचनाकार है। मेघूदत के ही समान मन्दाक्रान्तां छन्द में ही इस काव्य की भी रचना हुई है। एक यक्ष किसी कारणवश अपनी प्रिया से विरक्त हो एकान्त में जीवन यापन कर रहा था। प्रिया के वियोग में व्यथित मन वाला वह यक्ष, अपनी प्रिया के पास सन्देश भेजने का विचार करता है। अपने सामने आकाश में छाये मेध को देखकर वह उसी को अपना दूत बनाकर अपनी प्रिया के पास उसे भेजता है। काव्य में नवीन शब्दों के प्रयोग के साथ मेघदूत के भी पदों का प्रयोग मिलता है। विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट होता है कि इसमे यक्ष का उसकी प्रेयसी के साथ मिलन वर्णित है। कथावस्तु मेघूदत की कथावस्तु के आगे की है। इस काव्य मे देवोत्थानी एकादशी के बाद यक्ष-यक्षिणी का मिलन होता है। उन दोनों की प्रणय लीलाएँ भी वर्णित है। काव्य में मात्र ३५ श्लोक हैं। छन्द मन्दाक्रान्ता ही है।

---

१ **जैनग्रन्थमाला के खेताम्बर कान्फ्रेन्स, पत्रिका पृ. २३२ पर द्रष्टव्य, अप्रकाशित।**

२ **जैनसिद्धान्त भास्कर (१९३६ ई.) भाग ३, किरण १, पृ. ३६, अप्रकाशित।**

३ **जैन सिद्धान्त भास्कर भाग २ किरण २ पृ. १८, अप्रकाशित**

यज्ञोल्लासः-[1] कृष्णमूर्ति द्वारा रचित यह दूतकाव्य मेघदूत का परवर्ती काव्य साहित्य पर पड़े प्रभाव का परिचायक है।

रथाङ्गदूतम्ः-[2] इस दूत काव्य के रचनाकार श्रीलक्ष्मी नरायण है। नाम के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि किसी रथ के अङ्ग को दूत निश्चित किया गया है। सूची पत्र पर इस काव्य का उल्लेख मिलता है तथा मैसूर से प्रकाशित भी है।

वकदूतम्ः-[3] यह दूतकाव्य महामहोपध्याय अजितनाथ न्यायरत्न ने की है। इसमे कुल २५० श्लोक है अन्य सूत्रो के आधार पर प्रकट होता है कि काव्य में वक द्वारा दौत्य सम्प्रेषण करवाया गया है। यही तथ्य नाम द्वारा भी स्पष्ट होता है। यह दूतकाव्य परम्परा में बिल्कुल भिन्न है। इसमें प्रिय वियुक्ता मधुकरी ने प्रियतम मधुकर के अन्वेषणार्थ वक को दूत बनाकर भेजा है।

वाङ्मण्डनगुणदूतम्ः-[4] श्री वरेश्वर द्वारा प्रणीत इस दूतकाव्य में कवि ने अपने सूक्त गुण को दूत बनाकर एक राजा के पास आश्रय प्राप्त करने हेतु भेजा है। काव्य अतीव सुन्दर है।

वायुदूतम्ः-[5] इस दूतकाव्य के कर्ता के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं है। प्रो. मिराशी ने अपनी पुस्तक में इसका उल्लेख किया है।

विटदूतम्ः-[1] इस दूतकाव्य के बारे में भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। कवि का नाम भी अज्ञात है। काव्य की एक प्रति सुरक्षित है।

---

[1] संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला पृ. ९०२ अप्रकाशित।

[2] मैसूर से प्रकाशित, अड्या लाइब्रेरी के हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थसूचीपत्र के भाग २ सं. १६ पर द्रष्टव्य

[3] प्राच्य वाणी मन्दिर, कलकत्ता में पाण्डुलिपि ग्रन्थ संग्रह, सं. १४३ परद्रष्टव्य काव्य की मूल प्रति लेखक के सुपुत्र श्री शैलेन्द्रनाथ भट्टाचार्य के पास सुरक्षित।

[4] डा. जे. बी. चौधरी द्वारा कलकत्ता से सन् १९४१ में प्रकाशित।

[5] कालिदास, प्रो. मिराशी, पृ. २५८।

विप्रसन्देशः-[2] इस दूतकाव्य के रचयिता महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण सूरि ने की है। इसमे रूक्मिणी ने एक ब्राह्मण को अपना दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास अपना सन्देश भेजा है।

विप्रसन्देशः-[3] यह दूतकाव्य अपने नाम का दूसरा दूतकाव्य है। यह कैगनोर निवासी कोचुन्नि तंबिरन द्वारा प्रणीत है। विप्रसन्देश मे एक विप्र द्वारा दौत्यकर्म सम्पादित करवाया गया है। किस प्रयोजन से दूत भेजा गया है, इसके विषय मे अधिक ज्ञात नही है। काव्य का मात्र उल्लेख प्राप्त होता है।

श्येनदूतम् ः-[4] यह काव्य श्री नारायण कवि द्वारा प्रणीत है। कावय में श्येन अर्थात् बाज द्वारा दैत्य कर्म सम्पादित करवाया गया। इस काव्य के विषय मे बहुत अधिक जानकारी नहीं मिल पाती है।

शिवदूतम्ः-[5] इस दूत काव्य का भी मात्र उल्लेख प्राप्त होता है। इसके रचयिता तंजौर मण्डल के अन्तर्गत मट्टुकाबेरी के निवासी श्री नारायण कवि जी है। इन्होनें काव्य और गद्य दोनो से सम्बन्धित जीवन चरित्र लिखा है।

शुकदूतम्ः-[6] यह दूतकाव्य श्री यादवचन्द्र द्वारा रचित है। इस दूतकाव्य मे एक नायिका एक शुक के माध्यम से अपना विरह संदेश अपने प्रिय नायक को पास भेजती है।

---

१ अर्ष लाइब्रेरी, विशाखा पट्टनम् , अप्रकाशित

२ पूर्ण चन्द्रोदय प्रेस, तंजौर से सन् १९०६ में प्रकाशित

३ जर्नल सोसादटी आफ द रायल एशियातिक (१९००) पृ. ७६३ एवं संस्कृत साहित्य का
इतिहास कृष्णमाचारियर, पृ. ६६८ ९ पैरा ७२७ अप्रकाशित।

४ संस्कृत साहित्य का इतिहास कृष्णमाचरियर पृ. २५८ पैरा १८०, अप्रकाशित।

५ वही

६ जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २, किरण २ पृ. ६४ अप्रकाशित।

शुकसन्देशः-[१] यह भी अपने नाम का दूसरा दूतकाव्य है। इसमें भी दौत्य का कार्य एक शुक के माध्यम से करवाया गया है। इसके रचयिता दाक्षिणात्य कवि करिंगमपल्लि नम्बूदरी है।

शुकसन्देशः-[२] श्री रंगाचार्य द्वारा प्रणीत अपने नाम का यह तीसरा दूत काव्य है। कथावस्तु स्वतन्त्र रूप से रचित है। इसमें भी शुक द्वारा सन्देश सम्प्रेषण हुआ है।

शुकसन्देशः-[३] इस दूतकाव्य के रचनाकार वेदान्तदेशिक के पुत्र श्री वरदाचार्य है। जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है कि सन्देश सम्प्रेषण का कार्य एक शुक के द्वारा हि करवाया गया है। काव्य का विशेष उल्लेख नही प्राप्त होता है।

सिद्धदूतम्ः-[४] इस दूतकाव्य में कालिदास द्वारा रचित मेघदूतम् की समस्यापूर्ति भर की गई है। इसके रचनाकार अवधूत रामयोगी हैं। इसका दूतकाव्यपरम्परा मे महत्वपूर्ण स्थान है।

सुभगसन्देशः-[५] इस दूतकाव्य के रचयिता श्री नारायण कवि हैं। ये जयसिंहनाद के राजा रामवर्मा की सभा मे कवि थे। अतः इस दूतकाव्य का समय १५४१-१५४७ ई. होगा। काव्य का कुछ ही अंश प्राप्त हुआ है अभी प्रकाशित नही है। इस दूत काव्य में १३० श्लोक है।

---

१ श्री गुस्टव आपर्ट द्वारा संकलित दक्षिण भारत के निजी पुस्तकालयो के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, मद्रास के ग्रन्थ सं. २७२१ और ६२४१ पर द्रष्टव्य

२ श्री लेविस राइस द्वारा संकलित मैसूर एवं कुर्ग के संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, बंगलौर मे ग्रन्थ सं. २२५० पर द्रष्टव्य अप्रकाशित।

३ गुरू परम्परा प्रभाव, मैसूर (१९८) एवं संस्कृत के सन्देशकाव्य रामकुमार आचार्य परिशिष्ट २ अप्रकाशित।

४ पाटन से सन् १९१७ में प्रकाशित।

५ जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी (१८८४) पृ. ४४० पर द्रष्टव्य।

सुरभिसन्देशः-[1] इस दूतकाव्य के रचनाकार आधुनिक प्रसिद्ध कवि है जिनका नाम श्री वीर वल्लि विजय राघवाचार्य है। काव्य अति सुन्दर है। इस काव्य मे आधुनिक नगरों का वर्णन किया है।

हनुमद्दूतम्ः- यह दूत काव्य आशुकवि श्री नित्यानन्द शास्त्री द्वारा प्रणीत है। काव्य १९ वी शती का है। इसमे मेघदूतम् के प्रत्येक श्लोक का चतुर्थ पंक्ति की समस्या पूर्ति की गई है। इसमे ६८ एवं ४९ श्लोक है। काव्य मन्दाक्रान्ता। छन्द मे रचित है। इस दूतकाव्य के २ भाग है पूर्व भाग एवं उत्तरभाग।

इस दूतकाव्य मे हनुमान द्वारा सीता जी का पता लगवाया गया है अतः सन्देश सम्प्रेषण का कार्य हनुमान ने किया है। इसमे कवि का भाव बहुत ही सुन्दर है उसमे मौलिकता है। इस दूतकाव्य के श्लोको मे कुछ नवीनता झलकने का कवि ने पूर्णतः प्रयास किया है।[2]

हरिणसन्देश-[3] इस दूतकाव्य के रचयिता वेदान्तदेशिक के सुपुत्र श्री वरदाचार्य हैं। इस दूतकाव्य का सन्देश वाहक हरिण हैं। काव्य का मात्र उल्लेख प्राप्त होता है।

हरितदूतम् -[4] प्रो० मिराशी ने अपनी पुस्तक में इस दूतकाव्य का मात्र नाम उल्लेख किया है परन्तु इस दूतकाव्य के विषय में विशेष जानकारी नहीं हो पाती।

हंसदूतम् -[1] इस दूतकाव्य के रचनाकार श्री रघुनाथदास है। इस दूतकाव्य में हंस द्वारा सन्देश सम्प्रेषण करवाया गया है। इस दूतकाव्य की

---

१ संस्कृत के सन्देश काव्य राम कुमार आचार्य २ अप्रकाशित।

२ **खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा विक्रम संवत १९८५ में बम्बई से प्रकाशित।**

३ **खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा विक्रम सं० १९८५ में बम्बई से प्रकाशित**

४ **मैसूर की गुरुपरम्परा में उल्लिखित, अप्रकाशित**

कथावस्तु संक्षेप मे इस प्रकार है। सीता को रावण अपहृत कर लेता है, सीता के वियोग मे उनके पति अत्यधिक व्याकुल हो जाते हैं और अपने विरह ताप को सहन नही कर पाते है तभी उन्हे एक हंस दिखता है उस हंस द्वारा वह अपने विरह सन्देश सीता के पास भेजते हैं। काव्य अतिलघु होते हुए रोचक है। इस काव्य का रचना सौष्ठव भी सुगठित है।

हृदयदूतम् -[२] यह दूतकाव्य भी अन्य दूतकाव्य के ही समान है जिसमे हृदय को दूत के रूप में स्वीकार किया गया है। काव्य की कथा स्वतन्त्र रूप से कल्पित है। इस दूतकाव्य के रचनाकार श्री भतृरि है। हंसदूतम् मे एक नायिका अपने प्रियतम नायक के पास अपना सन्देश हृदय को दूतबनाकर सम्प्रेषित किया है। काव्य अतिलघु होते हुए भी सुन्दर है। इंदिरेश नरेश के मनोदूतम् के साथ ही यह दूतकाव्य भी प्रकाशित हुआ था।

(ख) संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध जैन दूतकाव्य -

जैनकवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूतम् के प्रति विशेषतः आकृष्ट थे। अधिकांश जैनकवियो ने मेघदूतम् के अन्तिम चरणों को ही समस्या रूप से ग्रहण कर उसकी पूर्ति अपनी ओर से की है आचार्य जिनसेन कवि ने तो मेघदूतम् के समस्त पद्यो के समग्र चरणो की पूर्ति की है। इस प्रकार संस्कृत-साहित्य में दूतकाव्य की परम्परा को आगे बढाने में जैन कवियों का विशेष योगदान है। यहाँ पर जैनदूतकाव्यों का संक्षिप्त मे परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१ **औफेक्ट के कैटलोगस कैटालोगरम् के प्रथम-भाग पृष्ठ सं० ७५३ पर उल्लिखित, अप्रकाशित।**

२ **चुन्नीलाल बुकसेलर, बड़ा मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई से प्रकाशित।**

पार्श्वाभ्युदय -[१] यह जैनदूतकाव्य परम्परा का यह प्रथम दूतकाव्य है इस काव्य के रचयिता जिनसेन द्वितीय वीरसेन के शिष्य थे। इनका समय अष्टमशती के अन्तिमचरण से लेकर नवमशती के द्वितीय चरण तक मानना सर्वथा समीचीन है (लगभग ७८०-८४०ई०)।

इस काव्य मे चार सर्ग है जिनकी कुल श्लोक सं. ३६४ है। काव्य की भाषा प्रौढ़ है और मेघदूत के समान ही मन्दाक्रान्ता छन्द का व्यवहार किया गया है। समस्या पूर्ति के रूप में मेघूदत के समग्र श्लोक इस काव्य में प्रयुक्त है। समस्यापूर्ति का आवेष्टन तीन रूप मे पाया जाता हैः (क) पादवेष्टित मेघ का केवल एक चरण (ख) अर्धवेष्टिट (दो चरण) (ग) अन्तरितवेष्टित (जिसमे एकान्तरित द्वयन्तरित आदि कई प्रकार है) (एकान्तरित में बीच-बीच मे नये पाद निविष्ट है। द्वयन्तरित में दो पादों के बीच मे दो नये पादों का सन्निवेश है। इस प्रकार मेघदूतीय मन्दाक्रान्ता के समग्र चरण इस काव्य में निवेष्टित कर दिये गये हैं। इसमे २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी की तीव्र तपस्या के अवसर पर उनके पूर्व भव के शत्रु शम्बर के द्वारा उत्पादित कठोर क्लेशो तथा शृङ्गारिक प्रलोभनों का बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। मेघूदत जैसे घोर शृङ्गारी काव्य को अनुपम शान्तिसमन्वित काव्य में परिणत करना कवि की श्लाघनीय प्रतिभा का मधुर विलास है। काव्य की शैली कुछ अधिक जटिल है। समस्यापूर्ति के रूप में गुम्फित रहने से मूल पंक्तियों के भाव मे यत्र तत्र विपर्यस्तता आ जाने के कारण काव्य कुछ दुरूह है।

इस दूतकाव्य में पार्श्वनाथ के अनेक जन्म-जन्मान्तरों का समावेश हुआ है। पार्श्वाभ्युदय की कथावस्तु संक्षेप मे इस प्रकार है कि पोदनपुर के नृपति अरविन्द द्वारा वहिष्कृत कमठ सिन्धु तट पर तपस्या कर रहा था। उसी समय

---

[१] **संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. सं. ३२७ (आचार्य वल्देव उपाध्याय)**

भातृप्रेम के कारण कमठ का अनुज मरूभूमि उसके पास गया। किन्तु क्रोध आवेश में आकर कमठ ने उसे मार डाला। अनेक जन्मों में यही क्रम चलता रहा है। अन्तिम जन्म मे कमठ शम्बर और मरूभूमि पार्श्वनाथ बनते है' पार्श्वनाथ को साधना से विचलित करने के लिए शम्बर अनेक उपसर्ग करता है, पर पार्श्वनाथ अपने मार्ग से विचलित नहीं होते है। धरणेन्द्र देव और पद्मावती देवी आकर पार्श्वनाथ के उपसर्ग को दूर कर देती है। अन्त मे पार्श्वनाथ ज्ञान को प्राप्त करता है। इस घटना से प्रभावित होकर शम्बर भी पश्चात्ताप करता हुआ पार्श्वनाथ से क्षमायाचना करता है। काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने समग्र मेघदूत को इस काव्य में समाविष्ट कर दिया है।

नेमिदूतम् - मेघूदत के चतुर्थचरण की समस्या पूर्ति के रूप में दो जैन दूतकाव्य उपलब्ध तथा प्रकाशित है जिनमें एक है नेमिदूत और दूसरा हैं शीलदूत। नेमिदूत सांगण के पुत्र विक्रम कवि की रचना है। इनके समय तथा चरित का यर्थाथ परिचय उपलब्ध नहीं होता। फिर भी प्रेम जी ने १३वीं शती और विनय सागर जी ने १४ वीं शती माना है।[१]

इसमे २२ वे तीर्थकर नेमिनाथ तथा उनकी पत्नी राजीमती का चरित चित्रण किया गया है।

नेमिकुमार विरक्त होकर तपश्चरण के लिए जाने पर विरह विधुरा राजीमती ने एक वृद्ध ब्राह्मण को उनका कुशल सामाचार लेने श्री नेमि की तपोभूमि में भेजा। कुछ समय पश्चात पिता की आज्ञा लेकर स्वयं भी एक् साध्वी के साथ वहाॅ पहुँचकर अनुनय विनय करती हुई अपने विरह दग्ध हृदय की भावनाओं को प्रलापरूप में व्यक्त करने लगी। पति के त्याग

---

१ **संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. सं. ०३२८ आचार्य बल्देव उपाध्याय**

तवश्चरण का प्रभाव उस पर इतना अधिक पड़ा कि वह भी तपस्विनी बनकर तपस्या करने लगी।

कवि ने इस काव्य मे नाना प्रकार से द्वारका नगरी के सौन्दर्य और वैभव का चित्रण किया है। राजीमती विविध उपायो से नेमिकुमार को संसारिक सुखो का उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है। परन्तु उनका प्रयास निष्फल रहता है। काव्य मे विप्रलम्भ शृङ्गार एवं शान्त रस का अपूर्व सङ्गम मिलता है। काव्य का शुभारम्भ तो विरह से होता है, पर समाप्ति शान्त रस में होती है। नायक अथवा नायिका का सम्मिलन शारीरिक भोगों के लिए नही अपितु मोक्ष सौख्य की प्राप्ति के लिए होती है। कवि कहता है -

चक्रे योगान् निजसहचरीं मोक्षसौख्याप्तिहेतोः

केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्यन्तमेष।

तामानन्दं शिवपुरि परित्याज्य संसार भाजां

भोगानिष्टानभिमतसुखं भोजयामास शाश्वत् ।।

इस तरह शृङ्गार रस का शान्तरस मे पर्यवसान कर कवि ने मानव व्यवहार मे एक उदात्त आदर्श की प्रतिष्ठा की है। नेमिदूत काव्य की भाषा प्रसादयुक्त है, काव्य में सर्वत्र प्रवाह है। शान्तरस प्रधान होते हुए भी विरह भावना का सजीव और सांगोपांग चित्रण किया है।

जैनमेघदूतम् -[१] मेघदूत के पद्यों की समस्यापूर्ति वाले इन दूतकाव्यों को छोड़कर जैनकवियों की इस विषय में स्वतन्त्र रचनाएँ भी उपलब्ध है। ऐसी रचनाओं में जैनदूतम् का स्थान निःसन्देह ऊँचा है। यह काव्य ४ सर्गों में विभक्त है जो पूर्वोत्तर नेमिदूत में वर्णित है अर्थात् नेमिकुमार के प्रवज्या लेने पर राजीमती उनके पास मेघ को दूत बनाकर अपना विरह सन्देश

---

१ **जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित १९२४ में**

सम्प्रेषित करती है। इस काव्य के रचयिता महाकवि आ. मेरूतुङ्ग है। फलतः इस काव्य मे रचनाकाल १४ वी शती का अन्तिम चरण है। जैनमेघदूतम् की भाषा समास युक्त है। काव्य को कवि ने माधुर्य गुण से विभूषित किया है। रस की दृष्टि से काव्य बड़ी उच्चकोटि का है।

शीलदूतम् -[१] इस दूतकाव्य के रचनाकार मुनि श्री चरित्रसुन्दरमणि हैं। शील जैसे भाव को दूत बनाना कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचायक है। इस दूतकाव्य का रचनाकाल वि. संवत् १४८७ है। काव्य का वर्ण्यविषय यही है कि स्थूलभद्र पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर विरक्त हो जाता है और पर्वत पर निवास करने लगता है। एकबार भद्रबाहु स्वामी से उसका साक्षात्कार होता है, वह उनसे शिक्षा ग्रहण करता है। गुरू के आदेश से वह अपनी नगरी मे आता है। वहॉ उनकी पत्नी कोशा उन्हे पुनः गृहस्थी में प्रविष्ट होने के प्रार्थना करती है। रानी की प्रार्थना को सुनकर स्थूल भद्र कहते है 'भद्रे! अब मुझे विषयों से राग नहीं है मुझे चित्रकला भी वन के समान प्रतीत होती है। संसार के समस्त सुख अनित्य और क्षण-भंगुर है। ज्ञान और चरित्र ही आत्मा के शोधन में सहायक है।' इसप्रकार स्थूलभद्र की बातें सुनकर कोशा का मन पवित्र हो जाता है। उसकी सारी वासनाऍ जल जाती हैं और वह स्थूल भद्र के चरणों में गिर पड़ती है। वह भी साधना मार्ग में संलग्न हो जाती है। काव्य में कुल १३१ श्लोक है। काव्य में नायक ने अपने शील के प्रभाव से प्रभावित कर अपनी प्रेयसी को जैन धर्म में दीक्षित किया है। इसी आधार पर इस दूतकाव्य का नाम शीलदूत रखा गया है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। काव्य समस्या पूर्ति होने पर भी मौलिक कल्पना का दर्शन होता है। काव्य की भाषा सरस तथा ललित है। कहीं-कहीं सुन्दर-सुन्दर उत्प्रेक्षाऍ प्रयोग में लाई गई हैं।

---

१ यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी से वीर संवत २४३९ में प्रकाशित

मेघूदत समस्या लेख -[१] **(वि. सं. १७२७)** उपाध्याय मेघविजय की १३० श्लोको की रचना है, जिसमे कवि ने मेघ के द्वारा यच्छाधिपति विजयप्रभसूरि है।

चन्द्रदूतम् -[२] खरतरगच्छीय कवि मुनि विमलकीर्ति ने इस काव्य की रचना की है। मेघदूत अन्तिमचरण की समस्यापूर्ति स्वरूप इस काव्य की रचना हुई है। इस दूतकाव्य की कथावस्तु इसप्रकार है कि कवि ने स्वयं चन्द्र को सम्बोधित कर शत्रुञ्जय तीर्थ में स्थित आदि जिन ऋषभदेव को अपनी वन्दना निवेदित करने के लिए भेजा है। इस दूतकाव्य में स्पष्ट नहीं हो पाता है कि कवि ने किस स्थल पर चन्द्र को नमस्कार कर उसे दूत के रूप में ग्रहण किया है। मन्दाक्रान्ता वृत्त में ही निबद्ध यह काव्य बड़ा ही भावपूर्ण एवं कवि की विद्वत्ताा का परिचायक है। इस दूतकाव्य का रचनाकाल वि. सं. १६८१ है। यह दूतकाव्य अवश्य ही जैनदूतकाव्यों की श्रेणी में विशिष्ट स्थान रखता है।

चन्द्रदूतम्[३] नामक एक और दूत काव्य का उल्लेख जिनरत्नकोश में हुआ है। जिसके अधार पर वह काव्य विनयप्रभ द्वारा प्रणीत होता है।

पवनदूतम् -[४] मेरूतुङ्ग के लगभग दो शताब्दी बाद वादिचन्द्र ने पवनदूतम् नामक एक स्वतन्त्र दूतकाव्य का प्रणयन किया है। ग्रन्थ कर्त्ता ने काव्य के अन्तिम श्लोक मे अपना परिचय दिया है।

---

१ संस्कृत साहित्य का इतिहास. पृ. सं. ३३०
-बल्देव उपाध्याय

२ श्री जिनदत्त सूरि ज्ञान भण्डार, सूरत में वि. सं. २००९ में प्रकाशित।

३ जिनरत्नकोश पृ. ४६४।

४ हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई से १९१४ में प्रकाशित।

मेघदूत के समान यह भी मन्दाक्रान्ता छन्द मे लिखा गया है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है उज्जयिनी के राजा विजयनरेश तथा उनकी रानी तारा को हर ले गया। राजा पवन के द्वारा रानी को अपना सन्देश भेजता है और मार्ग मे पड़ने वाली नदी पर्वत तथा नगरों में निवास करने वाली स्त्रियों तथा उसकी विलासवती चेष्टाओं का सजीव वर्णन करता है। कवि वादिचन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी है। फलतः इनका १६वीं शती का उत्तरार्ध माना गया है। फलत: इनका १६ वी शती का उत्तरार्ध माना गया है अर्थात् १७वीं शताब्दी। पवनदूत काव्य मेघदूत के अनुकरण पर रचा गया है। काव्य में कुल १०५ श्लोक है भाषा सरस एवं प्रसादयुक्त है। इस दूतकाव्य में कवि का धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक दृष्टिकोण बहुत ही ऊँचा है। इस प्रकार श्रृङ्गार रस के साथ ही साथ इस दूतकाव्य में परोपकार दया अहिंसा और दान आदि सद्भावो की प्रशंसा भी मिलती है। काव्य मे मौलिक कल्पना का स्थान-स्थान पर दर्शन होता है।

मेघदूतसमस्यालेख -[१] इस दूतकाव्य के रचयिता मुगल सम्राट अकबर ने जगद्गुरु की उपाधि प्राप्त जैनमुनि श्री मेघविजय है। इस काव्य के अतिरिक्त कुछ अन्य काव्य भी इनके द्वारा रचे गये हैं। इस दूतकाव्य का समय वि. सं. १७२७ में की गई है। यद्यपि कहीं भी काव्य में अलग से कवि का नाम तथा रचनाकाल उल्लिखित नहीं है फिर भी काव्य के अन्तिम श्लोक से कवि के सम्बन्ध में ज्ञान हो जाता है -

माघकाव्यं देवगुरोर्मेघदूतं प्रभप्रभोः

समस्यार्थं समस्यार्थं निर्ममे मेघपण्डितः।।१३१।।

---

[१] श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर (राजस्थान) से वि. सं. १९७० में प्रकाशित।

इस दूत काव्य मे भी मेघदूत की समस्यापूर्ति की गई है। काव्य में गुरू की महिमा का वर्णन किया है। गुरू के वियोग मे कवि व्याकुल हो जाते है और अपने गुरू आचार्य विजयप्रभसूरि के पास मेघ द्वारा अपनी कुशलवार्ता का सन्देश भेजते है। काव्य में कवि ने गुरू के लिए अपनी व्याकुलता असाहायावस्था का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

काव्य का अन्तिम श्लोक अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है। काव्य में भक्ति रस का प्रयोग है। काव्य पर जैनधर्म का यत्र-तत्र स्पष्ट प्रभाव है। जैसे कवि ने स्थान-स्थान पर जैन प्रतिभाओं और तीर्थकरों का वर्णन है। इससे स्पष्ट होता है कि यह काव्य एक जैन कवि द्वारा रचित जैन धर्म विषयक रचना है। इस दूतकाव्य का दूतकाव्य की परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना एक विशिष्ट स्थान है।

इन्दुदूतम् -[१] इन्दुदूत के रचयिता श्री विनय-विजयमणि है। प्रस्तुत दूतकाव्य का समय वि. सप्तदश शतक का उत्तरार्ध तथा अष्टादश शतक का पूर्वार्ध है। काव्य की कथा इस प्रकार है श्री विजय प्रभ सुरीश्वर महाराज सूर्यपुर (सूरत) मे चतुर्मास बिताते है। उनकी आज्ञा से उनके शिष्य श्री विनय विजयमणि मारवाड़ में जोधपुर नगर मे चतुर्मास बिताने के लिए आ जाते है। चतुर्मास के अन्त में भाद्रपद पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा को देखकर उनका विचार होता है कि उसके द्वारा अपने गुरू के पास वे अपना सांवत्सरिक क्ष्मापण सन्देश और अभिवन्दन भेजे। चन्द्रमा को दूत काव्य में नियुक्त करने से पूर्व वे उसका स्वागत करते हैं, उसकी कुशलवार्ता पूछते हैं और फिर उसकी तथा उसके संबन्धियों समुद्र, परिजात, लक्ष्मी और रात्रि इत्यादि की भी प्रशंसा करते हैं। अन्त में वे उससे सूर्यपुर (सूरत) जाने और वहाँ वहुँचकर अपने गुरू श्रीतणागण यति को अपनी विज्ञप्ति सुनाने के लिए

---

[१] **संस्कृत के सन्देश काव्य पृ. सं. २१८-२२५**

कहते है। इस सन्देशकाव्य मे केवल १३१ श्लोक है। समग्र काव्य मन्दा क्रान्ता छन्द मे ही लिखा गया है। काव्य मेरुदत के अनुकरण पर लिखा गया है। काव्य का विषय नवीन है। इस काव्य में शान्तरस प्रधान है। काव्य का नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण भी उच्च है। काव्य मे कवि ने लक्ष्मी रात्रि आदि का बड़ा सच्चा स्वरूप पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है। यद्यपि काव्य का शान्त रस में पर्यवसान है। फिर भी यत्र तत्र शृङ्गारिक वर्णन भी पाये जाते है। जैन सिद्धान्त की कृति होने के कारण काव्य मे यत्र तत्र जैन धर्म का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। जैसे काव्य के आरम्भ में 'स्वस्तिश्रीणं भवनभवनीकान्त-पंक्ति प्रणम्यम्। प्रौढप्रीत्या परमपुरुषं पार्श्वनाथं प्रणम्य।। काव्य मे भाषा भी प्रसादगुण से पूर्ण है। काव्य मे सर्वत्र प्रवाह दे है। सन्देश काव्य अथवा दूतकाव्य की परम्परा में काव्य का एक विशिष्ट स्थान है।

'इन्दुदूतम्' नामक एक और दूतकाव्य प्राप्त होता है जिसके रचयिता जैन कवि जम्बू है। जिरत्नकोश में मात्र इसका उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इस काव्य के समबन्ध मे कोई भी जानकारी नहीं प्राप्त होती है। जैनग्रन्थावली मे जम्बूकवि द्वारा प्रणीत इस काव्य का नाम 'चन्द्रदूत' दिया गया है। इस दूतकाव्य में मालिनी वृत्त में रचित २३ श्लोक है।

मनोदूतम् -[१] इस दूतकाव्य के कर्त्ता के विषय में कुछ भी ज्ञात नही है। जैनग्रन्थावली में इसके विषय में मात्र इतनी जानकारी है कि इसमें ३०० श्लोक है तथा इसकी मूलप्रति पाटण के भण्डार में उपलब्ध है।

मयूरदूतकाव्य -[२] १९ वीं शती के जैन कवि मुनि धुरन्धर विजय ने इस काव्य की रचना की है। काव्य में कुल १८० श्लोक हैं, जिनमें से

---

१ **जैन ग्रन्थावली पृ. ३३२**

२ **जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद से वि. सं. २००० में प्रकाशित ग्रन्थाक ५००**

अधिकांश श्लोक शिखरिणीवृत्त में रचे गये हैं। कवि का वृत्त के सम्बन्ध में यह एक सर्वथा नवीन ही प्रयोग है। यह दूतकाव्य गुरूभक्ति पर आधारित है। इसमे भी शिष्य द्वारा गुरू के पास वन्दना एवं क्षमापना सन्देश ही भेजा गया है।

काव्य की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है कि मुनि विजयामृतसूरि जो कि आचार्य विजयनेमिसूरि के शिष्य है, वह अपने चर्तुमास काल को कपडवणज मे बिताता है। उसके गुरू विजयनेमिसूरि जामनगर में अवस्थित होकर अपना चतुर्मास बिताते है। चतुर्मास काल मे गुरू का समीप्य न प्राप्त कर तथा गुरू के प्रति अतीव श्रद्धा होने के कारण वह अपने आदरणीय गुरू के पास वन्दना एवं क्षमापन का सन्देश एक मयूर के द्वारा सम्प्रेषित करता है। यह स्वतन्त्र दूतकाव्य है। इसमे कालिदासीय मेघूदत से किसी प्रकार की सहायता नही ली गयी है। परन्तु काव्य मे नगर आदि के वर्णन मे कालिदासीय मेघदूत जैसा तारतम्य मिलता है। काव्य में श्री सूरीन्द्राः एवं सूरीश्वराः जैसे विशेषणों का प्रयोग है। काव्य में जैन धर्म का उल्लेख है, काव्य मे करूणा, अहिंसा आदि भावों पर जोर है। अतः इससे पता चलता है कि यह दूत काव्य जैन कवि द्वारा प्रणीत है।

हंसपादांकदूतम् -[१] इस दूतकाव्य के रचनाकार के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। इस दूतकाव्य का उल्लेख जैन विद्वान श्री अगर चन्द्र नाहटा ने अपने एक लेख में किया है। यद्यपि इन्होंने इसके अस्तित्व में सन्देह प्रकट किया है। परन्तु विद्वद्रत्नमाला के उल्लेखानुसार इस काव्य को भी जैन संस्कृत दूतकाव्यों मे सम्मिलित किया गया है।

---

१ विद्वद्रत्नमाला प्रेमी नाथु राम पृ. ४६

वचनदूतम् -[1] यह दूतकाव्य इस परम्परा का सबसे नवीन दूतकाव्य है। पं. मूलचन्द्र शास्त्री ने इसे दो भागों में विभाजित किया है। यह दूतकाव्य जैनधर्म के २३वे तीर्थकर भगवान श्री नेमिनाथ के जीवन से सम्बन्धित है। काव्य के प्रारम्भ मे कवि ने राजुल के आत्मनिवेदन को प्रस्तुत किया है तथा उत्तरार्ध मे इस वियोगिनी की व्यथा को परिजनों के द्वारा निवेदित करवाया है।

नेमि और राजुल का प्रसंग न केवल वैराग्य का एक अप्रतिम विचोरोतेजक मर्मस्पर्शी प्रसंग रहा है। अपितु उसने साहित्य विशेषतः काव्य को भी प्रभावित किया है। कवि ने राजीमती के विरह वियोग को बड़ी मनोहारी हृदयावर्जक शैली मे प्रस्ततु किया है। कालिदास द्वारा विरचित मेघदूतम् की अन्तिम श्लोक की पंक्ति को लेकर यह दूतकाव्य रचा गया है। जिसमें कवि ने नेमि और राजुल के मार्मिक प्रसंग को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। वैराग्य की पृष्ठिभूमि के साथ-साथ अहिंसा, करूणा और साधना के प्रतिपादन के विषय में यह काव्य अनूठा है।

चूतोदूतम् -[2] इस दूतकाव्य की भी रचना मेघदूतम् के अन्तिमचरणो को लेकर समस्यापूर्ति स्वरूप की गई है। कवि के विषय में विशेष जानकारी नहीं मिल पाती है। इस दूतकाव्य की कथा भी विशेष नही है, इसकी कथा इस प्रकार है- एक शिष्य अपने गुरू के श्री चरणो की कृपादृष्टि को अपनी प्रेयसी के रूप मे मानकर उसके पास अपने चित्त को दूत बनाकर भेजता है। मेघदूत की समस्यापूर्ति के कारण काव्य मे मन्दाक्रान्ता छन्द भी प्रयुक्त है। काव्य मे कुल १२९ श्लोक है।

---

१ प्रकाशित श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, महावीर जी साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन सवाई मानासिंह हाइवे जयपूर।

२ जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर वि. सं. १९७० मे प्रकाशित।

जबकि इस दूतकाव्य का विषय धार्मिक एवं ज्ञानपरक है फिर भी निश्चित रूप से यह कहने मे मत भेद है कि यह दूतकाव्य जैन धर्म से सम्बद्ध है। शिष्य ने गुरू के लिए "श्री सुरीन्द्राः" 'श्री सुरीश्वराः' जैसे विशेषणो का प्रयोग किया है तथा जैन धर्म का उल्लेख किया है। अतः इसी आधार पर यह कहा जाता है कि यह दूतकाव्य जैन कवि द्वारा विरचित है मेघूदत के शृङ्गार रस के प्रेरणा पाकर कवि ने अद्वितीय प्रतिभा से काव्य को शान्त रस से विभुषित किया है।

उपर्युक्त दूतकाव्यो के वर्णन से ऐसा परिलक्षित होता है कि जैनकवियों को दूतकाव्य का निर्माण करने मे अत्यधिक रूचि थी। इसीलिए इन्होंने अधिक से अधिक दूतकाव्यों की रचना करके दूतकाव्य की परम्परा को आगे बढ़ाने मे अपना महनीय योगदान दिया। इन्होंने अपने काव्य मे अनेक नवीन प्रयोग भी किये हैं। जैसे इन्होने विज्ञप्ति पत्रों को भी दूतकाव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार शृङ्गार रस से ओत-प्रोत काव्यों का शान्तरस में पर्यवसान करके दूतकाव्य को एक नया मोड़ दिया। जैन कवियों ने इन्हीं - दूतकाव्यों के माध्यम से अपने जैनधर्म के धार्मिक नियमों, सामाजिक नियमों-संस्कारों एवं तात्त्विक सिद्धान्तों को जनसाधारण तक पहुँचाया है। इस प्रकार जैन कवियों द्वारा रचित दूतकाव्यों का संस्कृत साहित्य में स्थान है।

द्वितीयोऽध्यायः

मेरुतुङ्गाचार्य का व्यक्तित्व और कृतित्व

आचार्य मेरूतुङ्ग का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संस्कृत दूतकाव्यो मे सर्वप्राचीन कवि शिरोमणि कालिदास का मेघदूतम् है। इनके पश्चात् अन्य कवियो ने भी दूतकाव्यो की रचना की। जैन कवियों ने तो संस्कृत साहित्य मे अनेक दूतकाव्यो की रचना कर संस्कृत के विद्वानो को आश्चर्य चकित कर दिया है। इस प्रकार दूतकाव्यों की परम्परा को आगे बढ़ाने मे जैन कवियों का अद्वितीय स्थान है। इन्हीं जैनकवियों मे आचार्य मेरूतुङ्ग का नाम प्रमुख है जिन्होने जैनमेघदूतम् की रचना की है। आचार्य मेरूतुङ्ग तत्कालीन साहित्य क्षितिज के प्रकाशमान नक्षत्र हैं। इनके जीवन के विषय मे विभिन्न प्रकार की भ्रान्तियॉ हैं।

आचार्य मेरूतुङ्ग का जीवन परिचयः- जैन साहित्य में मेरूतुङ्ग नामक तीन आचार्य हुए है परन्तु काव्य जगत् में दो ही आचार्य मिलते है। इनमे प्रथम आचार्य मेरूतुङ्ग सूरि है जो प्रभुसूरि के शिष्य थे[१]। इन्होंने बढवाण मे रहते हुए वि. सं. १३६१ (ई. सन् १३०५) में संस्कृत भाषा मे 'प्रबन्धचिन्तामणि' की रचना की है।[२]

द्वितीय आचार्य मेरूतुङ्गसूरि अचलगच्छ के एक विद्वान् आचार्य थे। इनके द्वारा रचित अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्राप्त होती है जिनमें एक कृति जैनमेघदूतम् है।

अचलगच्छीय आचार्य मेरूतुङ्ग-सूरि जैन साहित्व्य में एक प्रसिद्ध विद्वान् हुए है। इनके जीवन के विषय में विभिन्न प्रकार की भ्रान्तियाँ पाई जाती है। जैसे इनका जन्म स्थान पट्टावली के अनुसार नानागाम और जाति

---

१ **जैनमेघदूतम् - रविशंकर मिश्र पृ. सं. ७१**

२ **श्रमण पृ. सं. ५९**

जो संयममार्ग ग्रहणकर युगप्रधान योगीश्वर होगा। चक्रेश्वरी के वचनो को आदर देती हुई, धर्मध्यान मे सविशेष अनुरक्त होकर माता गर्भ का पालन करने लगी। सं. १४०३ मे पूरे दिनो से पॉचो ग्रहो के उच्च स्थान मे आने पर नालदेवी ने पुत्र को जन्म दिया। हर्षोत्सवपूर्वक पुत्र का नाम वस्तिगकुमार रखा गया। क्रमशः बालक बड़ा होने लगा और उसमें समस्त सद्गुण आकर निवास करने लगे। एक बार श्री महेन्द्रप्रभसूरि नाणि नगर मे पधारे। उनके उपदेश से अतिमुक्त कुमार की तरह विरक्त होकर माता पिता की आज्ञा ले सं. १४१० मे वस्तिगकुमार दीक्षित हुए। वइरसिंह ने उत्सवदानादि मे प्रचुर द्रव्य व्यय किया। सूरि महराज ने नवदीक्षित मुनि का नाम 'मेरूतुङ्ग' रखा।[१]

दीक्षा के समय वे सात वर्ष के ही थे। गुरू के सानिध्य मे नवोदित बालमुनिवर एक के बाद एक सिद्धियॉ प्राप्त करने लगे। व्याकरण साहित्य, छन्द, अलंकार, ज्योतिष आगम आदि में वे निपुण बने।

सं. १४२६ में गुरूदेव ने उन्हें सूरिपद दिया। इस प्रसंग पर संघपति नरपाल श्रेष्ठि ने भव्य महोत्सव किया। अब वे श्री मेरूतुङ्ग सूरि के नाम से प्रख्यात हुए। वे मन्त्रप्रभावक भी थे। वे अष्टांगयोग आदि में निुपण थे। आचार्य एक बार विचरण करते हुए असाउली नगर पधारे यहॉ यवनराज को प्रतिबोध देकर अहिंसा का मार्ग समझाया। रासकर वर्णन करते हैं कि उसाउल इसाखय बनराउ पडिबोहिंउए।[२] कहता लागइ पाख, मास वात छई ते धणिये।

आचार्य मेरूतुङ्ग के विषय में अनेक प्रभावी अवदात प्रसिद्ध हैं। एक बार सूरिजी संध्यावश्यक कर कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित खड़े थे कि एक काले साँप ने आकर मैर में डस दिया। सूरि महराज मेतार्थ, दमदन्त,

---

[१] श्री आर्य अध्याय गौतम स्मृति ग्रंथ पृ. सं. २५

[२] जीवन ज्योति यानि लघु पट्टावली पृ. १०५

चिलातीपुत्र की तरह ध्यान मे स्थिर रहे। कार्योत्सर्ग पूर्ण होने पर मंत्र, तंत्र गारूड़िक सब प्रयोगों को छोड़कर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के समक्ष ध्यानासन जमाकर बैठ गये। ध्यान के प्रभाव से सारा विष उतर गया। प्रातः कालीन व्याख्यान दैन के लिए आये, संघ मे अपार हर्षध्वनि फैल गई। तदनंतर मेरूतुङ्ग सूरि अणहिलपुर पाटण पधारे। गच्छनायक पद के लिए सुमुहूर्त देखा गया। महीनों पहले उत्सव प्रारंभ हो गया। तोरण बंदरवाल मंडित विशाल मंडप तैयार हुआ। नाना प्रकार के नृत्य वादित्रो की ध्वनि से नगर गुंजायमान हो गया। ओसवाल रामदेव के भ्राता खीमागर ने उत्सव किया। सं. १४४५ फाल्गुन वदी ११ के दिन श्री महेंद्रप्रभसूरि ने गच्छनायक पद देकर सारी गच्छधुरा श्री मेरूतुङ्ग सूरि को समर्पित की। संग्रामसिंह ने पदठवणा करके वैभव सफल किया। श्री रत्नशेखर सूरि को उपचार्य स्थापित किया गया। संघपति नलपाल के सानिध्य मे समस्त महोत्सव निर्विघ्न संपन्न हुए।

सूरि महराज निर्मल तप, संयम आराधना करते हुए योगाभ्यास में विशेष अभ्यस्त रहते थे। हठयोग प्राणायाम राजयोग आदि क्रियाओं द्वारा नियमित ध्यान करते थे। ग्रीष्म ऋतु में धूप में और शीतकाल की कड़ाके की सर्दी में प्रतिदिन कार्योत्सर्ग करके आत्मा को अतिशय निर्मल करने में संलग्न रहते थे। एक बार आप आबूगिरि के जिनालयों के दर्शन करके उतरते थे, संध्या हो गई थी। मार्ग भूलकर विषमस्थान में पगदण्डी न मिलने पर बिजली की तरह चमकते हुए देव ने प्रकट होकर मार्ग दिखलाया। एक बार पाटण के पास सथवाडे सहित गुरू श्री विचरते थे। यवन सेना ने कष्ट देकर सब साधकों को अपने कब्जे में कर लिया। सूरिजी यवनराज के पास पहुँचे। उनकी आकृति ललाट को देखकर उसका हृदय पलट गया और तत्काल सब को मुक्त कर लौटा दिया। एक बार गुजरात मे मुगलों का भय उत्पन्न होने पर सारा नगर सूना हो गया, पर सूरि श्री खंभात में स्थित रहे। कुछ दिन बाद

भय समाप्त हो जाने पर सभी वापस लौट आये। सूरिजी बाड़मेर में विराजते थे, लघु पोशाल के द्वार पर सात हाथ का लम्बा सॉप आकर फुँकार करने लगा, जिससे साध्वियॉ डरने लगी लेकिन श्री मेरूतुङ्ग सूरि के प्रभाव से यह विघ्न दूर हुआ। एक बार सूरि जी ने १४६४ में सांचौर चौमासा किया। अश्वपति (बादशाह) विस्तृत सेना सहित चढ़ाई करने के लिए आ रहा था। सब लोग दशों दिशाओं में भागने लगे थे। ठाकुर भी भयभीत थे, सूरिजी के ध्यान बल से यवन सेना सांचौर त्याग कर अन्यत्र चली गई। इस प्रकार सूरिजी के विषय मे अनेको अवदात सुनने को मिलते है।[१]

इस प्रकार श्री मेरूतुङ्ग के विषय मे जो अनेकानेक अवदात उल्लिखित हो चुके हैं इन अवदातो के कारण आचार्य को कई उपाधियों से विभुषित किया गया। इन्हें 'मन्त्रप्रभावक' 'महिमानिधि' आदि मानद उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। आचार्य के प्रभावी उपदेशों के कारण वींछीवाडा, पुनासा, वैडनगर आदि नगरो मे जिनालयों का निर्माण हुआ तथा उनमें धातु प्रतिमाओ की प्रतिष्ठापनाएँ भी हुई।

आचार्य श्री मेरूतुङ्ग सूरि का शिष्यपरिवार भी बहुत बड़ा था। इन्होंने छः आचार्य, चार उपाध्याय तथा एक महत्तरा प्रभृति संख्या-बद्ध पद स्थापित किये एवं दीक्षित किये। इन सभी शिष्यों में सर्वाधिक प्रमुख जयकीर्तिसूरि पट्टधर थे। इसके अतिरिक्त माणिक्य शेखर सूरि, उपाध्याय धर्मानन्दगणि आदि अनेक विद्वान इनके शिष्य थे। इनके साथ एक विशाल साध्वी परिवार भी रहता था। उनमें महिमाश्री जी नामक साध्वी को मेरूतुङ्ग जी ने महत्तरा पद पर स्थापित किया था।[२] साध्वी महिमा श्री द्वारा रचित श्री उपदेश चिंतामणि की अवचुरि प्राप्त होती है।

---

[१] **श्री आर्य अध्यायगौतम स्मृति ग्रंथ पृ. सं. २५,२६**

[२] **आ. मेरूतुङ्ग कृत जैन मेघदूतम् - डा. रविशंकर मिश्र भूमिका पृ. सं. ७७**

रचनाएँ

उनके द्वारा रचित साहित्य जैन और भारतीय संस्कृति का महामूल अंग है। इनकी निम्न रचनाएँ हैः-

(१) षड्दर्शन समुच्चयः- इस ग्रन्थ का अपरनाम 'षड्दर्शननिर्णय' है। ग्रन्थ विक्रम संवत् १४४९ के पूर्व का रचा हुआ है क्यों कि सप्ततिभाष्य टीका मे इस ग्रन्थ का उल्लेख हुआ हैः- काव्यं श्री मेघदूताख्यं षड्दर्शन समुच्चयः। भारतीय दर्शन में इसका अपूर्व स्थान है। इसमें बौद्ध, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य और वैशेषिक दर्शनों के मूलसिद्धान्तों का वर्णन किया है। तदन्तर इनका खण्डन करते हुए जैनदर्शन को स्वतर्को से परिपुष्ट किया गया है। संक्षिप्त होते हुए भी इस ग्रन्थ में जो तर्क दिये है वे प्रभावयुक्त एवं निर्णयात्मक हैं।[१]

(२) बालबोध व्याकरणः- इसका दूसरा नाम 'मेरूतुङ्गव्याकरण'[२] और 'कुमारव्याकरण' भी है। श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने 'व्याकरण चतुष्क बालबोध' तथा 'तद्धित बालबोध' दो अन्य नाम भी बताये हैं।[३] व्याकरण सम्बन्धी अति गूढ तत्वों को अत्याधिक सुबोध बना देने वाला यह विरल ग्रन्थ है।

(३) जैनमेघदूतम् ः- यह आचार्य मेरूतुङ्ग द्वारा रचित अनुपम ग्रन्थ है जिसमे जैन धर्म का परिपालन किया गया है और जीवन के मूल तत्त्वों को बताया गया है।

---

१ श्री आर्य जय कल्याण केन्द्र, श्री गौतम नीति गुणसागरसूरि जैन मेघ संस्कृति भवन टे. लालजी पुनशी वाडी देश सरललेन घाटकोपर (पूर्व) बम्बई- ४०००७७

२ जीवन ज्योति नामक पुस्तक में वर्णित है।

३ जैन गूर्जर कवियो का इतिहास मो. द. देसाई भाग ३ पृ. १५७२

(४) **धातुपरायणः-** सप्ततिभाष्य मे इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। इसका समय विक्रम संवत १४४९ के पूर्व का माना जाता है।

(५) **रसाध्यान वृति** ः- इसका दूसरा नाम रसाध्यान टीका और रसालय भी है। कंकालय नामक एक जैनेतर आचार्य द्वारा प्रणीत इस रसाध्यान ग्रन्थ की आचार्य श्री ने विक्रम संवत १४४९ में टीका रची है।

(६) **सप्ततिभाष्य टीका** ः- जैन कर्म सिद्धान्त का इस ग्रन्थ में विचार किया गया है। इस ग्रन्थ का समय विक्रम संवत् १४४९ है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे रचित है जो कि आ. मेरूतुङ्ग के विद्वत्ता का परिचायक है।

(७) **लघुशतपदी** ः- इसका दूसरा नाम 'शतपदीसारोद्धार'[१] है। लघुशतपदी में १५७० श्लोक है जो कि संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं। इसमें कवि ने अपना नया विचार प्रस्तुत किया है।

(८) **कामदेव चरित्र** ः- इस गद्यकृति की रचना कवि ने विक्रम संवत् १४६९ मे की थी इसमें ७४९ श्लोक है इस प्रकार का उल्लेख ग्रन्थ प्रशस्ति मे मिलता हैः-

एवं श्रीकामदेवक्षितिपतिचरितं तत्वषड्वर्द्धि भूमिसंख्ये

श्री मेरूतुङ्गाभिधगणगरूणा वत्सरे प्रोक्तमेतत् ।।

(९) **पद्मावतीकल्पः-** प्रस्तुत रचना भी आचार्य मेरूतुङ्ग द्वारा की गई है। ऐसा उल्लेख 'अंचलगच्छदिग्दर्शन' श्री पार्श्व पृ. सं. २२३ पर तथा जीवन ज्योति नामक पुस्तक में पृ. सं. ११३ में मिलता है।

(१०) **शतक भाष्यः-** इसका दूसरा नाम सप्ततिका भाष्य वृत्ति है ऐसा प्रतीत होता है परन्तु आचार्य श्री पार्श्व ने इसे भी आचार्य श्री के पृथक् ग्रन्थ की संख्या दी है।[१]

---

[१] जीवन ज्योति पृ. सं. ११३ में शतपदी सारोद्धार नाम से उद्धृत है।

(११) नमुत्थणंटीकाः- चैत्यवन्दन विधि मे नमुत्थणं ग्रन्थ के सूत्रो पर वृत्ति के रूप मे इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

(१२) जीरावल्ली पार्श्वनाथ स्तवः- इसमें कुल १४ श्लोक हैं। मूल मे ११ श्लोक और अन्त मे ३ श्लोक। इस स्तव की रचना सर्प विष के निवारण हेतु किये थे। इसका आदि है ॐ नमो देवदेवाय। इस स्तव का दूसरा नाम त्रैलोक्यविजय महामन्त्र है। अचलगच्छ में इस मन्त्र का अत्यधिक महत्व है।

(१३) सूरिमन्त्रकल्प सारोद्धारः- ५५८ श्लोक की रचना कवि ने इस ग्रन्थ मे की है जो कि शुद्ध संस्कृत भाषा में निबद्ध है।

(१४) संभवनाथ चरित्रः- आचार्य मेरूतुङ्ग ने इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् १४१३ मे की है।

(१५) शतपदी सारोद्धारः- इसका दूसरा नाम 'शतपदी समुद्धार' है। इसकी रचना १४५६ मे आचार्य ने किया है।

(१६) जेसासी प्रबन्धः- इस ग्रन्थ के विषय में शङ्का है। श्री पार्श्व ने इसका भी उल्लेख किया है।[2]

(१७) स्तम्भक पार्श्वनाथ प्रबंधः- इसका मात्र नामोल्लेख मिलता है। इसकी रचना आचार्य ने संस्कृत भाषा में किया गया है।

(१८) नाभिवंश काव्यः- आचार्य द्वारा रचित इस महाकाव्य का मात्र नामोल्लेख मिलता है।[3]

---

[1] अंचलगच्छ दिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२३ पर।

[2] अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२०

[3] वही अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२२

(१९) सूरिमन्त्र कल्पः- इस मन्त्र की महिमा प्राचीन जैन साहित्य में विशेष रही है। ऐसा कहा गया है कि प्रत्येक गच्छनायक को इसकी साधना करनी चाहिए। आचार्य मेरूतुङ्ग द्वारा रचित 'सूरिमन्त्र कल्प' रहस्यों से भरी हुई है।

(२०) यदुवंश सम्भव कथाः- यह भी आचार्य मेरूतुङ्ग द्वारा रचित संस्कृत मे निबद्ध महाकाव्य है। इसके विषय में विस्तृत जानकारी नहीं है मात्र नामोल्लेख मिलता है।

(२१) नेमिदूत महाकाव्यः- श्री पार्श्व ने नेमिदूत नामक एक महाकाव्य की रचना भी आचार्य द्वारा माना है इस महाकाव्य का नामोल्लेख 'अंचलगच्छदिग्दर्शन' में पृ. २२३ पर किया है।

(२२) कृदवृत्तिः- कृदवृत्ति आचार्य मेरूतुङ्ग द्वारा रचित 'कातन्त्र व्याकरण' की टीका का एक खण्ड ही है। ऐसा श्री पार्श्वनाथ ने अंचलगच्छदिग्दर्शन मे उल्लेख किया है।

(२३) कातन्त्र व्याकरण बालबोध वृत्तिः- इसकी रचना विक्रम संवत १४४४ में किया है। इसको पहले 'कालापक व्याकरण' नाम से जाना जाता है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'आख्यातवृत्ति टिप्पणी' भी है।[१]

(२४) उपदेश चिन्तामणि वृत्तिः- इसकी रचना आचार्य मेरूतुङ्ग ने कब की इसका वर्णन ठीक से नही मिल पाता है। इस ग्रन्थ में ११६४ श्लोक की रचना संस्कृत वृत्ति में की है।

(२५) नाभकनृपकथाः- यह श्री मेरूतुङ्ग द्वारा रचित गद्य एवं पद्यमयी रचना है। इसमें २९४ श्लोक हैं। इसकी रचना विक्रम संवत् १४६४

---

१ **अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२९**

मे की गई है। इसमे यह उल्लेख किया गया हैकि दुर्व्यय करने वाले मनुष्य किस प्रकार दुःख भोगते है।

(२६) सुश्राद्ध कथाः- इस ग्रन्थ के विषय में विशेष जानकारी नहीं मिल पाती है परन्तु इस ग्रन्थ की रचना आचार्य द्वारा हुई है ऐसा ग्रन्थो द्वारा ज्ञात होता है।[१]

(२७) चतुष्कवृत्तिः- यह ग्रन्थ भी आचार्य मेरूतुङ्ग द्वारा रचित है इसमे विभिन्न व्याकरण सम्बन्धी विषयो पर चर्चा की गई है।[२]

(२८) अंगविद्योद्धारः- (अंगविद्योद्धार) इस ग्रन्थ का उल्लेख 'श्री आर्य अध्याय गौतम स्मृति ग्रंथ' मे मेरूतुङ्ग सूरि रास मे अंचलगच्छदिग्दर्शन मे मिलता है।[३]

(२९) ऋषिमण्डलस्तवः- इस ग्रन्थ का उल्लेख श्री पार्श्व ने अंचलगच्छदिग्दर्शन में पृ. सं. २२३ में किया है इसमें ऋषियो की स्तुति की गयी है जो संस्कृत की कारिकाओं में निबद्ध है।[४]

(३०) पट्टावलीः- पट्टावली को श्री पार्श्व ने आचार्य मेरूतुङ्ग के रचनाओं में रखा अवश्य है। परन्तु इसकी भाषा, घटना आदि विविध विचारों के आधार पर इस ग्रन्थ को शङ्का की दृष्टि से देखा जाता है।[५]इसके अतिरिक्त

(३१)[६] राजीमती नेमि सम्बन्ध

(३२)[६] सूरिमन्त्रोद्धार और

---

१ अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व सं. २२३

२ वहीं अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२३

३ वही अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२३

४ वही अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२३

५ वहीं अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२३

६ अंचलगच्छदिग्दर्शन श्री पार्श्व पृ. सं. २२३

(३३)[२] **महा पुरूष चरित** जो कि संस्कृत भाषा मे निबद्ध है इसमें ५ सर्ग है तथा ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन ५ तीर्थकरो का वर्णन है।

(३४) भाव कर्म प्रक्रिया

(३५) लक्षणशास्त्र

(३६) कल्पसूत्र वृत्ति भी इन्हीं की रचनाएँ हैं।

इस प्रकार विविध साक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर श्री आचार्य मेरूतुङ्ग द्वारा रचित ३६ ग्रन्थो का नामोल्लेख मिलता है जिनमें कुछ ग्रन्थो का तो विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है और कुछ का केवल नाम मात्र मिलता है उसके विषय मे विस्तृत जानकारी नही मिल पाती है। कुछ ऐसी भी ग्रन्थ है जिनकी स्थिति के प्रति शंका व्यक्त की गई है। आचार्य के जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनके आधार पर कह सकते है कि इन्होने साहित्य जगत को अनूठा अवदान दिया है।

आचार्य मेरूतुङ्ग ने अपना जीवन पट्टण, खंभात, भड़ौच, सौपारक, कुकंण, कच्छ, पारकर, सांचौर, मरू गुज्जर झालावाड, महाराष्ट्र, पांचाल लाटदेश, जालोर, घोघा, अनां, दीव मंगलपुर नवा प्रभृति स्थानों में विचरण और धर्मोपदेश करते हुए व्यतीत किया।

संवत १४७१ में मार्गशीर्ष पूर्णिमा सोमवार के पिछले प्रहर में उत्तराध्ययन श्रवण करते हुए अर्हतसिद्धों के ध्यान में मग्न श्री मेरूतुङ्गसूरि जी ने इहलीला का संवरण किया।

---

१ वहीं पृ. २२३

२ नागेन्द्र गच्छ का इतिहास पृ. सं. ६० (पट्टावली समुच्चय प्रथम भाग पृ. १३-१४)

आचार्य मेरुतुङ्ग का नाम अचलगच्छ के इतिहास में तथा संस्कृत साहित्य के दूतकाव्यो की परम्परा मे सदैव स्वर्णाक्षरो मे अंकित रहेगा। आचार्य द्वारा रचित जैनमेघदूतम् ग्रन्थ संसार के लिए वरदान स्वरूप है जो युगों-युगों तक दिग्भ्रमित मानव हृदय को दिशा और शान्ति प्रदान करता रहेगा।

तृतीयोऽध्यायः

कथावस्तु और चरित्राँकन

जैनमेघदूतम् की कथावस्तु और पात्रों का चरित्रांकन

कथावस्तुः- आचार्य मेरूतुङ्ग कृत जैनमेघदूतम् की कथावस्तु संक्षेप मे इस प्रकार हैः-

प्रसिद्ध यदुवंश मे समुद्रविजय नामक राजा थे, जो अत्यन्त बलशाली और धार्मिक थे। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्री नेमि था, जो जैन धर्म के २२वे तीर्थकर माने जाते हैं। श्री नेमि राजनीति धुरंधर भगवान श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। ये सौन्दर्य और पौरूष के अजेय स्वामी थे। समुद्रविजय ने श्री नेमि का विवाह उग्रसेन की रूपसी एवं विदुषी पुत्री राजीमती से करने का निश्चय किया। वैभव प्रदर्शन के उस गुण मे महाराज समुद्रविजय अनेक बरातियों को लेकर पुत्र नेमिनाथ के विवाहार्थ गये। जब बरात वधू के नगर 'गिरिनगर' पहुँची तब वहाँ पर पशुओ की करूण चीत्कार श्री नेमि को सुनाई पड़ी। इस करूण चीत्कार ने नेमिनाथ की जिज्ञासा को कई गुना बढ़ा दिया। पता लगाने पर उन्हें जब ज्ञात हुआ कि इन सभी पशुओं को काटकर उनके आमिष से विविध प्रकार के व्यञ्जन बरातियों के स्वागतार्थ बनाये जायेगे तो वे कॉप गये। उनकी भावना करूणा की अजस्र अश्रुधारा में परिवर्तित होकर प्रवाहित हो गई। इस घटना के बाद श्री नेमि को संसार से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वे इस दुःखमय संसार को त्यागकर तपस्या के संकल्प के साथ कानन की ओर मुड़ जाते हैं।

उनके इस संकल्प को जानकर राजीमती अत्याधिक दुःखित हो जाती है। और वह बार-बार मूर्च्छित हो जाती है। इसके पूर्व अपने प्रिय के प्रति उसने अपने आन्तर प्रदेश में कितनी सुकोमल कल्पनाएँ सँजो रखी थी, परन्तु अकस्मात् यह क्या? नव वधू का घूँघट पट उठाने से पूर्व ही यह निर्मम पटापेक्ष कैसा? परन्तु भारतीय नारी की भाँति राजीमती ने भी अपने

मन मन्दिर मे श्री नेमि को पति के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया है। अपने सखियों द्वारा नाना प्रकार से समझाने पर भी वे अन्य राजकुमार से विवाह करने के लिए तैयार नही होती है। राजीमती मेघ को दूत बनाकर श्री नेमि के पास भेजती है। उसका सन्देश अत्यन्त कारूणिक विरह वेदना से युक्त है जिनको सुनकर कठोर से कठारे मानव का ह्दय भी द्रवित हो जाता है परन्तु श्री नेमि तो इस मोह माया को क्षणिक मानते हैं, वे चिरानन्द को पाना चाहते है इसलिए उनके ह्दय पर उसके तीक्ष्ण सनदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अन्त मे राजीमती भी अपने स्वामी की शरण मे जाकर व्रत ग्रहण कर लेती है और उन्हीं की तरह राग द्वेष से रहित होकर उनके प्रभाव से गिने हुए कुछ ही दिनों मे परमानन्द के सर्वस्व मोक्ष का वरण कर अनुपम शाश्वत सुख के प्राप्त करती है।

जैनमेघदूतम के पात्रों का चरित्राङ्कन

श्रीनेमि - यद्यपि काव्यशास्त्रकारो ने खण्डकाव्य या दूतकाव्यो के नायक-नायिका आदि पात्रो का चरित्राङ्कन करते समय काव्यशास्त्रीय विवेचन करना आवश्यक नही समझा। परन्तु मेरी दृष्टि से उनमें भी काव्यशास्त्रीय नियम कुछ अंशों में विद्यमान रहता है। अतः यहाँ पर मुझे नायक-नायिका आदि के चरित्राङ्कन करने से पूर्व संक्षेप में काव्यशास्त्रीय विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

दशरूपककार धनञ्जय ने नायक के विषय मे कहा है कि नायक विनीत मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोकप्रिय पवित्र, वाक् पटु प्रसिद्ध वंश वाला स्थिर युवक, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त दृढ, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होता है-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।

रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।१।।

बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।२।।[१]

यह नायक ललित, शान्त, उदात्त और उद्धत भेद से ४ प्रकार के होते है-

१. धीरललितः - चिन्ता रहित, कलाओं का प्रेमी, सुखी और कोमल (स्वभाव तथा आचार वाला) नायक धीरललित कहलाता है-

'निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।'

---

[१] दशरूपकम् २/१, २ पृ. सं. १०९

निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् ।[२]

२. धीरशान्तः - सामान्य गुणो से युक्त द्विज आदि नायक तो धीर प्रशान्त कहलाता है। "सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः"[३]।

३. धीरोदात्तः - उत्कृष्ट अन्तःकरण (सत्त्व) वाला अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील आत्मश्लाघा नकरने वाला, स्थिर अहंभाव को दबाकर रखने वाला, दृढव्रती नायक धीरोदात्त कहलाता है-

'महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः'।

स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः।।[४]

धीरोदात्त की परिभाषा आचार्य विश्वनाथ ने दी है-

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।

स्थेयन्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।[५]

अर्थात् आत्मश्लाघा की भावनाओं से रहित, क्षमाशील, अति गम्भीर दुःख-सुख में प्रकृतिस्थ, स्वभावतः स्थिर और स्वाभिमानी किन्तु विनीत कहा गया है।

४. धीरोद्धतः -

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।

धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।[६]

---

१ दशरूपकम् २१/पृ. सं. ११४

२ साहित्यदर्पण पृ. सं. १४०

३ साहित्यदर्पण पृ. सं. ११४

४ साहित्यदर्पण पृ. सं. २१४

५ साहित्यदर्पण पु. सं. १३९, ३/३२

६ दशरूपकम् पृ. सं. १२०, २/६

अर्थात् जिसमे घमण्ड और डाह (मात्सर्य) अधिक होता है, जो माया और कपट मे कुशल होता है, अहङ्कारी, चञ्चल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघा करने वाला है, वह धीरोदात्त नायक है। धीरोद्धत का यही स्वरूप साहित्यदर्पण मे भी निर्दिष्ट है -

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।

धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।

अर्थात् जो कि मायायटु हो, उग्र स्वभाव वाला हो, स्थिर प्रकृति का न हो, अहंकार और दर्प से भरा हो, और जिसे नाटकोविद आत्मश्लाघा में निरत कहा करते हैं।

उपर्युक्त चतुर्विध नायकों मे प्रत्येक के दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ रूप होने से सब मिलाकर नायक के १६ भेद होते है।

श्री नेमि जैनमूघदूतम् के नायक है। श्रीनेमि को हम धीरोदात्त नायक कह सकते हैं क्यों कि ये उत्कृष्ट अन्तः करण वाले अत्यन्त गम्भीर तथा दृढ - निश्चयी है।

श्रीनेमि विद्वानों द्वारा जैनधर्म के बाइसवें तीर्थकर के रूप में माने जाते हैं। महाभारत काल में इनका प्रादुर्भाव हुआ था। हरि नामक प्रसिद्ध वंश मे उत्पन्न समुद्र विजय नामक राजा के पुत्र थे, इनकी माता शिवादेवी थीं। श्रीनेमि श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। इस प्रकार श्री नेमि यदुकुल में उत्पन्न हुए थे।

श्रीनेमि एक अद्वितीय बालक थे। इनका सूतिकाकर्म आदि दिक् कन्याओं ने किया था। ये शैशवकाल में ही सब प्रकार से पुष्टि प्राप्त कर चुके थे, क्यों कि विना स्नान के ही स्फटिक सदृश धवल, विना आभूषणों के ही अतिकान्ति शाली, विना स्तनपान के ही, मात्र इन्द्रियपान से ही, पुष्ट अंग

वाले, तथा विना शास्त्र दर्शन के ही विद्वान प्रतीत हो रहे थे। अतः श्री नेमि का रूप सौन्दर्य बाल्यकाल मे भी अलौकिक परम शोभा से युक्त था।

युवावस्था मे श्रीनेमि के व्यक्तित्व के सौन्दर्य और गरिमा का तो कहना ही क्या? राजीमती मेघ से अपने स्वामी की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि श्रीनेमि के प्रत्येक अंग के कमल आदि की उपमा दी जा सकती है। परन्तु उपमा देने के बाद उपमाधिक्य दोष हो जाता है-

पूर्णेन्दुः श्रीसदनवदनेनाब्जपत्रं च दृग्भ्यां

पुष्पामोदो मुखपरिमलैः रिष्टरत्नं च तत्वा।

वर्ण्येऽर्थौधे क्वचिदुपमितिं दद्युरेवं बुधाश्चे-

देतास्यङ्गैर्भवति उपमाधिक्यदोषस्तथापि।।[1]

अर्थात् नेमि के सुन्दर वदन से पूर्णचन्द्र समानता को प्राप्त करता है, नेमि के नेत्रो से कमल-दल सदृशता प्राप्त करता है, नेमि के मुखपरिमल से पुष्प पराग भी समानता को प्राप्त करता है, नेमि के शरीर से रिष्टरत्न सदृशता प्राप्त करते हैं। यदि विद्वज्जन कहीं भी वर्णनीय पदार्थ-समूहों की भगवान के अङ्गों द्वारा उपमा देते है तो भी उपमाधिक्य दोष होता है।

एक श्लोक में तो कवि ने कमल, कदली स्तम्भ, गंगा का तट आदि को श्री नेमि के शरीर के शल्य माना है-

पद्म पद्भ्यां .... बाहुपाणिद्वयेन[2]

कमल उनके चरणों के, कदलीस्तम्भ उनकी उरूओं के, गङ्गा का तट उनकी कटि के, शोण उनकी नाभि के, प्रतोलीद्वार उनके वक्ष के, कल्पवृक्ष की शाखा उनकी भुजा के और उसके किसलय उनके करों के, पूर्णचन्द्र

---

[1] जैनमेघदूतम् १/२४

[2] जैनमेघदूतम् १/२३

उनके श्रीमुख के कमलपत्र उनके नेत्रों के, पुष्प सुगन्ध उनके मुखामोद के और उत्तमरत्न उनके शरीर के शल्य हैं।

श्रीनेमि दस धनुष की ऊँचाई के बराबर थे और उनका शरीर नीलमणि की कान्ति से युक्त था। इस प्रकार उनकी सुन्दरता को शब्दों द्वारा व्यक्त करना असम्भव है।

श्रीनेमि अनुपम व्यक्तित्व के धनी थे। जो भी सम्भाव्य सर्वोत्कृष्ट गुण है जैसे- सौभाग्य, अतुलित्न बल, जनाह्लादक रूप लावण्य, दूसरों को अप्राप्त असीमित ज्ञान मैत्री, धैर्य करूणा क्षमा और कान्ति से युक्त बुद्धिमत्ता पूर्ण वचन आदि ये सब गुण श्रीनेमि प्रभु में ही प्राप्त हो सकते हैं।

एक श्लोक में श्री नेमिनाथ के गुणों की महनीयता के बारे में कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि शेषनाग ने नेमिनाथ प्रभु के गुणगान के लिए ही हजारों मुख धारण किये हैं एवं इन्द्र ने इन्हें देखने के लिए ही हजारों ऑखें लगा रखी है।

ब्रह्मा प्रतिदिन प्रभु श्रीनेमि के गुण गणना में व्यस्त रहते है। दिन में आकाश रूपी पट्टिका को मार्जित कर रात्रि मे प्रकाशित चन्द्रमा की कलङ्क रूपी स्याही और चन्द्रमा रूपी दावात तथा उसकी किरण रूपी लेखनी से तारों रूपी अंको के लिखने के व्याज से प्रभु के गुणों को गिनते है। लेकिन आज भी उन गुणों की इयत्ता नहीं प्राप्त कर सके।

व्योमत्याजादहनि कमनः पट्टिकां सम्प्रमृज्य

स्फूर्जल्लक्ष्मालकशशिखटोपात्रमादाय रात्रौ।

रुग्लेखन्या गणयति गुणान् यस्य नक्षत्रलक्षा-

दङ्कास्तन्वत्र खलु भवेतऽद्यापि तेषामियत्ताम्।[१]

---

१ जैनमेघदतम् १/२६

उपर्युक्त वर्णनो द्वारा यह ज्ञात होता है कि श्रीनेमि के गुणों का वर्णन करने मे ब्रह्मा भी व्यस्त रहते है। सामान्य व्यक्ति तो उनके गुणों का वर्णन कर ही नही सकता। श्रीनेमि को संसार से किञ्चित् भी लगाव नहीं है। वे अपने माता पिता द्वारा विवाह हेतु बार बार आग्रह किये जाने पर उनकी बात को अस्वीकार नही करते है। बल्कि बहुत सहजता से यह कहते हुए उन्हे प्रतीक्षा करने को कहते हैं कि- 'लोकप्रीतिकारिणी शाम-मार्दव, सन्तोष आदि गुणो की खान के समान किसी कन्या कोप्राप्त करूँगा तो उसी से विवाह करूँगा' कहने का अभिप्राय है कि लोक प्रीतिकारी गुणो से युक्त एक मात्र दीक्षा ही है। मै समय आने पर उसी को ग्रहण करूँगा।

श्रीनेमि अत्यन्त विनोदी स्वभाव के हैं। एक बार श्री नेमि श्री कृष्ण के शस्त्रागार में प्रविष्ट हुए। वहाँ पर उन्होंने पाञ्चजन्य शंख को देखा। इन्होंने ध्वनि सुनने की इच्छा से जैसे ही उसे बजाना चाहा कि वैसे ही प्रतिहारी ने कहा कि यह शंख श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा नहीं बजाया जा सकता है। प्रतिहारी के वचनों को सुनकर श्री नेमि ने शंख को विनोदपूर्वक - हाथ मे धारण कर बजा दिया। शंख की आवाज इतनी अधिक गम्भीर थी जिसको सुनते ही शस्त्राध्यक्ष संज्ञा शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, घोडे अश्वशाला छोड़कर और हाथी गजशाला छोड़कर अत्यन्त वेग पूर्वक भागने लगे। चारों तरफ हा-हाकार मच गया सैनिको के हाथों से शस्त्र गिरने लगे और महलो के शिखर भी ढहने लगे। शंख की गम्भीर ध्वनि से डरकर वीर लोग राजसभा मे ठिठके रह गये, श्रीकृष्ण भी, व्याकुल होकर सोचने लगे कि यह क्या हो गया।

श्रीनेमि अत्यन्त बलशाली थे। एकबार श्रीकृष्ण ने भुजबल की परीक्षा हेतु मल्लभूमि में उनका आह्वान किया। श्रीनेमि ने कुछ सोचकर श्रीकृष्ण से

कहा कि हमे सामान्य लोगों की तरह मल्लभूमि मे नहीं लड़ना चाहिए, हम दोनो मे कौन किसका हाथ मोड देता है- इसी से हम दोनों के बल की परीक्षा हो जायेगी। श्रीकृष्ण ने भी इस बात को स्वीकार किया। प्रभु श्रीनेमि के वाम हस्त से स्पर्श करते ही श्रीकृष्ण की अत्यन्त सुदृढ भुजलता कन्धे तक स्वयं झुक गयी। श्रीकृष्ण ने सोचा कि अकस्मात् मेरी भुजा कमल नाल की तरह क्यों हो गई अर्थात् दैव योग से ही ऐसा हुआ है तो अब मैं भी इसकी भुजा को झुकाकर क्यो न उनके तुल्य बलवान् बन जाऊँ। श्रीनेमि ने उनके भाव को जानकर अपने वाम हस्त को श्रीकृष्ण की ओर बढा दिया। परन्तु पूर्णरूप से प्रयत्न करने के बाद भी श्रीकृष्ण श्रीनेमि की भुजा को उसी प्रकार झुका नहीं पाये जिस प्रकार समुद्र पर्यन्त विस्तीर्ण हुए हिमालय की दीर्घ चोटी को हाथी नहीं झुका पाता है। बलिष्ठ श्रीकृष्ण श्रीनेमि की भुजा को मुक्त कर उनका आलिंगन करते हुए बोले- हे भाई। संसार में बसन्त ऋतु की सहायता से काम और वायु की सहायता से अग्नि जिस प्रकार अजेय हो जाते है उसी प्रकार आप भी अजेय हो जाये-

वीक्षापन्नोऽप्यधिहसमुखो दोषमुन्मुच्य दोष्मा-
नङ्केपालिं ददिति हरिः स्वामिनं व्याजहार।
भ्रातः । स्थाम्ना जगति भवतोऽजरयनेवासमद्य
प्रद्युम्नाग्नी इव मधुनभः श्वाससाहायकेन।[1]

उनकी जितेन्द्रियता की झलक कई स्थानों पर दृष्टिगत होती है उदाहरणार्थ वसन्त आगमन पर, श्रीकृष्ण की पत्नियों के साथ जलक्रीडा आदि का उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पडता हैं यहाँ तक कि वे पाणिग्रहण भी नहीं करते हैं।

---

[1] जैनमेघदूतम् १/४९

श्रीनेमि दृढ संकल्पी थे। एक बार दीक्षा ग्रहण करने का संकल्प लेनेके बाद अपने मार्ग से विचलित नही होते है।

जैसा कि हम जानते है कि श्रीनेमि जैनधर्म के बाइसवे तीर्थकर थे। अतः उनमे आदर्श महापुरुष का व्यक्तित्व भी दृष्टिगत होती है। उन्हे जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य का ज्ञानहै। इस चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संसार के सुख आनन्द आदि सभी कुछ त्यागकर दीक्षाग्रहण कर लेते है।

राजीमती - राजीमती जैनमेघदूतम् की नायिका है। राजीमती का चरित्रांकन करने से पूर्व हम काव्य शास्त्रीय दृष्टि से नायिकाओ के भेदों और अवस्थाओं के विषय मे बताना चाहते हैं। तत्पश्चात् यह भी बताना चाहते है कि राजीमती किस प्रकार की नायिका है।

काव्याचार्यो विशेषकर साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ तथा दशरूपककार आचार्य धनञ्जय और काव्यदर्पणकार ने काव्यात्मा रस विवेचन के अन्तर्गत आलम्बन आश्रयरूपा नायिका को विभिन्न भेदों से प्रस्तुत किया है।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नायिका भेद के प्रमुख रूप से ३ भेद मिलते है- १. स्वकीया २. परकीया ३. साधारणस्त्री। 'अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणस्त्रीति।'[१] विनय सरलता आदि गुणो से युक्त घर के काम काज में निपुण, पतिव्रता स्त्री <u>स्वकीया</u> कहलाती है।

<u>दशरूपककार</u> ने भी <u>स्वकीया</u> नायिका के ३ भेदों का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत किया है-

'मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् '[२]

---

१ विश्वनाथ- सा.द. पृ. ७१, ३/५६

२ दशरूपकम् पृ. सं. १३५

अर्थात् स्वकीया नायिका शील तथा सरलता आदि से युक्त होती है, वह मुग्धा, मध्य, प्रगल्भा तीनप्रकार की होती है। साहित्यदर्पणकार ने स्वकीया की परिभाषा - 'विनर्याजवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया' दिया है।[१] परकीया नायिका पर पुरुष से अनुराग करती हुई भी उसे प्रकट न करने के कारण परकीया की जाती है। सामान्या प्रायः वेश्या होती है वह धीर एवं कला प्रगल्भ होती है। आचार्य धनञ्जय के अनुसार साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्।"[२]

इन नायिकाओं की आठ अवस्थाएं होती है- १. स्वाधीनपतिका २. वासकसज्जा ३. विरहोत्कण्ठिता ४. खण्डिता ५. कलहान्तरिता ६. विप्रलब्धा ७. प्रोषितप्रिया ८. अभिसारिका।

१. स्वाधीनपतिका - स्वाधीनपतिका वह नायिका मानी जाया करती है जिसका प्रणयी उसके प्रेम की डोर में बँधा हुआ उसे छोड़कर कहीं अन्यत्र नही जा सकता। इसके अतिरिक्त इसकी यह भी विशेषता है कि (नायक केप्रति) इसके विविध विलास बड़े विचित्र और मनोरञ्जक हुआ करते हैं-

कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम् ।

विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका।।[३]

दशरूपककार ने स्वाधीनपतिका के विषय में कहा है कि 'जिस नायिका का पति समीप में स्थित है तथा उसके अधीन है और जो प्रसन्न है वह स्वाधीनपतिका है ' आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका।'[४]

---

[१] सा. द. पृ० ७२/३/५६

[२] दशरूपकम्

[३] साहित्यदर्पण पृ. सं. १६८, ३/७८

[४] दशरूपकम् पृ. सं. १५२

२. वासक सज्जा - प्रिय के आगमन की आशा होने पर जो हर्ष के साथ अपने को सजाती है वह वासकसज्जा है। 'मुदा वासकसज्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये।'[1]

आचार्य विश्वनाथ ने वासकसज्जा के विषय मे अपना विचार इस प्रकार से प्रस्तुत किया है -

'कुरुते मण्डनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि।

सा तु वासकसज्जा स्याद्विद्वितीतयसङ्गमा।।'[2]

अर्थात् 'वासकसज्जा वह नायिका है जो, अपने सजे-धजे रंगमहल में, अपनी सखियो द्वारा सजायी जाया करती है और अपने प्रियतम से मिलने की प्रतीक्षा में पड़ी रहा करती है। भरतमुनि के अनुसार -

उचिते वासके या तु रतिसंभोगलालसा।

मण्डनं कुरूते हृष्टा सा वै वाजकसाज्जिका।।[3]

३. विरहोत्कण्ठिता - निरपराध होते हुए भी प्रिय के देर करने पर उत्कण्ठित रहने वाली नायिका विरहोत्कण्ठिता कहलाती है-

'चिरयत्यप्यलीके तु विरहोत्कण्ठितोन्मनाः।'

साहित्यदर्पणकार के अनुसार - 'विरहोत्कण्ठिता' वह नायिका है जिसका प्रियतम, उससे मिलने के लिए उत्सुक होने पर भी दैववश, उससे नही मिल पाता और इसलिए जिसे वियोग की व्यथा विह्वल बना दिया करती है।

आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवन्नायाति यत्प्रियः।

---

१ दशरूपकम् पृ. सं. १५३

२ साहित्यदर्पण ३/८५

३ नाट्यशास्त्र २२-२१३

४. **खण्डिता** - काव्यमर्मज्ञ उस नायिका को खण्डिता कहा करते है जिसका हृदय अपने प्रेमी के प्रति इसलिए ईर्ष्या से कलुषित हो जाया करता है क्यो कि वह अपनी किसी दूसरी प्रेमिका के साथ अपने प्रेम सम्भोग को सूचित करने वाली वेष-भूषा मे उसके पास आया-जाया करता है। दशरूपकार भी इस खण्डिता परिभाषा से अधिक प्रभावित प्रतीत हो रहे हैं-

'ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता।'[१]

५. **कलहान्तरिता** - क्रोध से (अपराधयुक्त नायक को) तिरस्कृत करके पश्चात्ताप की पीडा (का अनुभव करने) वाली कहलान्तरिता नायिका है- 'कलहान्तरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक्'।[२]

६. **विप्रलब्धा-** प्रियतम के निश्चित समय पर न आने के कारण अत्यधिक अपमानित होने वाली विप्रलब्धा कहलाती है- **'विप्रलब्धोक्तसमयमप्राप्तेऽतिविमानिता।'** नाट्याचार्य भरतमुनि ने विप्रलब्धा का यह लक्षण किया है-

यस्याः दूतीं प्रियः प्रेष्य दत्वा संकेतमेव वा

नागतः कारणेनेह विप्रलब्धा तु सा भवेत् ।।

नाट्यशास्त्र २२/२१८

७. **प्रोषितप्रिया** - जिस नायिका का प्रिय किसी कार्यसे दूसरे दूर देश मे स्थित होता है, वह प्रोषित प्रिया कहलाती है। 'दूरदेशान्तस्थे तु

---

१ दशरूपकम् २/४० पृ. १५४

२ दश पृ. १५५ सं. २/४१

कार्यतःप्रोषितप्रिया।''[1] साहित्यदर्पणकार एव नाट्यशास्त्रकार ने भी यही स्वरूप निरूपण किया है-

नानाकार्याणि सन्धाय यस्या वै प्रोषितः प्रियः।

सा रूढालककेशान्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका।।[2]

८. अभिसारिका - काव्य कोविदों की दृष्टि में अभिसारिका वह नायिका हुआ करती है जो कि काम के वश में पड़ी या तो अपने प्रणयी को अपने पास बुलाया करती है या स्वयं अपने प्रणयी के पास पहुँचा करती है-

अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।

स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरूक्ताभिसारिका।।[3]

जैनमेघदूतम् की नायिका राजीमती को हम स्वकीया वर्ग के अन्तर्गत रख सकते हैं क्योकि वह पतिव्रता नारी है। परन्तु नायिका राजीमती विवाह के लिए सजकर तैयार है वह अत्याधिक हर्ष के साथ अपने स्वामी के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं। अतः यहाॅ पर राजीमती की वासकसज्जावस्था पायी जाती है। श्री नेमि बारातियो के भोजनार्थ लाये गये पशुओं के करूण चीत्कार को सुनकर विरक्त हो जाते है और विवाह स्थल से तत्काल ही वापस होकर पर्वत श्रेष्ठ पवित्र रैवतक पर आत्म-शान्ति एवं अध्यात्मिक सुख प्राप्ति हेतु चले जाते है। श्री नेमि में तो जैनधर्म के बाईसवें तीर्थंकर होने के कारण देवत्व गुण विद्यमान है और अपने मार्ग से विचलित नहीं होते हैं। परन्तु राजीमती तो सांसारिक नारियों की तरह है। उसमें भी आदर्श नारी के सम्पूर्ण गुण विद्यमान है, अतः वे पति द्वारा पाणि ग्रहण अस्वीकार करके चले जाने पर अत्यधिक व्याकुल हो जाती है। यहाँ पर वे प्रोषितपतिका नायिका है।

---

[1] दशरूपकम् पृ. १५६ २/४३

[2] नाट्यशास्त्र २२-२९९

[3] साहित्यदर्पण ३/७६

आचार्य मेरूतुङ्ग ने जैनमेघदूतम् मे नायक के चरित्र को ही ऊँचा नहीं दिखलाया है वरन् नायिका के चरित्र को भी सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। कवि ने राजीमती का चरित्र चित्रण करके यह दिखला दिया है कि नारी केवल भोग-विलास की वस्तु नही है, बल्कि वह सच्ची जीवन संगिनी है। नायिका अपने पति की तपस्या मे बाधक न बनकर साधक बन गयी है। कवि ने राजीमती के चरित्र का चित्रण करके नारी जाति को गौरवान्वित किया है और भारतीय नारियों मे आध्यात्मिक समुन्नति का त्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया है।

जैनमेघदूतम् मे राजीमती की निम्नांकित चरित्रगत विशेषताएं दृष्टिगत होती है।

राजीमती मे हृदयपक्ष की प्रधानता है। वे पुरूष की तरह बुद्धि प्रधान नही है। वे छल, कपट, द्वेष, ईर्ष्या आदि दुर्गुणो से दूर है। उसके हृदय मे दया, प्रेम, करूणा, सहानुभूति आदि जैसे गुण विद्यमान है।

राजीमती के हृदय पक्ष की प्रधानता काव्य में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक दृष्टिगत होती है। वह अत्यधिक भावुक है अपने स्वामी के वियोग में इतना आतुर हो जाती है कि अचेतन मेघ द्वारा अपना सन्देश श्री नेमि के पास भेजती है। उसकी भावुकता को देखते हुए उसकी सखियाँ समझाती है कि 'कहाॅं वह अचेतन मेघ और कहाँ कुशल वक्ताओं द्वारा कहा जाने वाला तुम्हारा सन्देश? किसके सामने क्या कह रही हो-यही भी तुम्हे ज्ञात नहीः-

'किं कस्याग्रे कथयसि सखि! प्राज्ञचूडामणेर्वा

नो दोषस्ते प्रकृति विकृतेर्मोह एवात्र मूलम् ।।'[१]

राजीमती के हृदय में श्री कृष्ण की भार्याओं के प्रति किञ्चित् भी ईर्ष्या और द्वेष की भावना नहीं है। वह श्रीकृष्ण की उन पत्नियों को धन्य मानती है

---

१ जैनमेघदूतम् ४/३८

जिन्होने परिवार के सदस्यो की इच्छा से खेलते हुए श्री नेमि को देखा है? वे अपने को अभागिन स्त्री मानती है क्योकि वे जैसे ही अपने स्वामी का स्मरण करती है वैसे ही मूर्च्छित हो जाती है, अतः वह श्री नेमि का स्मरण भी नही कर पाती हैः-

'धन्यः मन्ये जलधर! हरेरेव भार्याः स याभि-

र्दृष्टो दृग्भिः परिजनममुश्छन्दवृत्यापि खेलन्।

कस्माज्जज्ञे पुनरियमहं मन्दभाग्यास्त्रिचेली

या तस्यैवं स्मरणमपि हा मूर्च्छनाप्व्या लवेन।'[१]

राजीमती श्री नेमि से इतना प्रेम करती है कि उसे श्री नेमि की तुलना मे अन्य राजकुमार पत्थर बहेड़ा कांच के टुकड़े तथा तारे प्रतीत होते है। राजीमती का स्वामी तो उसकी दृष्टि में स्वर्णशिखर, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि तथा सूर्य है। वह अपने स्वामी के वियोग में योगिनी की तरह उनका ध्यान करती हुई सम्पूर्ण जीवन को व्यतीत करने की प्रतिज्ञा कर लेती है। इस प्रकार वह भारतीय नारी के एक पतित्व के आदर्श को प्रस्तुत की है।

अर्न्तद्वन्द्वता की प्रधानता नारी मे सदैव से विद्यमान रही है। उसमें भावप्रणता होने के कारण अंतः संघर्ष स्वभाविक है। नारी का बाह्य पक्ष गंभीर और शांत होता है परन्तु उसके अन्तःकरण की थाह कोई नहीं ले सकता है। नारी के हृदय में अर्न्तद्वन्द्वता से परिपूर्ण हजारों लहरें उठती हैं, जिसे समझना कठिन है।

ठीक इसी प्रकार जैनमेघदूतम् की नायिका के अन्तःकरण में अनेक प्रकार के अर्त्तद्वन्द्व उठते है। राजीमती जब श्री नेमि का गवाक्ष से दर्शन करती है वे हाथी पर सवार हुए, नासिका पर दृष्टि लगाये हुए तथा चन्दन राग को

---

१ **जैनमेघदूतम् २/२४**

लगाने से गौरवर्ण वाले और शुभ्र पवित्र वेष वाले एक तरफ भोगी के रूप मे दिखलाई देते है तो दूसरी तरफ पदमासन पर बैठे नासिका पर दृष्टि लगाये योगी के रूप मे दिखलाई देते है।

श्रेयः सारागममुपयमाघङ्गमग्यासनस्थं....... योगिनंवा जै० ३/३८

उनके उस रूप का दर्शन करते समय उसमे मोहसमुद्र उमड पडता है, उस समुद्र की तरङ्ग मालाओ से चञ्चलचित्त वाली जडी भूत होकर क्षण भर के लिए जडी भूत हो जाती है वह कौन है श्री नेमि कौन है वह क्या कर रही है इत्यादि कुछ भी जान नहीं पाती हैं। चेतनता आने पर वह आगे विचार करती हुई मेघ से कहती है कि मेघ कहॉ तो त्रिभुवन पति कहॉ तुच्छ जीव मैं फिर भी श्रीनेमि नाथ विवाह हेतु मेरे द्वार तक आ पहॅुचे। पर दक्षिण नेत्र ने फड़ककर मेरे भाग्य भाव को बताते हुए मेरे काम से युक्त मनोरथ रूपी कमल समूहो को संकुचित बना दिया है, अर्थात् इनसे विवाह होगा या नहीं ऐसी आशंका मन मे अनायास ही उत्पन्न हो गई। इस प्रकार राजीमती में अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उठते है।

राजीमती मनोवैज्ञानिक भी है। उसके मनोवैज्ञानिकता का परिचय प्रथम मेघ दर्शन से मिलता है। राजीमती ने मेघ और विरहिणी स्त्रियों के क्रियाकलापो को अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त किया है-

नीलेनीले शितिलपनयन् वर्षयत्यश्रुवर्णन्
गर्जत्यस्मिन् पटु कटु रटन् विद्ययत्यौण्यमिर्यन् ।
वर्षास्वेवं प्रभवति शुचे विप्रलब्धोऽम्बुवाहे
वामावर्गः प्रकृतिकुहनः स्पर्धतेऽनेन युक्तम् ।।[१]

---

१ जैनमेघदूतम् १/६

अर्थात् वर्षाकाल मे स्वभाव से ईर्ष्यालु विरहिणीस्त्रियॉ अपने शोक को उत्पन्न करने वाले मेघ से जो ईर्ष्या करती है वह ठीक ही है। (क्यो कि) मेघ के जो नीलतुल्य श्यामवर्ण वाला होने पर विरहिणी स्त्रियॉ भी मुख को श्याम बना लेती है और जब वह मेघ बरसता है तो विरहिणी स्त्रियॉ भी अश्रु बरसाती है जब वह मेघ गरजता है तो वे भी चातुर्य पूर्ण कटु विलाप करती है और जब मेघ बिजली चमकता है तो वे भी उष्णनिःश्वास छोड़ती है।

अन्यत्र स्थलों पर राजीमती ने अति मनोवैज्ञानिक ढंग से नावाम्बुद और कृष्ण के कृष्णत्व को प्रस्तुत करती है। उसका कहना है कि देशस्वामी कृष्ण और नवाम्बुद ये द्रोनों ही अपने जिस अर्जित पाप से कृष्णत्व को प्राप्त हुए है उसे मै जानती हूॅ। उनमें से एक यह कि देश स्वामी कृष्ण तो हमारे पति के द्वारा की गई न्याय की हत्या का निषेध न करने के कारण कृष्णत्व को प्राप्त हुए है और श्री नेमि कृष्ण के अनुज थे ही दूसरा यह मेघ गहन वियोग मे अग्नि तुल्य सन्ताप पहॅुचाने के कारण कृष्णत्व को प्राप्त हुआ है-

कृष्णों देशप्रभुरभिनवश्चाम्बुदः ...... विप्रयोगेऽग्निसर्गात् ।[१]

राजीमती व्यवहार कुशल भी है। वह अचेतन मेघ से वैसा ही व्यवहार करती है जैसा एक चेतन प्राणी के साथ किया जाता है इसे भली भॉति ज्ञात है कि किसी से कार्य सम्पादित कराने से पूर्व सर्वप्रथम उससे धनिष्टता स्थापित करनी चाहिए। अतः वे मेघ से घनिष्टता स्थापित करती है अन्त में मेघ से अपना सन्देश श्री नेमि के पास पहुँचाने के लिए प्रार्थना करती है।

राजीमती मेघ को अपने स्वामी से सन्देश कहने के लिए उचित समय बताती है वे कहती है 'हे धीमन। जब श्री नेमि भगवान् समजन्य सुख रस के पान से पूर्ण होकर कुछ-कुछ आँखे खोले तभी तुम उनके चरण कमलों में भ्रमर लीला करते हुए शान्त एवं सौम्य होकर मधुर वचनों से सन्देश कहना।

---

१ **जैनमेघदूतम् १/५**

राजीमती मे तर्क शक्ति करने की अद्भुत क्षमता है। उपालम्भ से परिपूर्ण उसका एक एक तर्क सहृदय रसिक के अन्तस्तल को भेदते हुए प्रतीत होते है स्वामी श्री नेमि के वैराग्य से राजीमती अत्यन्त सन्त्रस्त हो जाती है और तब मर्माहत उसके अर्न्तहृदय से उद्भूत मनोभाव उपालम्भ के रूप में परिणत होकर फूट पड़ते है। राजीमती अपने स्वामी से प्रश्न करती है कि 'हे नाथ। विवाह काल मे नवीन तथा स्थिर प्रेमवाली जिस मुझको आपने मधुर तथा घृताक्त किन्तु शीतल क्षैरेयी की तरह हाथ से भी नही हुआ था, कामाग्नि से अत्यन्त उष्ण हो एवं वाष्पपूरित एवं अनन्य मुक्ता उसी मुझको नवीन कान्ति वाले आप आज क्यो नही स्वीकार करते हैं।'[१]

यां क्षैरेयीमिव नवरसा नाथ वीवाहकाले ....

...... न स्वीक्रियते।

राजीमती अपने पति से यह भी तर्क करती है कि 'हे विभो यदि आप बाद मे मुनि बनकर त्यागना चाहते थे तो पहले स्वजनों की बुद्धि से मुझको स्वीकार ही क्यो किया था। सभी सज्जन पुरुष निश्चल बुद्धि होने के कारण 'हर शशि कला न्याय) से उन्हीं उन्हीं वस्तुओ को स्वीकार करते हैं जिनका निर्वाह वे कर सकते हैं।[२] वे आगे तर्क करती है-

'आसीः पश्चादपि यदि विभो ! मां मुमुक्षुर्मुमुक्षुः
भूत्वा तत्किं प्रथममुररीचर्करीषि स्वबुद्ध्या।
सन्तः सर्वेऽप्यतरलतया तत्तदेवाद्रियन्ते
यन्निर्वोढुं हरशशिकलान्यायतः शक्नुवन्ति।।'[३]

---

१ जैनमेघदूतम् ४/१५

२ जैनमेघदूतम् ४/१६८

३ जैनमेघदूतम् ४/१६

राजीमती श्रीनेमि से यह जानना चाहती है कि जब आप पशुओं के दुःखो को नाश करके उन्हे आनन्दित करते है तो अपने भक्त मुझको वचनो से ही क्यों नहीं आनन्दित करते है। राजीमती की तार्किक शक्ति जैनमेघदूतम् के चतुर्थ अंक मे दर्शनीय है।

राजीमती विदुषी महिला है। उसके भेजे गये सन्देशों मे हमे आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, मनोवैज्ञानिकता आदि की झलक मिलती है। राजीमती का साहित्यिक ज्ञान भी उच्चकोटि का है। उसने विविध अलंकारों सूक्तियो का भी सुन्दर प्रयोग किया है, उसकी भाषा शुद्ध एवं परिमार्जित है।

उदाहरणार्थ राजीमती को न्याय दर्शन का भी ज्ञान है। इसका पता उसके विचारो से लगता है। वे कहती है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों की तरह स्मृति को प्रमाण न मानने वाले अक्षपाद मेरे विचार से सही नहीं है अर्थात् उनका सिद्धान्त अनुभव विरूद्ध है। जब आप मेरे द्वार से लौट रहे थे तो मैंने प्रत्यक्ष आपको देखा था, जब बाजे गाजे के साथ आप वन को जा रहे थे जब अनुभव किया कि आप वन को प्रस्थान कर रहे हैं और सखियों ने कहा कि श्री नेमि ने दीक्षा ले ली है तो शब्द प्रमाण के द्वारा आपके सन्यस्त होने को जाना। तीनों प्रमाणों से जानकारी होने पर दुःख हुआ ही पर जब आप स्मृति पथ पर आते हैं अर्थात् आपका जब मैं स्मरण करती हँ तब तो और भी कष्ट होता है। इसलिए मेरा अनुभव है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों की तरह स्मृति को भी प्रमाण कोटि में नैयायिको को रखना चाहिए।[1]

'नो प्रत्यक्षानुमितिसमयैर्लक्ष्यमाणः . . . . न दक्षः।'

राजीमती दार्शनिकों के आधार और आधेय में मात्र औपचारिक भेद को स्वीकार नहीं करती है वे कहती है कि हमारा हृदय आधार हैं। आप आधेय है दोनों में स्पष्ट रूप से अन्तर है क्यों कि हमारा हृदय क्लेश मग्न है और

---

[1] **जैनमेघदूतम् ४/३१**

आप आनन्द मग्न है। वह गाढ भोगैषणा वाला है और आप निष्काम है वह मूढ है आप विज्ञ शिरोमण है वह तपित है आप शीतलात्मा है। वह स्पष्ट ही राग युक्त है और आप विरक्त है। अतः आधार और आधेय मात्र औपचारिक नही स्पष्ट भेद है।

क्लेशाविष्टे प्रमुदितमतिर्दीर्घतृष्णे वितृष्णे

मूढे मूढेतरपरिवृढस्तापिते निर्वृतात्मा।

त्यक्तं रक्ते वसति हृदये चेद्विरक्तोममेशा-

ऽऽधाराधेये तदुपचरिते केन भेदान्तरेण।।[१]

आध्यात्मिकता का परिचय निम्नलिखित मे मिलता है - राजीमती श्री नेमि को समझाती है कि आप जिस मुक्ति कान्ता को अपनाना चाहते है वह निर्गुणा है, अकुलीना है, अदर्शनीया है, गोत्र और शरीर का नाश करने वाली है तथा राग रहित है, इस प्रकार की मुक्ति के प्रबल इच्छुक आप केवल निवृत्ति इस नाम से ही उसमें आसक्त होकर यदि सुन्दर ललनाओं को त्याग देते हैं तो इस संसार में आपके लिए कोई स्थान नही है अर्थात् आप इस संसार मे रहने योग्य नहीं है।[२]

राजीमती को भाषा का भी अच्छा ज्ञान हैं अपने सन्देश में वह स्थान-स्थान पर सूक्तियों लोकोक्तियों का प्रयोग करती है, राजीमती मेघ से कहती है कि श्री नेमि और श्रीकृष्ण का प्रमदवन में आगमन होनेपर ग्रीष्म ऋतु दोनों का स्वागत करता है। इसके बाद गर्जना करते हुए हाथी वाले श्रीकृष्ण ने फले हुए वृक्षों को देखकर पीले पीले पके हुए रसीले बडे बडे फलों को ऐसे तोड

---

१ जैनमेघदूतम् ४/३२

२ जैनमेघदूतम् ४/२५,२६

लिया जैसे विद्वान कवि सारिग्रन्थो के निर्दोष अर्थ वाले सूक्ति समूह को ग्रहण कर लेता है -

गर्जदगर्जः फलमथ ललौ लीलयाऽनाश्रवार्थं

सारग्रन्थान् कविरिव सुधीः सद्गुणं सूक्तजातम् ।।[१]

इसी प्रकार एक अन्यस्थल पर राजीमती ग्रीष्म ऋतु के दिन और रात्रि की वास्तविक स्थिति से परिचय कराती है। दिन निरन्तर अपने प्रताप के साथ बढता रहा। पर रात्रि अपनी शीतलता के कारण घटती ही गई तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं क्यों कि निर्मल स्वभाव वाले लोग प्रायः उन्नति करते है और मलिन स्वभाव वाले क्षीणता को प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त सूक्तियो को देखते हुए हम कह सकते है कि राजीमती को भाषा पर अधिकार है। उसने साधारण सी बात को सूक्तियों में पिरो दिया है। कही कहीं तो अपनी भाषा को उपमादि अलंकारों से इस प्रकार अलंकृत किया है कि सामान्य व्यक्ति उसकी कल्पना नहीं कर सकता है।

राजीमती के बाह्य सौन्दर्य के विषय में अलग से कुछ भी नहीं मिलता है। परन्तु उसकी सुन्दरता का पता उसी द्वारा कहे गये सन्देशों से लगा सकते है।

उदाहरणार्थ - राजीमती श्री नेमि से कहती है कि 'आपके ज्येष्ठ भ्राता श्रीकृष्ण एक हजार सुन्दरियों के साथ क्रीडागार में अविश्रान्त रूप से विहार करते है और आप इतना समर्थ होते हुए भी एक सुन्दरी को भी स्वीकार करने का उत्साह नहीं करते।'[२]

---

१ जैनमेघदूतम् २/३८

२ जैनमेघदूतम् ४/१९

उपर्युक्त श्लोको से ज्ञात होता है कि राजीमती अत्यन्त सुन्दरी है, एक श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि वह गौरवर्ण की है।

आचार्य मेरुतुङ्ग ने राजीमती के बाह्य शारीरिक सौन्दर्य के विषय में रूचि न लेकर उसके आन्तरिक सौन्दर्य को निखारा हैं। इनके काव्य की नायिका अत्यन्त भावुक दृढानुरागिणी तथा आदर्श रमणी है। इसके साथ बुद्धिमती एवं विदुषी भी है।

राजीमती अत्यधिक भावुक है तभी तो वे सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं को अत्यन्त भावुकता के साथ देखती है और उसे मेघ से वर्णन करती है। एक स्थान पर वे वर्णन करती है कि संसार में सभी शोक से विमुक्त हो जाते हैं परन्तु मै हमेशा के लिए शोक पात्र हो गई हूॅ।

क्रोकी शोकाद्वसतिविगमे .... त्वाभवं भोः। ४/९

अर्थात हे मेध! रात के बीतने पर चक्रवाकी दिन के अन्त मे चकोरी तथा शीत एवं ग्रीष्मऋतु के समाप्त होने पर वर्षाकाल में मयूरी शोक से मुक्त होती है। परन्तु मेरे स्वामी श्री रेमि ने मुझे पूर्ण यौवन मे उसी प्रकार त्याग दिया जैसे सांप केचुल को छोड़ देता है। अब मैं जन्म भर के लिए उसी प्रकार शोक का पात्र हो गई हूॅ जिस प्रकार तालाब हमेशा के लिए जल का पात्र हो जाता है।

एक स्थान पर वे अपने हृदय को धिक्कारते हुए कहती है कि 'हे हृदय तुम दो टुकड़े क्यों नहीं हो जाते हो।

वह अत्यन्त दृढानुरागिणी है सखियों द्वारा समझाये जाने पर कि अन्य किसी गुण सम्पन्न राजकुमार से तो तुम्हारी शादी हो ही जायेगी। चिन्ता मत करे। सखियों की इस प्रकार की वाणी उसे जले पर नमक छिडकने जैसी लगती है। अतः वे उन्हीं के समक्ष प्रतिज्ञा कर लेती है कि मैं योगिनी की

तरह उन भगवान श्री नेमि के ध्यान मे ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर लूँगी -

"क्वान्ये भूपाः क्व भुवनगुरुस्तस्य तद्योगिनीव

ध्यानान्नेष्ये समयमिति ताः प्रत्यथ प्रत्यजानि।" ३/५४

श्री नेमि द्वारा पाणिग्रहण अस्वीकार करने पर और छोडकर चले जाने पर राजीमती उनके आनें की आशा को हृदय में रखकर प्रतीक्षा करती है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी भावो से उसके भावुक दृढानुरागिणी का परिचय मिलता है। यद्यपि राजीमती श्रेष्ठ रूप रंगों वाली है और उसकी विलक्षण बुद्धिमती भी है फिर भी वह श्री नेमि को जीत नहीं पाती है। अन्ततः वह अपने जीवन की सार्थकता श्री नेमि के समीप जाकर दीक्षा ग्रहण करने में, तथा उन्ही के ध्यान मे लीन होकर स्वामी की तरह राग द्वेष आदि से मुक्त होकर परमानन्द के सर्वस्व मोक्ष की प्राप्ति में मानती है

इस प्रकार जैनमेघदूतम् की नायिका कालिदास के मेघदूतम् की नायिका से पृथक् प्रतीत होती हैं। राजीमती भी विदुषी, पतिव्रता बुद्धिमती है। परन्तु वे विधिध कलाओं में प्रवीण नही है जैसा कि यक्षपत्नी वियोग के व्याकुल क्षणों मे अपने सन्तप्त मन को सान्त्वना देने के लिए कभी कभी ऐसे भाव पूर्ण गीतों की रचना करती थी जिसमें पति का नाम उल्लेख होता था और वीणा बजाकर उन पदो को गाने का प्रयत्न करती थी। कभी कभी अपनी प्रियतमा के वियोग से कृश हुए पति का चित्र खीचकर मनोविनोद करती थी। जैनमेघदूतम् की नायिका अपनी स्मृति पटल पर हर क्षण स्वामी का चित्र अंकित रखती है। वह असाधारण स्त्री है। उसका संयम, तप और त्याग, सौन्दर्य चिरन्तन और अधूमिल है।

श्रीकृष्ण - काव्य में श्रीकृष्ण का वर्णन बहुत विस्तृत रूप में नहीं किया गया है। कुछ श्लोकों द्वारा यह ज्ञात होताहै कि श्रीकृष्ण का जन्म

यदुवंश मे हुआ था। श्रीकृष्ण के समय को महाभारत काल के अन्तर्गत रख सकते हैं। श्रीनेमि इनके चचेरे भ्राता थो। इन्होने राजनीति की शिक्षा दी थी।

श्रीकृष्ण नीलकान्ति से युक्त थे और उनकी लम्बाई दस धनुष के बराबर थी।

श्रीकृष्ण कुशल योद्धा भी थे। इसलिए उन्होने एक शस्त्रागार भी बनवा रखा था जिसमें सरल आयुधों तथा तीक्ष्ण धार वाले बाणों से युक्त उत्कृष्ट शोभा वाली शस्त्र श्रेणी थी। उस शस्त्रागार में पाञ्चजन्य शंख रखा हुआ था जिसे श्री कृष्ण बजा सकते थे। इसे बजाने पर प्रलयकारी स्थिति आ जाती थी। एक बार श्री नेमि ने इस शंख को बजा कर प्रलयकारी स्थिति ला दी थी।

श्रीकृष्ण बहुत बीर थे। उनकी भुजा मे लाखो हाथियों के समान बल था। श्रीकृष्ण में ईर्ष्या भाव नही था वे पूरे आत्म विश्वास के साथ श्री नेमि से लडते है। वे हार जाते है फिर भी निराश नही होते हैं।

श्रीकृष्ण विनोदी स्वभाव के थे। वे अपने परिजनों एवं श्री नेमि के साथ उद्यान में क्रीडा खेलते है। श्रीकृष्ण विद्वान भी थे। तभी तो वे पके हुए रसीले बड़े बड़े फलों को उसी प्रकार तोड़ लेते हैं जिस प्रकार विद्वान कवि सार ग्रन्थो के निर्दोष अर्थ वाले सूक्ति समूह को ग्रहण कर लेता है-

दर्शं दर्शं फलितफलदानपाकिमं पीतलत्वं
विभ्रद्वभ्रुः सरसमकृशं वानशालाटवान्यत् ।
गर्जद्गर्जः फलमथ ललौ लीलयाऽनाश्रवार्थं
सारग्रन्थान् कविरिव सुधीः सद्गुणं सूक्तजातम् ।।[1]

---

[1] जैनमेघदूतम् २/३८

श्रीकृष्ण विलासी थी थे। वे श्रे नेमि और अपनी पत्नियों के साथ वसन्त ऋतु का पूरा आनन्द लेते है। उनके साथ बावली में कई बार स्थान करते है और सुन्दर सुन्दर सरोवरो को देखते है तथा प्रधान सरित वापियों में श्री नेमि एवं अपनी स्त्रियो केबीच सुन्दर शरीर वाले श्रीकृष्ण हाथों से जल समूह को उलीचते हुएमदभरी दृष्टि से कामानुरक्त स्त्रियो के साथ मतवाले हाथी के समान जलक्रीडा करते है।

श्रीकृष्ण विवाह संस्कार को आवश्यक मानते है। श्री नेमि द्वारा विवाह अस्वीकार किये जाने पर इन्हे स्वयं समझाने का प्रयास करते हैं तथा अपनी पत्नियो द्वारा भी विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कराने में पूर्णतः सक्षम होते है।

श्री कृष्ण अत्यधिक विनम्र स्वभाव के हैं। वे स्वयं श्री नेमि के विवाह का प्रस्ताव लेकर राजीमती के पिता के पास जाते हैं और नीतिवाक्यो का कथन करते हुए राजीमती को श्री नेमि के लिए मांग लेते हैं-

'दुग्धं स्निग्धं समयतु सितां रोहिणीपार्वणेन्दुं

हैमी मुद्रा मणिमुरुधृणिं कल्पवल्ली सुमेरुम् ।

दुग्जाम्भोधिं त्रिदशतटिनीत्यादिभिः सामवाक्यैः,

श्रीनेम्यर्थं झगिति च स मद्वीजिनं मां ययाचे।।'[१]

जैसे र्शकरा स्निग्ध दुग्ध से मिलती है, रोहिणी नक्षत्र पावर्णचन्द्र से मिलती है, स्वर्णमुद्रिका अधिक कान्तिवाली मणि से मिलती है, कल्पलता सुमेरू से मिलती है उसी प्रकार राजीमती श्री नेमि से मिले इस प्रकार नीति वाक्यो को कहते हुए श्री कृष्ण ने शीघ्र ही मेरे पिता से मुझे मांगा।

---

[१] जैनमेघदूतम् ३/२३

श्री कृष्ण की सत्यभामादि पत्नियों का चरित्राङ्कन

श्रीकृष्ण की सत्यभामादि पत्नियाँ विदुषी हैं। वे अत्याधिक सुन्दर हैं। वे अपने नेत्रो से काम को परास्त करने में सक्षम हैं। सत्यभामादि पतिव्रता नारियॉ है, वे पति का इशारा पाते ही सब मिलकर श्री नेमि को समझाने मे संलग्न हो जाती हैं। काव्य में इनका श्री नेमि के साथ जलक्रीड़ा का वर्णन रमणीय ढ़ंग से उल्लेखित है।

सर्वप्रथम उस श्री कृष्ण पत्नी का उल्लेख मिला है जिसनें फूलो एवं नये-नये लाल पत्तो से गुँथी जिस पर भौरों का समूह मॅडरा रहा हो, ऐसी माला को श्री नेमि को पहना दिया है।

एक दूसरी कृष्ण पत्नी का उल्लेख मिलता हैं, जो नर्म पण्डिता है। वे चन्दन रस के नये-नये लवों से श्री नेमि के सुन्दर शरीर पर विन्दु विन्यास पूर्वक पत्रवल्ली की रचना करती है। फिर उनके सिर पर फूलों के मुकूट को रखकर दिन मे ही चन्द्र एवं ताराओ से युक्त आकाश को दिखलाने लगी।

एक अन्य श्री कृष्ण पत्नी हैं, जिन्हें बन्धन मोक्ष, आत्मा-परमात्मा के विषय मे भी ज्ञान है वे श्री नेमि से प्रश्न करती है कि हे लोकोत्तर। तुम मूर्तिमान राग पाश से बँधे होने पर मोक्ष को कैसे प्राप्त करोगे? इस प्रकार के प्रश्न के बहाने श्री नेमि के कटिप्रदेश को उसी प्रकार बाँध देती हैं जैसे प्रकृति आत्मा को बाँध लेती है। किसी अन्य पत्नी ने चन्दन रस से भिगोये हुए तथा पक्तियों में रखे हुए सरस फूलों से श्री नेमि नाथ के वक्षस्थलों को ढक दिया।

यदुपति श्री कृष्ण की पत्नियाँ श्वेत तथा कोमल साड़ियों को पहनने के कारण प्रशंसनीय हैं। वे अपने कटाक्षों से सारे जगत को परास्त कर देती है।

कृष्ण की पत्नियाँ जलक्रीड़ा में निपुण है। वे स्वर्णिम पिचकारियो को सुशोभित जलों के रंगों से भरकर मुस्कुराते हुए उन भगवान श्री नेमि को सराबोर कर देती है।

ये रमणीयाँ अपने देवर से अत्याधिक प्रेम करती है। वे सहस्त्रदल कमल पुष्प को तोड़कर श्री नेमि के कानों में पहना देती है क्योंकि वे नहीं चाहती कि यह कमल परास्त होकर अन्य के मुखकमल की सेवा करे। एक श्री कृष्ण पत्नी ने श्वेत कंमलो को यह कहकर श्री नेमिके गले में पहना दिया कि 'एक तू मेरे देवर के निर्मल नेत्रों से स्पर्धा कर रहा है।' रूक्मिणी तो श्री नेमि को साक्षात् कामदेव कहती है।

जैनमेघदूतम् में जैन द्वारा आठ मूल कर्म प्रकृतियों की तुलना कृष्ण की आठ पटरानियो से की गई है। उसमे सर्वप्रथम रूक्मिणी का वर्णन मिलता है जो बहुत विनम्र तथा हँसमुख है। वे पिदुषी भी है। वे श्री नेमि को पाणिग्रहण हेतु बाध्य करती है। उनकी प्रशंसा करती हुई कहती है कि आप हमारी बातो को पृथ्वी की तरह सहन करते है, तभी तो हम निःसंकोच बात कर लेती हैं। वे श्री नेमि की सुन्दरता को स्त्री के बिना व्यर्थ बताती है।

रूपं---------------------------------स्त्रीरभूमिः ३/८

अर्थात् हे देवर काम तुम्हारे रूप को देखकर लज्जित हो गया अर्थात् छुप गया। इन्द्र ने आपके लावण्य को देखने के लिए हजारों नेत्र धारण किये और वन श्री ने तो उन दोनों (रूप और लावण्य) के उत्कर्ष को और भी सजा दिया है जैसे शरद ऋतु, चन्द्र और सूर्य शोभा व्यर्थ है।

दूसरी पटरानी का नाम जाम्बवती है जो बहुत तर्क पूर्ण वाक्य श्री नेमि के समक्ष प्रस्तुत करती है और उनसे प्रश्न करती है 'हे देवर। इस बात को आप क्यों नहीं सोचते कि आदिदेव जैसे मोक्ष कार्य के भी प्रवर्तक है। तो आप उस दैवी मार्ग को छोड़ने वाले कोई नवीन सर्वज्ञ हैं क्या?

'नाभेयोपक्रममिह यथा श्रैयसोऽध्वा-----जम्बिवत्यप्यगासीत् ।।'[१]

तीसरी पटरानी लक्ष्मणा है जो श्री नेमि को समझाते हुए कहती है कि वे लोग ही लक्ष्मीवान् हैं जिनकी लक्ष्मी मेघ के जल की तरह दूसरों के उपयोग के काम आती है। यदि आपका रूप समुद्र के जल की तरह दूसरों के काम आने वाला नहीं है तो क्या आप भी संसार मे उसी समुद्र की तरह विरक्त नही कहे जायेगे।

इस प्रकार श्री नेमि को परोपकार करने के लिए कहती है।

चौथी पत्नी का नाम सीमा है जो मितभाषिणी है। वे गृहस्थ आश्रम को बहुत अधिक महत्त्व देती है। वे श्री नेमि को समझाते हुए कहती है कि 'गृहस्थ ब्रह्मा की तरह निष्काम होकर अच्छा नहीं माना जाता है। अतः आप गुरूजनो की बात मानकर उपनी द्वितीय पत्नी को ग्रहण कर आगे के सौभाग्यादि को उसी प्रकार प्राप्त करेंगे जैसे सभी शुक्लपक्षों में चन्द्रमा द्वितीय तिथि का विस्तार कर अग्रिम कलाओं को प्राप्त करता है।'[२]

पॉचवी पटरानी गौरी हैं। ये श्री नेमि से अत्यधिक प्रेम करती हैं। ये प्रेमक्रोध के कारण लाल हो जाती हैं। गौरी व्यंगात्मक शैली में अपनी बात प्रस्तुत करती हैं, इनका कहना है कि हे आर्यापर! जो नारी भगवान् श्री शान्तिनाथ जैसे मुख्यजिनों के द्वारा भी मान्य है उस नारी से द्वेष करने वाले तुम कौन से सिद्ध हो? और भी देखो -महाव्रती भगवान शंकर भी गौरी को एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ते।[३]

इसके पश्चात् सत्यभामादि का वर्णन मिलता है। सत्यभामा को अत्यधिक व्यावहारिक ज्ञान है। ये अपनी सखियों को सलाह देती हैं कि श्री

---

१ जैनमेघदूतम् ३/९

२ जैनमेघदूतम् ३/१०

३ जैनमेघदूतम् ३/१२

नेमि को उपदेश द्वारा वश मे नही किया जा सकता। अतः आज इन्हे घेरकर शीघ्र ही अपने वश में करके 'अबला' इस दोष को उसीप्रकार मिटा दो जैसे ज्ञान चित्तवृत्ति को अवरूद्ध एवं अपने वश में करके दोषों को दूर कर देता है।

सत्या सत्यापितकृतकवाक्कोपमाचष्ट--------------नोद्यः।[१]

सातवीं पटरानी पद्मावती है जो बहुत शान्त एवं गम्भीर हैं। ये सभी को सलाह देती है कि हम लोगो को इन पर क्रोध नहीं करनी चाहिए अपितु प्रेम से ही मनाना चाहिए।'

आठवीं पटरानी गान्धारी हैं जो व्यंग्य और प्रेम से मिश्रित बातें करती है। गान्धारी श्री नेमि को समझाती है कि जन्म से ही ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके आप ब्रह्मा से ऊँचा पद तो पाओगे नही और शादी कर लेने पर भी आप उस पद को प्राप्त करेंगे ही। अतः "एवमस्तु" कहकर तुम हम सबको सुखी बनाओ। हम तुम्हारे पैरों पर गिरती हैं, हम सब तुम्हारी दासी है, हे ईश। उपर्युक्त चाटुकारिता से तो राज्य भी प्राप्त किया जा सकता है, अतः इस चाटुकारिता से हम लोगों को सुख तो दो।"[२]

इस प्रकार श्रीकृष्ण की पटरानियाँ कोई साधारण नारी नहीं है। ये काम को भी जितने में समर्थ है तथा श्री नेमि जैसे गम्भीर व्यक्ति जिन स्वामी को भी अपनी बात को स्वीकार कराने में समर्थ हैं।

समुद्रविजय- यदुपति समुद्रविजय कथानायक श्री नेमि के पिता है। काव्य में इनके नाम तथा गुणों का अति संक्षेप में उल्लेख प्राप्त होता हैं। इन्हें काव्य मे दसो दिशाओं के स्वामी 'दशार्ह' नाम से सम्बोधित किया गया है- 'तस्मिन् मूर्त्ता इव दशदिशां नायकाः ये दशार्हाः"। ये अत्यधिक बलशाली,

---

१ जैनमेघदूतम् ३/१३

२ जै. मे. ३/१४

अतिप्रकृष्ट बुद्धि वाले है। ये सदैव धर्म के मार्ग पर चलते हैं। अपनी प्रजा का पालन-पोषण भी बहुत ईमानदारी से करते हैं। इन्हीं सब पुण्यों के कारण युद्ध में ये सर्वथा विजय प्राप्त करते है।

समुद्रविजय पुत्र-वत्सल पिता है। अपने पुत्र के जन्म को सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होते है और उनका सूतिका कर्म दिक् कन्याओ द्वारा सम्पन्न कराते है। श्री नेमि की युवावस्था को देखकर भाव विह्वल हो जाते है तथा उन्हें पाणिग्रहण करने को कहते हैं।

इसप्रकार समुद्रगुप्त में सम्पूर्ण राजोचित गुण विद्यमान है। वे रूपवान्, शक्तिशाली ऐश्वर्य सम्पन्न तथा प्रखर मेधावी वात्सल्य प्रेमी हैं।

शिवा - शिवा देवी श्री नेमि की माता है। एक स्थल पर शिवा को समुद्रविजय की प्रेयसी भी कहा गया है-[१]

तेषामाद्यः क्षितिपतिगुरुः श्रीशिवाप्रेयसी च

प्राज्ञों द्वैधं सुकृतविजयी सुप्रजाः श्रीसमुद्रः।।[२]

शिवा में नारी सुलभ सभी गुण विद्यमान है। वे अत्यधिक सरल स्वभाव की हैं। उनके हृदय में वात्सल्य प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ हैं। अपने पुत्र के रूप-सौन्दर्य आदि गुणों को देखकर अपार प्रसन्नता की अनुभूति करती है। इससे अधिक कवि ने काव्य में शिवा के चरित्र का विकास नहीं किया है। अतः इनके चरित्र को अति संक्षिप्त में वर्णन किया गया है।

अन्यपात्र- जैनदूतकाव्य की नायिका राजीमती के माता-पिता के विषय मे विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है। कवि ने इनके चरित्र को अत्यन्त अल्प

---

१ जैनमेघदूतम् १/१४

२ जैनमेघदूतम् १/१४

शब्दों मे विकसित किया है। यहाँ तक कि कवि ने उनके नामों का भी उल्लेख नहीं किया है।

अन्य काव्यों[1] (नेमिनाथ महाकाव्य एवं नेमिदूतम्) से यह ज्ञात होताहै कि राजीमती के पिता का नाम उग्रसेन था। ये वात्सल्य प्रिय हैं। सन्तति सुख मे ही इनका सुख हैं। वे अपनी पुत्री राजीमती से इतना स्नेह करते है कि उसके विवाह मण्डप को सजाने के लिए श्रेष्ठ सज्जाकारों को बुलाते हैं। उपर्युक्त प्रसंग से ये पता चलता है कि कला प्रेमी भी हैं।

सखियाँ - काव्य में राजीमती की सखियों के चरित्र को भी अनदेखा नही किया जा सकता है। इनका चरित्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। राजीमती की सखियाँ राजीमती को दुःखित देखकर स्वयं भी दुःखित हो जाती हैं और उसके दुःख को पूर्णतः दूर करने का प्रयास करती हैं। इसप्रकार वे सच्ची मित्र हैं। इनका स्वभाव भी अतिनिश्छल है।

राजीमती की सखियाँ प्रत्येक स्थिति से समझौता करना जानती है। वे राजीमती की प्रत्येक स्थिति मे साथ देती है। विवाह हेतु जब श्री नेमि राजीमती के द्वारपर आते हैं तो उस समय राजीमती के दक्षिण नेत्र फडकने लगते है और इस पर राजीमती को आशंका होती है कि मेरा विवाह श्री नेमि के साथ होगा या नहीं। राजीमती की आशङ्का को जानकर उसकी सखियाँ अत्यधिक उद्वेग के कारण घबराजाती है। परन्तु उसे चुप रहने को कहती है और उसे अमाङ्गलिक बातों को मन से निकाल देने को कहती है-

शान्तं पापं क्षिपसि ससिते क्षीरपूरेऽक्षखण्डान् ।

मङ्गल्यानामवसर इहामङ्गलं ते खलूक्त्वा।।[2]

---

[1] नेमिदूतम् १/१

[2] जैनमेघदूतम् ३/४

राजीमती की सखियॉ धैर्यशाली तथा बुद्धिमती भी है। श्री नेमिद्वारा पाणि ग्रहण अस्वीकार कर देने पर राजीमती मूर्च्छित हो जाती है। ऐसी परिस्थिति मे उसकी सखियॉ उसे धैर्य धारण करने को कहती हैं और उसे समझाती है कि यदि श्री नेमि विवाह करने के उपरान्त तुमसे विमुख हो जाते तो तुम्हारी स्थिति समुद्र में छोड़ी हुई नौका सदृश होती। परन्तु अभी कुछ नहीं बिगड़ा है अन्य किसी गुण सम्पन्न राजकुमार के साथ तुम्हारी शादी जो जायेगी। चिन्ता मत करो -

अग्रे धूमध्वज गुरुजनं चेदुदुह्य व्यमोक्ष्यत्

तत पाथोधौ प्रवहणमुपक्षिप्य सोऽमज्जयिष्यत् ।

राजान्यानामधिगुणतरोऽन्योऽथ भावी विवोढे-

व्यालीनां गीरजनि च तदा मे क्षतक्षारतुल्यः।[१]

राजीमती की सखियों को अध्यात्मिक ज्ञान भी है। विरह से व्यथित राजीमती के तीक्ष्ण शब्दों को सुनकर उसे बहुविध समझाते हुए सारे दोष का कारण मोह ही है ऐसा बताती हैं।[२]

तत्पश्चात् राजीमती की सखियाँ उसे अनायास उत्पन्न होने वाले महामोह को बोधरूपी शस्त्र से नष्ट कर डालने का परामर्श देती हैं।

किं त्वेवं ते यदुकुलमणेर्वीरपत्न्या विसोढुं

नैतन्न्याय्यं तदिममधुना बोधशस्त्रेण छिन्द्धि।[३]

---

१ जैनमेघदतम् ३/५६

२ किं वा कस्याग्रे कथयसि सखि प्राज्ञचूडामणेर्वा
नो दोषस्ते प्रकृतिविकृतेर्मोह एवात्र मूलम् ।
जैनमूघदतम् ४/३८

३ जैनमेघदूतम् ४/३९

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजीमती की सखियो मे एक सच्चे मित्र क प्रत्येक गुण विद्यमान है और काव्य मे उन्होने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह म कोई भुरि नही की है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आचार्य मेरूतुङ्ग ने काव्य मे जिनपात्रो का प्रत्यक्ष या अपरोक्ष चित्रण किया गया है वे वस्तुतः चारित्रिक विविधताओ से युक्त है।

चतुर्थोऽध्यायः

जैनमेघदूतम् की रस योजना

रस तत्त्व, जैनमेघदूतम् में

रस विमर्श

जैनमेघदूतम् की रस योजना

(क) रस तत्त्व

आचार्य मेरुतुङ्ग कृत जैनमेघदूतम् मे रस विमर्श करने के पूर्व हम रस का सामान्य परिचय, संख्या विभिन्न काव्यो के अनुसार उसकी संख्या, रसो के स्थायी भाव, तत्त्वो पर विचार करना आवश्यक समझते हैं -

रस की आदिप्रणेता और व्याख्याता आचार्य भरत ही माने जाते है इन्होने रस का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नाट्य के सन्दर्भ में किया है। निःसंदेह रस का प्रेरणा-स्रोत वेद एंवं अन्य प्राचीन साहित्य रहा होगा। रस आनन्द स्वरूप है इस प्रकार का विवरण उपनिषदों में मिलता है। रसों को रस के आनन्दात्मकता होने के कारण पर ब्रह्म परमेश्वर या आत्मा का भी रस रूप में ही ऋषियो ने उल्लेख किया है।[१]

व्युत्पत्ति के अधार पर रस पद की सिद्धि दो रूपों में की जाती है -

(क) रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।

(ख) रसते इति रसः।

उपर्युक्त प्रथम अंश आस्वाद का अर्थ प्रकट करता है किन्तु द्वितीय अंश रस में द्रवत्व की स्थिति मात्र का बोध कराता हैं। साहित्यशास्त्र में रस पद का प्रयोग काव्यानन्द का बोध कराने के लिए होता है।

रस को रस क्यों कहा जाता है? इसके कारण को भी शारदातनय ने रस पद की व्युत्पत्ति के माध्यम से व्यक्त कर दिया है। विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी तथा सात्त्विकों द्वारा वर्धित तत्त्व नायकादि का आश्रय पाकर नाट्य

---

१ भारत और भारतीय नाट्यकला पृ.सं. २२२

मे नट आदि द्वारा अनुकरण रूप में प्रस्तुत किया जाने वाला स्थायीभाव ही सामाजिको के मन में रसता प्राप्त करता है।

स्थायी भाव प्राचीन संस्कारो द्वारा रसमय होते है और रसमयी अनुभूतियाँ ही रस की संज्ञा प्राप्त करती है।

तस्माद् - -- -- - - - - - -- -यत्ततो रसाः।।[१]

रस किसे कहते हैं? विभिन्न आचार्यों के अनुसार रस की परिभाषा नाटकलक्षणरत्नकोश के ग्रन्थ के अनुसार रस का लक्षण निम्नलिखित है-

विभावस्यानुभावस्य व्यभिचारिण एव च।

संयोगादुन्मिषेय भाव स्थाप्येव तु रसो भवेत् ।।[२]

अर्थात् जब विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के पारस्परिक संयोग द्वारा स्थायी भाव विकास प्राप्त करे तो वही रस हो जाता है।

दशरूपकम् मे आचार्य धनञ्जय रस का लक्षण देते हुए कहते हैं -

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः

आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः।। (४/१/दश.)

अर्थात् विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव एवं व्यभिचारियों के द्वारा जब रत्यादि स्थायी भाव आस्वाद्य चर्वणा के योग्य- बना दिया जाता है, तो वही रस कहलाता है।

---

१ भाव प्रकाश- तृ. अ. पृ. सं. ५९

(भाव प्रकाशन - एक समालोचनात्मक अध्ययन पृ. सं. ९२)

२ नाटकलक्षण रत्नकोश ॥१९१॥ पृ० १८२

(सागरनन्दी व्याख्याकार पं. श्री बाबूलाल शुक्ल, शास्त्री प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, विद्यासागर प्रेस, वाराणसी)

भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र पर आधारित अभिनव भारती में श्री अभिनव गुप्त ने रस की परिभाषा निम्नलिखित दिया है-

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति'

अत्र भलोल्लटप्रेभृतयस्तावदेव व्याचख्यु - विभावादिभिः संयोगोऽर्थात् स्थायिनस्ततो रसनिष्पत्तिः। तत्र विभावश्चित्तवृत्तेः स्थाय्यात्मिकाया उत्पतौ कारणम् अनुभावाश्च न रसजन्या अत्र विवक्षिताः। तेषां रसकारणत्वेन गणनानर्हत्वात् । अपि तु भावनामेव। ते येऽनुभावाः व्यभिचारिणश्च चित्तवृत्यात्मकत्वात् यद्यपि न सहभाविनः स्थायिनस तथापि वासनात्मनेह तस्य विवक्षिताः तेषां रसकारणत्वेन गणनानर्हत्वात् । अपि तु भावानामेव। येऽनुभाव व्यभिचारिणश्च। चित्तवृत्त्यात्मकमत्वात् यद्यपि न सहभाविनः स्थायिनः तथापि वासनात्मनेह तस्य विवक्षिताः। द्रष्टान्तेऽपि व्यञ्जनादिमध्ये कस्यचिद्वासनात्मकता स्थायिवत्। अन्यस्योद्भूतता व्यभिचारिवत् तेन स्थाय्येव विभावानुभावादिभिरूपचितो रसः। स्थायी भवत्वनुपचितः। स चोभयोरपि। अनुकार्येऽनुकर्तर्यपि चानुसन्धानबलात् इति।[१]

आचार्य विश्वनाथ ने रस की परिभाषा अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में निम्नलिखित प्रकार से दिया है -

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम् ।।

अर्थात् सहृदय के हृदय में इत्यादिरूप स्थायीभाव जब विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव के द्वारा अभिव्यक्त हो उठते हैं तब आस्वाद अथवा आनन्दरूप हो जाता है और ' रस ' कहते जाते हैं। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट की भी यही रस दृष्टि है -

---

१ अभिनवभारती षष्ठोऽध्यायः पृ. २६९

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।

व्यक्तस्स तैर्विभावाद्यैस्स्थायीभावो रसः स्मृतः।।

इस प्रकार विभावादि द्वारा अभिव्यञ्जित होने पर स्थायीभाव ही रस के रूप मे परिणत हो जाता है और तब वह रस अलौकिक आनन्द का जनक बन जाता है। उदाहरणार्थ जैसे नट अपनी भूमिका में रंगमंच पर वाचिक आदि अभिनयों द्वारा चित्तवृत्तियों का प्रदर्शन करता है, सामाजिक या दर्शक साधारणीकरण द्वारा उन भावों का अनुभव करता है। रसास्वादन या काव्यार्थानुभूति में भावों को ठीक यही स्थिति है। उसके स्पष्टीकरण में नाटयशास्त्र का वह श्लोक अवलोकनीय है जिसमें कहा गया है कि ' जो अर्थ विभावो द्वारा अभिव्यक्त और अनुभावों द्वारा वाचिक आंगिक एवं सात्त्विक अभिनयो द्वारा प्रतीति के योग्य होता है उसे भाव कहा जाता है -

''विभावेनाहृतो योऽर्थो ह्यनुभावस्तु गम्यते।

वागङ्गसत्वाभिनयैः रस भाव इति संज्ञितः।।'' (नाट्यशास्त्र ७/१)

कवि अपने काव्य कौशल से लोक चरितों की उद्भावना करता है और उन अन्तर्भावों को नट या अभिनेता रंगमंच पर प्रस्तुत करता हैं। अभिनेता अपने विभिन्न अभिनयों द्वारा कवि के अन्तर्व्यापारों को रंगमंच पर प्रस्तुत कर दर्शको या सामाजिकों के मन में उन्हें परिव्याप्त करता है, आस्वादन योग्य बनाता है। काव्यशास्त्र मे इसी को साधारणीकरण कहा जाता है।[१]

---

[१] भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण पृष्ठ सं. १७७ वाचस्पति गैरोला संवर्तिका प्रकाशन करलेबाग कालोनी, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण १९६७

रसास्वादन में सहृदय सामाजिकों की मनोदशा विचित्र हुआ करती है। इसमे विचित्रता इसलिए रहा करती है क्यो कि अन्य किसी भी अनुभव मे ऐसी बात नही हुआ करती। यह मनोदशा मन के सत्त्वोद्रेक की दशा है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि सामाजिक जन का वह मन ही 'सत्त्व' है जिसके रजोगुण और तमोगुण काव्यार्थपरिशीलन के द्वारा, अपने अपने प्रभावो के प्रकाशन में, असमर्थ हो जाया करते है। रजोमय मन चञ्चल हुआ करता है और तमोमय मन पर मोह संकट की छटा छायी रहती है। मन की चञ्चलता और मोहान्धता के निवारण के लिए योगीजन समाधि का सहारा लिया करते है। किन्तु काव्यरसिक किं वा नाट्यप्रेमी लोगों के मन का मोहसंकट काव्य अथवा नाट्य के भोग से ही भगाया जाया करता हैं। सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र व्याख्याकार आचार्य भट्टनायक ने ही 'रसास्वाद में मन की दशा' का एक मनोवैज्ञानिक निरूपण किया था। भट्टनायक के अनुसार काव्य- नाट्य की भावकताशक्ति तो सामाजिकों में 'सहृदयता' का संचार किया करती है और जब सहृदयता का सञ्चार होने लगता है तब सामाजिकों में वह भोग सञ्चरित होने लगता हैं जो एक विचित्र अनुभव, एक अलौकिक मानस अध्यवसाय है। यह नाट्यानन्द, यह रसभोग ऐसा है जो 'परब्रह्मस्वादसविध' हुआ करता है। इसके स्वरूप का यदि विश्लेषण किया जा सके तो यही कहा जा सकता है कि यह 'सत्वोद्रेक प्रकाशाननन्दमयनिजसंविद्विश्रान्तिसलक्षण' है, ऐसा है जिसे साक्षात् एक अहंपरामर्श कह सकते हैं। यह अहंपरामर्श ऐसा है जिसमें मन का सत्त्वगुण, रजस् और तमस् से अनुविद्ध होते हुए भी, रजस् और तमस् को दबाकर, अपने पूर्णस्वरूप में प्रकाशित रहता है मन का यह सत्त्वोद्रेक एकमात्र आनन्दात्मक आत्मसंवेदनस्वरूप है।

भट्टनायकसम्मत यह 'भोग', यह 'सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमय-निजसंविद्विश्रान्ति' रूप अनुभव अभिव्यक्तिवादी आचार्य अभिनवगुप्त के

अनुसार रसास्वादन की साधन सामग्री नहीं अपितु साक्षात् रस का प्राणभूत चमत्कार अथवा आत्मलय है। साहित्यदर्पणकार ने भी आचार्य अभिनव गुप्त के समान 'रस' को अखण्डस्वप्राकाशानन्दचिन्मय' कहा है अथवा यह 'रस' का अनुभव, सहृदय सामाजिको का साक्षात् आत्मसाक्षात्कार रूप है जिसके होते हुए मन की चञ्चलता किंवा मोहान्धता भाग जाया करती है।

स्वाभिमत- इस प्रकार स्थायी भाव जब विभाव अनुभाव व्यभिचारी भावो द्वारा अभिव्यंञ्जित होता है तो वह रस कहलाता है। यह रस अलौकिक होता है जिसे सहृदय ही अनुभूत करते है। यह अनुभूति साधारणीकरण द्वारा होती है। वस्तुतः जब अभिनेता रंगमंच पर अभिनय करता है तो सहृदय जन साधारणीकरण द्वारा उन भावो का अनुभव प्राप्त करते हैं। उस समय उनके हृदय मे रजस् और तमस् को अभिभूत करके सत्त्वगुण आविर्भूत हो जाता है। सत्त्व गुण प्रकाशमय है, आनन्दमय है अतः इसके द्वारा ज्ञेयान्तर का सम्पर्क नहीं होता है। सहृदय सामाजिकों को रसानुभूति करते समय ऐसा प्रतीत होता है। मानों वह रस साक्षात् रूप से हृदय में प्रविष्ट हो रहा है। इस प्रकार हम विलक्षण आस्वाद को रस कह सकते है।

रसों की संख्या तथा संज्ञा- आचार्य भरतमुनि के अनुसार रसों की संख्या निम्नलिखित हैं -

शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः

बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।[1]

नाट्य में स्वीकृत रस आठ हैं (१) शृङ्गार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) वीभत्स तथा (८) अद्भुत नाट्यदर्पण में निम्नलिखित रसों की विवेचना की गई है -

---

नाट्यशास्त्रम् ६/१६

"शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।

वीभत्साद्भुत-शान्ताश्च, रसाः सदिभर्नव स्मृताः।।"[1]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रस की संख्या -

"शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः

वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।।"[2]

आचार्य मम्मट के अनुसार -

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।[3]

वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।

अर्थात् शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक,बीभत्स और अद्भुत नामक (ये आठ) रस नाट्य में कहे गये हैं। आचार्य मम्मट ने शान्त रस को 'शान्तोऽपि नवमो रसः स्मृतः यहाँ नाट्य श्रव्य दोनों में शान्त रस की सत्ता स्वीकार की है।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि नाट्य काव्य में आठ ही रस होते हैं किन्तु श्रव्य के पाठ्य काव्यों में शान्त नामक नवम रस भी होता है।

इस तरह आठ ही रस है। इन आठों का स्रोत उद्गम स्थल शान्त है।

"शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघम् " भगवान परमशिव शान्त हैं शाश्वत हैं नित्य हैं प्रमा के बाहर है, अनघ निष्कलंक। "शान्ताकारं भुजगशयनम् इत्यादि सभी जगहों मे प्रभु परमात्मा को ही शान्त रस शब्द से कहा है और उसी को

---

१ नाट्यदर्पण (रामचन्द्र गुणचन्द्र) ३/१६५

२ सा.द. ३/१८२ पृ. २३०

३ का. प्र० ४/२९

रस शब्द से भी कहा है और अपने ग्रन्थ का रसगंगाधर नाम रखने का भी पण्डितराज का यही आशय है। अतः शान्त रस का अर्थ है परम शिव।

"ममैवांशो जीवलोके" इस गीतोक्ति के अनुसार जीव परमात्माका अंश हैं। अब सिद्ध करते है कि शान्त सबका उद्गमस्थल हैं। भरत ने इसी भाव को दृष्टि मे रखकर लिखा है -

न यत्र दुःखं न सुखं न द्वेषो नापि मत्सरः।

समः सर्वेषु भावेषु स शान्तः कथितो रसः।।

भावाः विकारा रत्याद्याः शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः।

विकारः प्रकृतेर्जातः पुनस्तत्रैव लीयते।।

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्तते।।

पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते।

एवं नवरसा दृष्टा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विताः।।

अर्थात् जहाँ न दुःख है न सुख है, न द्वेष है और न मत्सर है अर्थात् दूसरो की अच्छाई में बुराई निकालने की या देखने की भावना वहीं है और जो सब भावो मे समान है वह प्रसिद्ध शान्त रस है।[१]

नवो रसों के स्थायी भाव को जानने से पहले स्थायी भाव किसे कहते हैं? इस पर विचार करना आवश्यक है ' स्थायी भाव की परिभाषा करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में लिखा है कि 'स्थायीभाव उस भाव को कहते हैं, जो न तो किसी अनुकूल भाव से तिरोहित हुआ करता है और न

---

[१] नाट्यशास्त्र भरतमुनि प्रथमभागात्मकम् पृ. सं. ६८
सम्पा. साहित्याचार्य श्री मधुसदनशास्त्री एम.ए.

किसी प्रतिकूल भाव को दबा करता है। वह अन्त तक एक रस बना रहता है और उसमे रस के अनुकरण की मूल शक्ति निहित होती है।

"अविरुद्धा विरूद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।

अस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावस्थायीति सम्मतः।।"

साहित्यदर्पण में नवो रसों के आधार पर स्थायी भावों के ९ भेद निरूपित किये गये हैं -

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।

जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च।।[१]

अर्थात् शृङ्गार रस का स्थायी भाव रति, हास्य रस का हास, करुण रस का शोक, रौद्र रस का क्रोध, वीर रस का उत्साह, भयानक रस का स्थायी भाव भय, तथा बीभत्स का जुगुप्सा, अद्भुत रस का स्थायीभाव विस्मय तथा शान्त रस का स्थायी भाव शम होता है।

नवो रसों का संक्षिप्त परिचय -

शृङ्गार रस - शृङ्गार रस का स्वरूप 'शृङ्गार' शब्द की व्युत्पत्ति ('शृङ्गं त्रृच्छति' इति शृङ्गारः) से ही स्पष्ट हो जाता हैं। शृङ्ग का अभिप्राय है (कामुक-युगल के उत्पीडक) कामाविर्भाव का और शृङ्गार का अभिप्राय है उसका जो ' इस प्रकार कामोद्भेद से संभूत हो। इस रस के आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के ही प्रेमीजन हुआ करते हैं। इसके उद्दीपन विभाव चन्द्र-चन्द्रिका, चन्दनानुलेपन, भ्रमर झंकार आदि। इसके अनुभाव प्रेम को भृकुटि भाव होते हैं। रति इसका स्थायी भाव है। इसका वर्णश्याम है और अभिमानी देव विष्णुभगवान हैं। शृङ्गार रस दो प्रकार का होता है -

---

१ साहित्यदर्पण ३/१७५

(१) विप्रलम्भ (२) संभोग। विप्रलम्भ वह शृङ्गार रस है जिसमें नायक नायिका का परस्परानुराग तो प्रगाढ़ हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं होता। विप्रलम्भशृङ्गार ४ प्रकार का होता है (१) पूर्वराग-विप्रलम्भ (२) मान विप्रलम्भ (३) प्रवास विप्रलम्भ (४) करुण विप्रलम्भ।

(१) पूर्वराग विप्रलम्भ - पूर्व राग का अभिप्राय है रूप सौन्दर्य आदि के श्रवण अथवा दर्शन के परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका की उस दशा को जो कि उनके समागम के पहले की दशा हुआ करती है। रूप सौन्दर्य का वर्णन तो दूत, वन्दी सखी आदि के मुख से सम्भव है औरदर्शन संभव है इन्द्रजाल मे, चित्र में, स्वप्न अथवा साक्षात। इसमें १० काम दशायें संभव है (१) अभिलाष (२) चिन्ता (३) स्मृति (४) गुणकथन (५) उद्वेग (६) संप्रलाप (७) उन्माद (८) व्याधि (९) जडता (१०) मृति (मरण) इनमें 'अभिलाष' का अभिप्राय है- परस्पर स्पृहा चिन्ता कहते है जब परस्पर प्राप्ति के उपायो का चिन्तन किया जाय। 'उन्माद' कहते हैं जब जड़ चेतन में विवेक कर पाना सम्भव न हो। 'प्रलाप' का तात्पर्य है अटपट बातचीत जो कि मन के बहक जाने में स्वाभाविक है। दीर्घ निश्वास, पाण्डुता कृशता आदि का नाम 'व्याधि' है और जिसे जड़ता कहा जाता है वह शारीरिक किं वा मानसिक निश्चेष्टता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार में मरण का वर्णन निषिद्ध है क्यों कि इससे रस विच्छन्न हो जाता है। किन्तु यदि इसका वर्णन किया भी जाय तो केवल दो ही प्रकार से किया जा सकता है- (१) मरणासन्न दशा के रूप में और (२) मरण की हार्दिक अभिलाषा के रूप में। वैसे इस ढंग से कि मर कर भी शीघ्र पुर्नजीवन मिल जाय यहाँ मरण का वर्णन किया भी जा सकता है।

पूर्वराग विप्रलम्भ के सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि पूर्वराग भी इस प्रकार का हुआ करता है (१) नीलीराग जो बाहरी दिखावे में नहीं

दिखलाई पड़ता है। (२) कुसुम्भराग इसमें अनुराग बाहरी चमक दमक तो रखता है किन्तु हृदय से हट जाता है। (३) मञ्जिष्ठाराग वह अनुराग हृदय में भी होता है बाहरी दिखावे मे भी आता है।

(२) मान विप्रलम्भ - मान का अभिप्राय है कोप (प्रणय कोप)। इसके दो भेद है (१) प्रणयसमुद्भवः - इसमें अकारण कोप का भाव रहता है। (२) ईर्ष्यासमुद्भव किसी दूसरी प्रेमिका पर अपने प्रेमी की आसक्ति के देखने, सुनने अनुभव करने के कारण, नायिका का प्रेम-कोप

(३) प्रवास विप्रलम्भः -प्रवास का अभिप्राय है कार्यवश शापवश अथवा संभ्रमवश नायक के देशान्तर गमन। प्रवास विप्रलम्भ में नायिका की ये चेष्टाये हुआ करती है - अङ्गमालिन्य, वस्त्रमालिन्य, एकवेणी धारण, निश्वास उच्छ्वास, रोदन, भूमिपतन आदि-आदि।

इसमे १० कामदशायें स्वभाविक है - (१) अङ्गों का असौष्ठव, (२) सन्ताप (३) पाण्डुता (४) दुर्बलता (५) अरुचि (६) अधीरता (७) अनालम्बनता (८) तन्मयता (९) उन्माद (१०) मूर्च्छा। मरण की इसकी ११ वीं दशा है।

(४) करुण विप्रलम्भ -करुण विप्रलम्भ वह शृङ्गार प्रकार है जिसे प्रेमी और प्रेमिका में से किसी एक के दिवंगत हो जाने किन्तु पुर्नजीवित हो सकने की अवस्था में, जीवित बचे दूसरे के हृदय के शोक संवलित रतिभाव का अभिव्यञ्जन कहा गया है।

यह यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि प्रेमी और प्रेमिका में से किसी एक की आत्यन्तिक मृत्यु से मिलन की अत्यन्त निराशा अथवा परलोक में मिलन की आशा की अवस्था में जो रस अभिव्यङ्ग्य हो सकेगा, वह करुण रस ही होगा। न कि करुण विप्रलम्भ। संभोग शृङ्गार -

दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।

यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः।।[१]

अर्थात् परस्पर प्रेम-पगे नायक और नायिका के दर्शन परस्पर स्पर्शन आदि-आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस है वह 'संभोगशृङ्गार' है।

संभोगशृङ्गार के उद्दीपन-विभावो में सभी ऋतुयें, चन्द्र चन्द्रिका, सूर्य, ज्योत्सना, चन्द्र और सूर्य के उदय और अस्त जलविहार, प्रभात, मधुपान, रात्रिक्रीडा, चन्दनादि के अनुलेपन भूषण-धारण किं वा अन्यान्य स्वच्छ, सुन्दर तथा सुमधुर पदार्थ अन्तर्भूत हैं।

संभोग शृङ्गार के ये चार प्रकार भी प्रतिपादित किये गये है - (१) पूर्वरागानन्तर (२) मानानन्तर संभोग (३) प्रवासानन्तर संभोग (४) करुण विप्रलम्भानन्तर संभोग।

(२) हास्य रसः - शारदातनय ने हास्य रस पर अपना विचार प्रकट करते हुए सर्वप्रथम इस रस की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुई है इस पर चर्चा किया है। 'हास' धातु से हास पद की व्युत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए हास पद के साथ 'अप् तथा घञ्' प्रत्ययों की चर्चा की हैं अप् प्रत्ययान्त 'हस्' धातु से हास पद की रचना होती है। इस हस् को हास तक पहुँचने में पुनः घञ् प्रत्यय जैसे किसी प्रत्यय के सहयोग की अपेक्षा बनी रहती है घञ् प्रत्ययान्त हस् धातु से हास पद की व्युत्पत्ति का सीधा सम्बन्ध दिखायी देता हैं। यही कारण है कि शारदा तनय ने हास पद को घञन्त अथवा दोनों प्रत्ययों से व्युत्पन्न बताया है। आगे इनका कथन है- जिसके द्वारा हँसाया जाय वही हास्य है। 'हास्यतेऽसाविति यतस्तस्माद्धास्यस्य निर्वहः। विकृतांग वय, द्रव्य,

---

१ साहित्यदर्पण ३/२१०

भाषा, अलंकार एवं अन्य चेष्टामय कार्यो से लोक को हॅसाने के कारण यह हास्य कहलाता है।[१] आचार्य विश्वनाथ ने हास्यरस के सन्दर्भ में कहा है -

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्

हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रथमदेवतः।।२१४।।

विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।

तमत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।।२१५।।[२]

अर्थात् हास्य वह रस है जिसे 'हास' स्थायीभाव का अभिव्यञ्जन कहा जाया करता हैं। इसका आविर्भाव आकार विकृति, वागविकृति, वेषविकृति, चेष्टा विकृति किं वा अन्यान्य प्रकार की विकृतियों के वर्णन अथवा अभिनय से हुआ करता है। इसका वर्ण श्वेत है और इसके अधिष्ठातृदेव प्रथमगण है। इसका आलम्बन वह व्यक्ति है जिसमें आकार, वाणी और चेष्टा की विकृतियां दिखायी दिया करती हैं और जिसे देख-देख लोग हँसा करते हैं। ऐसे हास्यास्पद व्यक्ति की जो चेष्टाये हैं वे ही यहाँ 'उद्दीपन' का काम किया करती है। इसके अनुभाव वर्ग में नेत्र निमीलन, मुख-विकास आदि की गणना है। इसके जो व्यभिचारी भाव है वे हैं निद्रा, आलस्य अवहित्था आदि। इसके ६ भेद है-

(१) उत्तम प्रकृतिगत 'स्मित' हास्य (२) उत्तम प्रकृतिगत 'हसित' हास्य (३) मध्यम प्रकृतिगत 'विहसित' हास्य (४) मध्यम प्रकृतिगत 'अवहसित हास्य (५) अधम प्रकृतिगत 'अतिहसित' हास्य। आचार्य धनञ्जय ने हास्य रस का स्वरूप बताया है-

'विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।

---

१ भावप्रकाश, पृ. ४९

२ साहित्यदर्पण, ३/२१४-२१५, पृ. सं. २५१

हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः।[1]

अपने या दूसरे के विकार युक्त आकार, वचन तथा वेष आदि से जो हास होता है उसका परिपोष हास्य रस कहलाता है। इसे त्रिप्रकृति कहा गया है। इन्होने भी इसके छः भेदो का उल्लेख किया है।

(३) वीर रस - वीर पद की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए शारदातनय ने ज्ञार्थक तथा खण्डनार्थ 'रा' दाने तथा 'ला' दाने धातुओ का उल्लेख किया है। वीर रस की उत्पत्ति पर विचार करते हुए शारदातनय ने इसे ऋग्वेद से उत्पन्न बताया हैं। इसी प्रकार वासुकि एवं नारद के विचारों का उल्लेख करते हुए शारदातनय का कहना है कि रजोगुण विशिष्ट सत्त्ववृत्ति वाले अहंकार से जो विकार उत्पन्न होता है इसे वीर रस कहते हैं। व्यासोक्त मार्ग से त्रिपुरदाह के भावाभिनय प्रसंग से वीररस की उत्पत्ति हुई है। वीर रस तीन प्रकार का होता है (१) युद्धवीर (२) दयावीर (३) दानवीर।[2] वीर रस के सन्दर्भ में आचार्य धनञ्जय ने कहा है-

वीरः प्रतापविनया ध्यवसायसत्त्व-

मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः।

उत्साहभूः स च दयारणदानयोगात्

त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः।।[3]

अर्थात् प्रताप, विनय अध्यवसाय, सत्त्व, मोह, अविषाद नय, विस्मय पराक्रम इत्यादि (विभावों) के द्वारा होने वाले उत्साह (स्थायीभाव) से वीर

---

[1] दशरूपकम् ४/७५ पृ. सं. ३९१

[2] भावप्रकाश

[3] दशरूपकम् ४/६२

रस होता है। और वह दया युद्ध और दान अनुभावो के योग से इस प्रकार का होता है। उसमे मति गर्व, धृति, प्रहर्ष (व्यभिचारिभाव) हुआ करते हैं।

साहित्यदर्पणानुसार वीर रस का स्वरूप -

उत्तमप्रकृतिर्वीर . . . . समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ।।[१]

अर्थात् 'वीररस' वह है जिसे 'उत्साह' नामक स्थायीभाव का आस्वाद कहा गया हैं। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति है। इसका वर्ण स्वर्ण-वर्ण है और इसके देवता है महेन्द्र। इसके 'आलम्बन' विभाव विजेतव्य शत्रु आदि है और इन विजेतव्य शत्रु आदि की चेष्टाये इसके उद्दीपन विभाव हैं। युद्धादि की सामग्री किं वा अन्यान्य सहायक साधनों के अन्वेषण इसके 'अनुभाव' रूप है। धृति, मति, गर्व, स्मृति तर्क, रोमाञ्च आदि आदि इसके व्यभिचारी भाव है। इसके ये ४ भेद स्पष्ट है - (१) दानवीर (२) धर्मवीर (३) युद्धवीर (४) दयावीर। तात्पर्य यह है कि वीर रस ही दान धर्म-युद्ध और दयावीर रूप मे चतुर्विध प्रतीत हुआ करत्ता है।

(४) अद्भुतरसः - अद्भुत की उत्पत्ति अहंकारहीन रजोमिश्रित वीररस की आधार भूत स्थितियो से मानी जाती है। इस रस की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए शारदातनय का कहना है कि असुरो का वध करते हुए जब शंकर ने पार्वती की ओर देखते तथा मुस्कुराते हुए असुरों के असंख्य बाणों को एक ही बाण से जला दिया उस समय समस्त प्राणियों में अद्भुत भाव जागृत हुआ इसलिए वीररस से ही अद्भुत रस की उत्पत्ति मानी जाती है।[२]

अद्भुत रस के विषय में आचार्य धनञ्जय ने कहा है-

'अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः।।

---

१ साहित्यदर्पण ३/२३२ से २३४

२ दशरूपकम् ४/७८-७९

कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः।

हर्षावेग धृति प्राया भवन्ति व्यभिचारिणः।।

अर्थात् अलौकिक पदार्थों (के दर्शन श्रवण आदि) से उत्पन्न होने वाला विस्मय (स्थायीभाव) ही जिसका जीवन (आत्मा) है, वह अद्भुत रस हैं। साधुवाद अश्रु, कम्पन, प्रस्वेद, तथा गद्गद होना आदि उसके कार्य अनुभाव है, हर्ष आवेग और धृति इत्यादि व्यभिचारी भाव है। आचार्य विश्वनाथ ने अद्भुत रस के सन्दर्भ मे कहा है-

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो . . . . व्यभिचारिणः।।

अद्भुत वह रस है जिसे ' विस्मय' के स्थायी भाव का अभिव्यञ्जक कहा करते हैं इसका वर्ण पीत है। इसके देवता गन्धर्व हैं। इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु है। अलौकिक वस्तु का गुण-कीर्तन इसका उद्दीपन हैं। स्तम्भ, खेद, रोमाञ्च, गद्गदस्वर, संभ्रम, नेत्रविकास आदि-आदि इसके अनुभाव है। इसमें वितर्क, आवेग संभ्रम हर्ष आदि व्यभिचारी भाव परिपोषण का काम करते हैं।[१]

(५) रौद्ररसः - रौद्ररस का परिचय देते हुए शारदा तनय का कहना है कि स्वरगुण युक्त विभाव जब स्वानुकूल अन्य भावो के साथ स्थायीभाव में विद्यमान रहता है तब वह स्वकीय अभिनय के सहारे प्रेक्षकों का रजोगुण तथा तमोगुण युक्त मन अहंकार के साथ स्थायीभाव के जिस आस्वाद्य रूप का अनुभव करता है, उसे रौद्ररस कहा जाता है। इस रस में चेष्टा रजोगुण और तमोगुण विशिष्ट रहती है।[२]

---

१ साहित्यदर्पण ३/२४२ से २४४

२ भाव प्रकाशन- एक समालोचनात्मक अध्ययन पृ. सं. १४८

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रौद्ररस वह रस है जिसका स्थायी भाव क्रोध हुआ करता है। इसका वर्ण रक्त है और इसके देवता रूद्र है। इसमे आलम्बन से शत्रु का वर्णन किया जाया करता है, और शत्रु की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव का काम करती है। इसकी विशेष उद्दीप्ति मुष्टिप्रहार, भूपातन, भयंकर काटमार, शरीर विदारण संग्राम और संभ्रम आदि से हुआ करती है। इसके अनुभाव है भ्रूभङ्ग, ओष्ठनिदर्शन, बाहुस्फोटन, तर्जन स्वीकृत वीरकर्मवर्णन, शस्त्रोत्क्षेपण, उग्रता, आवेग, रोमाञ्च, स्वेद कम्प, मद, आक्षेप, क्रूरदृष्टि आदि। इसके व्यभिचारीभावों में मोह अमर्ष आदि का स्थान है।[१]

(६) करुण रस - करुण रस का परिचय देते हुए शारदातनय का कथन है कि जब रूक्ष गुण युक्त विभाव अन्य सहयोगी भावों के साथ शोक नामक स्थायीभाव मे विद्यमान रहते हैं, तब स्वानुरूप अभिनय के सहयोग से चित्तावस्था तमोरूढ जड़ात्मक मन जिस विकार की आस्वाद्य स्थिति का अनुभव करता है उसे करुण रस कहा जाता है।

शारदातनय ने करुण रस की उत्पत्ति पर विचार किया है। तदनुसार यह एक अप्रधान रस है जिसकी स्थिति रौद्ररस पर निर्भर है क्यो कि इसकी उत्पत्ति रौद्र से ही होती है। दोनो में अन्तर केवल यही है कि रौद्र में रजोगुण तथा अहंकार की स्थिति विद्यमान रहती है, किन्तु करुण में इन दोनों ही स्थितियो का अभाव रहता है। व्यासोक्त मार्ग से भी करुण रस की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है इसके अनुसार वीरभद्र द्वारा यज्ञविध्वंस की स्थिति में देवताओ पर जो विकट प्रहार किया गया उससे रुदन, क्रन्दन की ध्वनि व्याप्त हो उठी, इसी ने सखियों के साथ-साथ पार्वती के मन में करुण भाव

---

[१] साहित्यदर्पण

को जागृत किया। इस विवेचनानुसार भी रौद्र से ही करुण रस की उत्पत्ति बतायी गयी है। यमराज को करुण रस का देवता बताया गया है।

साहित्यदर्पणकार के अनुसार 'करुणरस' वह रस है जिसे शोकरूप स्थायीभाव का पूर्णाभिव्यञ्जन कहा गया है। इसका आविर्भाव इष्टनाश और अनिष्ट प्राप्ति से संभव है। इसका वर्ण कपोतवर्ण है और यम इसके देवता माने गये हैं। इसका 'स्थायी' भाव ' शोक' है। इसका जो आलम्बन है वह विनष्ट व्यक्ति है। इसके उद्दीपन वर्ग में दाहकर्म आदि की गणना है दैवनिन्दन, भूमिपतन, क्रन्दन वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निश्वास, स्तम्भ प्रलपन आदि आदि इसके अनुभाव माने गये हैं। साथ ही साथ निर्वेद, मोह अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद जड़ता, उन्माद और चिन्ता आदि उसके व्यभिचारी भाव है।[१]

(६) वीभत्स रस - बीभत्स का परिचय देते हुए आपका कथन है कि निन्दित गुणयुक्त विभाव जब स्थायी भाव में अन्य सहयोगी भावों के साथ विद्यमान रहते हुए सामाजिकों के बुद्ध्यवस्थ एवं असत्त्वयुक्त चिदन्वयी मन में विकार उत्पन्न करता है तो तत्कालीन भाव के आस्वाद्य रूप को वीभत्स कहा जाता है?

शारदातनय ने बीभत्स की उत्पत्ति पर विचार करते हुए इसे यजुर्वेद से उत्पन्न बताया है और तम एवं सत्व युक्त मन से बाह्यार्थक का आश्रय लेकर बीभत्स रस को उत्पन्न होने वाला सिद्ध किया है। व्यासोक्त मार्ग से वीभत्स की उत्पत्ति पर विचार करते हुए प्रस्तुत ग्रन्थकार का कहना है कि ब्रह्मसभा में नटों ने जिस समय शंकर के कल्पना मार्ग का अभिनय किया उस समय बृहत् सभा में नटों ने जिस समय शंकर के कल्पान्त कर्म का अभिनय किया उस समय ब्रह्मा के उत्तरमुख से भारती वृत्ति के सहारे बीभत्स रस उत्पन्न

---

[१] साहित्यदर्पण ३/२२२-२२४

हुआ।[१] बीभत्स के दो प्रकार होते हैं। परिस्थितियो के आधार पर इसका निधरिण होता है। (१) रूधिरादिक क्षोमकारक वातावरण में अनुभूत होता है (२) विष्ठादिक उद्वेगकारक वातावरण मे बोधगम्य होता है। कुछ विद्वान वाक्, काय तथा मन के आधार पर इसके तीन प्रकार मानते हैं। वैसे बीभत्स का मानस रूप ही उसकी स्वाभाविक दशा को व्यक्त करता है। आङ्गिक तो कृत्रिम माना जाता है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार 'बीभत्स' वह रस है जिसे 'जुगुप्सा' के स्थायीभाव का अभिव्यञ्जन माना जाया करता है। इसका वर्ण नील है। इसके देवता महाकाल हैं। इसके आलम्बन दुर्गन्धमय मांस रक्त, भेद आदि है। इन्ही दुर्गन्धमय मास के कीड़े पड़ने आदि को इसका उद्दीपन विभाव माना जाता हैं। निष्ठीवन, आस्यवलन, नेत्र संकोच आदि इनके अनुभाव है। मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि इसके व्यभिचारी भाव है।[२]

(८) भयानक रस - भयानक रस का परिचयात्मक वर्णन करते हुए शारदातनय ने बीभत्स के कर्म को ही भयानक बताया है। इस सन्दर्भ में भयानक को बीभत्स का आश्रित रस बताया गया हैं। इस रस का परिचय देते हुए शारदातनय ने कहा है कि जब विकृत नामक विभाव अपने उपयोगी अन्य भावों के सहयोग से स्थायीभाव में विद्यमान रहता हुआ सामाजिकों के चित्तावस्था तमोऽन्वयी सत्त्वान्वित मन को आस्वाद्य स्थिति में उपस्थित करता है तब आस्वाद्य-भाव को भयानक रस माना जाता है।

---

१ बधेर्धातोस्सनन्तस्य .. . . . बीभत्स इति संज्ञया।

भा प द्वि. अधि पृ. ५९ पं. १४-१८

साहित्यदर्पण ३/२३९-२४१

जुगुप्सास्थायिभावास्तु ....मरणादयः।

रस विषयक दृष्टियों पर विचार करते हुए शारदातनय ने आरोचक, अनुत्सेक एवं अविद्ध तथा क्विद्ध आदि बीभत्स की दृष्टियो की भयानक की दृष्टियो के साथ एक रूपता बताते हुए उपस्थित किया है।

भयानक रस का विभाव विकृत नामक विभाव को माना गया है। भयानक के आलम्बन विभाव की चर्चा के प्रसंग में भयंकर अरण्य के प्रविष्ट तथा महासंग्राम में विचरण करने वाले एवं गुरुजनो के प्रति अपराध करने वाले को आलम्बन विभाव रूप में यह स्वीकार किया गया है। भयानक-रस विषयक अनुभावों तथा सात्त्विकभावो की स्थिति अन्य रसों की स्थितियों से पूर्णतः साम्य भाव से उपस्थित की गई है। भय को भयानक का स्थायी भाव माना जाता है भयानक रस का संचारीभाव शंका, निर्वेद चिन्ता, जड़ता, ग्लानि, दीनता, आवेग, मद, उन्माद, विषाद, व्याधि, मोह, अपस्मृति, त्रास आलस्य बीच-बीच में स्तम्भ, कम्प, रोमाञ्च, स्वेद आदि का होना तथा विवर्णता मृत्यु भय, गद्गद आदि स्थितियों का उल्लेख किया है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ' भयानक' वह रस है जिसे भयरूप स्थायी भाव का आस्वाद कहा जाता हैं। इसका वर्ण कृष्ण है और इसके देवता काल है। काव्य कोविदों ने स्त्री किं वा नीच प्रकृति के लोगों को इसका आश्रय माना है इसका आलम्बन भयोत्पादक पदार्थ है और ऐसे भयोत्पादक पदार्थो की भीषण चेष्टायें इसके उद्दीपन विभाव का काम करती हैं। विवर्णता, गद्गदभाषण, प्रलय, स्वेद, रोमाञ्च, कम्प, इतस्ततः अवलोकन आदि-आदि इसके अनुभावहै। इसके व्यभिचारीभावों में जुगुप्सा, आवेग, संमोह, संजाह ग्लानि, दीनता, शङ्का, अपस्मार, संभ्रम, मरण आदि आते हैं।[१]

आचार्य धनञ्जयानुसार भयानक रस की परिभाषा निम्नलिखित है-

---

१ साहित्यदर्पण ३/२३५-२३८

विकृतिस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानकः।

सर्वाङ्गवेपथुस्वेदशोषवैवर्ण्यलक्षणः।।

दैन्यसम्भ्रमसंमोहत्रासादिस्तत्सहोदरः।।[१]

अर्थात् विकृत शब्द अथवा सत्त्व (पराक्रम, प्राणी पिशाच आदि) आदि विभावो से उत्पन्न होने वाला भय नामक स्थायी भाव ही (परिपुष्ट होकर) भयानक रस होता हैं। सारे शरीर का कॉपना, पसीना छूटना, मूँह सूख जाना, रंग फीका पड़ जाना (वैवर्व्य) आदि इसके चिह्न (कार्य अनुभाव) होते हैं। दीनता, सम्भ्रम, सम्मोह, त्रास आदि इसके व्यभिचारी भाव है।

(९) शान्त रस - श्रव्य या पाठ्य काव्यों में शान्त नामक नवम रस का भी प्रयोग किया जाता है। चूँकि शान्त रस का अभिनय नहीं किया जा सकता। इसलिए नाट्य में शान्त रस का प्रयोग नहीं होता है। आचार्य भरतमुनि शान्त को अतिरिक्त रस मानते हैं। आचार्य धनञ्जय भी कहते हैं कि सूक्ष्म तथा अतीत और सभी वस्तुओं को शब्द द्वारा प्रतिपादित किया जा सकता है अतः शान्त रस भी काव्य का विषय होता है, इस तथ्य का निषेध नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह कहा गया है-

शमप्रकर्षोऽनिर्वाच्यो मुदितादेस्तदात्मता।[२]

अर्थात् यदि शम नामक स्थायी भाव का प्रकर्ष शान्त रस होता है तो वह अनिर्वचनीय है। किन्तु जो मुदिता आदि हैं उनके स्वरूप में ही होते हैं।

आचार्य मम्मट भी शान्त रस को स्वीकार करते हैं-

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।[१]

---

१ दशरूपकम् ४/८० पृ. सं. ३९५

२ दशरूपकम् ४/४५

अर्थात् जिसका निर्वेद स्थायीभाव है वह शान्त रस भी नवम रस है।

आचार्य विश्वनाथ ने शान्तरस का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार से वर्णित किया है -

शान्तः शमस्थायिभाव . . . . निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः।

अर्थात् शान्त वह रस है जो कि 'शम' रूप स्थायी भाव का आस्वाद हुआ करता हैं। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति है। इसका वर्ण कुन्द श्वेत अथवा चन्द्रश्वेत है। इसके देवता श्री भगवान् नारायण हैं। अनित्यता किं वा दुःखमयता आदि के कारण समस्त सांसारिक विषयो की निःसारता का ज्ञान अथवा साक्षात् परमात्मस्वरूप का ज्ञान ही इसका आलम्बन विभाव है। इसके उद्दीपन हैं पवित्र आश्रम, भगवान की लीला भूमियाँ तीर्थ स्थान, रम्य कानन, साधु संतों के संग आदि। रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव हैं और इसके व्यभिचारी भाव है निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति, जीवदया आदि।[२]

काव्यानुशासनकार ने 'शम' को शान्त का स्थायीभाव मानते हैं -

'वैराग्यादिविभावो यमाद्यनुभावो धृत्यादिव्यभिचारी शमः शान्तः' वैराग्यसंसारभीरुतातत्त्वज्ञानवीतराग- परिशीलनपरमेश्वरानुग्रहादिविभावो यमनियमाध्यात्मशास्त्रचिन्तनाद्यनुभावो धृतिस्मृतिनिर्वेदमत्यादिव्यभिचारी तृष्णाक्षयरूपः शमः स्थायिभावश्चर्वणां प्राप्तः शान्तो रसः।[३]

नाट्यदर्पणकार के भी अनुसार शम ही शान्त का स्थायी भाव है -

---

१ काव्यप्रकाशः ४/४७ पृ. सं. १५७

२ साहित्यदर्पण ३/२४५-२४८

३ काव्यानुशासन २/१७

संसारमय-वैराग्य-तत्त्व-शास्त्रविमर्शनः।

शान्तोऽभिनयनं तस्य क्षमा ध्यानोपकारतः।।

देव-मनुष्य नारक. . . . . शान्तोरसो भवति।[१]

इस प्रकार साहित्यदर्पणकार, काव्यानुशासनकार तथा नाट्यदर्पणकार 'शम' को शान्त रस का स्थायीभाव मानते है। अतः सभी आचार्यो ने शान्त रस नामक नवम रस को स्वीकार किया है।

रस भावों का निरूपण

रस के सभी प्रकारों का वर्णन करने के पश्चात् उनके भाव तत्त्वों पर यहाँ संक्षेप में विचार किया गया है -

विभाव - आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र (४/२) में विभाव की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'ज्ञान का विषयीभूत होकर जो भावों का ज्ञान कराये और उन्हें परिपुष्ट करे, वे विभाव कहे जाते है-

'ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत्।'

आचार्य भरत ने विभाव का अर्थ विज्ञान बताया है (विभावो विज्ञानार्थः ७/४) यह विज्ञान जिसे विभाव कहा गया है, स्थायी एवं व्यभिचारी भावों का हेतु हैं जिसके द्वारा स्थायी एवं व्यभिचारी भाव वाचिक आदि अभिनयों के माध्यम से विभावित होते है, अर्थात् जो विशेष रूप से जाने जाते है, उन्हे विभाव कहा जाता है। नाट्य में विषयवस्तु के अनेकानेक अर्थ आंगिक आदि अभिनयो पर अवलम्बित होते है उनको विभावना व्यापार द्वारा व्यक्त किया

---

१ नाट्यदर्पण तृतीय विवेक।

जाता है, अर्थात् सहृदय सामाजिक की प्रतीति के योग्य बनाया जाता है। इसलिए उन्हे विभाव कहा जाता है।

बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रयाः।

अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः।। (नाट्यशास्त्र ७/४)

इसप्रकार रसानुभूति के कारणों को विभाव कहा जाता है।[१] शारदातनय ने विभाव के आठ ऐसे गुणो का उल्लेख किया है जिनमे से प्रत्येक का भिन्न-भिन्न रसो के साथ पृथक्- पृथक् सम्बन्ध निरूपित किया गया है। ललित गुण का सर्वप्रथम वर्णन है जिसे शृङ्गार का विभाव कहा जाता है।[२]

आचार्य विश्वनाथ ने विभाव की परिभाषा देते हुए कहा है-

'रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः।'

अर्थात् लोक मे जो-जो पदार्थ लौकिक रत्यादि भावो के उद्बोधक हुआ करते हैं वे ही काव्य नाट्य में निविष्ट होने पर 'विभाव' कहे जाया करते हैं।

तात्पर्य यह है कि लोक-जीवन के रामादि पुरुषों के हृदय में रति हास-शोकादि भावों के उद्बोधक के रूप में जो सीतादिरूप कारण है, वे ही काव्य नाट्य में निविष्ट होने पर, विभाव कहे जाते हैं। काव्य नाट्य में समर्पित सीतादि को इसलिए विभाव कहा करते हैं क्यों कि 'इन्हीं के द्वारा सहृदय सामाजिकों की अनादिरत्यादि वासना रूप में अंकुरित होने से समर्थ बनायी जाया करती है।'[३]

दशरूपककार ने विभाव का यह अभिप्राय प्रकाशित किया है-

---

१ भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण पृ. सं. १७१-१७२

२ भावप्रकाशन- एक समालोचनात्मक अध्ययन ११९ (शारदातनय)

३ साहित्यदर्पण ३/ पृ. सं. १३५-१३६

'ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत् '

रस के उद्भावको मे विभाव वह है जो स्वयं जाना हुआ होकर (स्थायी) भाव को पुष्ट करता है।[१] यह विभाव-मीमांसा रस-चर्वणा के साधन रूप में बाद के नाट्याचार्यो ने स्वीकृत की है। दशरूपककार ने इसीलिए कहा है- काव्य नाट्य के क्षेत्र मे जनकतनयादि विशेषताओं से शून्य, वस्तुतः साधारणीकृत सीतादि को 'विभाव' कहा करते हैं। ऐसा इसलिए क्यों कि इसी से सामाजिक हृदय मे रत्यादि वासनायें स्फुरित हुआ करती है।[२] नाट्यदर्पणकार की भी यही विभाव दृष्टि है-

'वासनात्मतया स्थितं स्थायिनं रसत्वेन भवन्तं विभावयन्ति, आविर्भावनाविशेषेण प्रयोजयन्ति इत्यालम्बनोद्दीपनरूपा ललनोद्यानादयो विभावाः,[३] विभाव के दो प्रकार होते है। (१) आलम्बन और (२) उद्दीपन। जिसको आलम्बन करके या आश्रय मान कर रस की उत्पत्ति या निष्पत्ति होती है, उसे आलम्बन विभाव और जिसके द्वारा रति आदि स्थायी भावों व उद्दीपन होता है, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। उदाहरणार्थ शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के मन में रति की उत्पत्ति होती है, उक्त दोनों को देखकर सामाजिको के मन में भी रस की उत्पत्ति होती हैं। यहाँ शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों, शृङ्गार रस के आश्रय है और चाँदनी, प्राकृतिक वातावरण तथा एकान्त आदि दोनों की रति के उद्दीपक होने के कारण उद्दीपन विभाव है।[४]

---

१ दशरूपकम् ४/२ पृ. सं. २५८

२ ननु च सामाजिकाश्रयेषु . . . . कश्चिदाश्रयमात्रदायिनीः विदधति?
दशरूपकम् चतुर्थः प्रकाशः पृ. सं. ३८५

३ नाट्यदर्पण तृतीय विवेक

४ भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण

साहित्यदर्पण मे भी इसके दो भेदो का उल्लेख किया गया है -

'आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।'

इन दोनो भेदो में आलम्बन विभाव नायकादि को कहते हैं क्यों कि इन्हीं के सहारे, इन्ही के साथ, साधारणीकरण होने के कारण सामाजिकों के हृदय में रस का सञ्चार हुआ करता है।[१] उद्दीपन विभाव के सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ ने कहा है- उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।'[२] भिन्न-भिन्न रसो के भिन्न-भिन्न उद्दीपन विभाव हैं जो रस को उद्दीप्त किया करते हैं- उन्हे उद्दीपन विभाव कहते हैं। वैसे रस के उद्दीपन विभाव का अभिप्राय है उन-उन पदार्थों का जो सामाजिक-हृदय में उद्बुद्ध रत्यादि भाव का उद्दीपन किया करते है।

रसार्णवसुधाकर'कार ने निम्न पदार्थो को 'तटस्थ'उद्दीपन विभाव कहा है-

तटस्थाश्चन्द्रिका धारागृहचन्द्रोदयावपि।।

कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदाः।

लतामण्डप-भूगेह दीर्घिकाजलदारवाः।।

प्रसादगर्भसंगीतक्रीडादिसरिदादयः।

एवमूह्य यथाकालमुपभोगोरोपयोगिनः।।[३]

---

१ साहित्यदर्पण ३/२९ पृ. सं. १३७

२ साहित्यदर्पण ३/१३१ पृ. सं. १९९

३ रसार्णवसुधाकर प्रथम विलास।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ये निम्नोदिष्ट पदार्थ उद्दीपन-विभाव वर्ग में आते है - नायक-नायिका आदि की विविध आङ्गिक चेष्टाये, समुचित देश, उपयुक्त समय आदि।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि रस को उत्पन्न करने मे विभाव का बहुत महत्त्वपूर्णस्थान है। साधारणतया मनुष्य में जो रति आदि भाव होते हैं उसे विभाव साधारणीकरण द्वारा रसास्वादन कराता है। इसकी अभिव्यक्ति वाचिक, आङ्गिक आदि अभिनयो द्वारा होती है। अर्थात् जिसके द्वारा सहृदयो के रति भाव जागृत होते है वही हेतु विभाव होता है। उदाहरण के लिए जैसे नायक के मन मे जो रति आदि भाव है वह नायिका को देखकर उद्बुद्ध हो रहा है अतः यहाँ नायिका को विभाव कहा जायेगा।

इस प्रकार आलम्बन जो कि इसका पहला भेद वर्णित है इसी का आश्रय लेकर जो सहृदयजनों के हृदय में रति भाव वासना रूप में होता है वह अविर्भूत होता हैं तथा उद्दीपन विभाव द्वारा वह और भी प्रदीप्त होता है।

अनुभाव - रस निष्पत्ति में स्थायी भाव रस के अभ्यन्तर कारण हैं। इसी प्रकार आलम्बन उद्दीपन विभाव उसके बाह्य कारण है। किन्तु अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव उस अभ्यन्तर रस निष्पत्ति या रसानुभूति से उत्पन्न शारीरिक तथा मानसिक व्यापार हैं। नाट्यशास्त्र (७/४) में कहा गया है कि 'वाचिक तथा आंगिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायी भाव की अभ्यन्तर अनुभूति का जो बाह्य रूप में अनुभव कराता है, उसे अनुभाव कहते हैं-

वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते।

शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः।।

आचार्य भरत ने अनुभाव की परिभाषा करते हुए (नाट्यशास्त्र ७/५) लिखा है कि 'जिनके द्वारा वाचिक आंगिक और सात्विक अभिनय अनुभावित होते हैं, उन्हे अनुभाव कहते हैं (अनुभाव्यतेऽनेन वागङ्गसत्त्वकृतोऽभिनय

इति)' शरीर के विभिन्न अङ्गों तथा उपाङ्गों की चेष्टाओं द्वारा किये जाने वाले अभिनय से अनुभावों का सम्बन्ध स्थापित करते हुए नाट्यशास्त्र (४/३) में कहा गया है कि वे आन्तरिक भावो के सूचक है इसलिए वहॉ भ्रू-कटाक्ष आदि विकारो को अनुभाव की संज्ञा दी गयी है।[1]

'अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः।'

आचार्य भरत ने विभावों तथा अनुभावों को लोकप्रसिद्ध माना है, क्यो कि वे मानव स्वभाव के अंग है, लोक मे उनकी स्थिति स्वाभाविक है। विज्ञजनो का कहना है (नाट्यशास्त्र ७/६) कि ' विभाव तथा अनुभाव लोक प्रवृत्ति के अनुसार होते हैं। लोक जैसा व्यवहार करता है, वे तदानुसार उसका अनुकरण करते हैं इसलिए लोक में प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही नाट्य में उनका प्रदर्शन होता है।

लोकस्वभावसंसिद्धा लोकयात्रानुगामिनः।

अनुभावा विभावाश्च ज्ञेयास्त्वाभिनये बुधैः।।

अनुभाव वस्तुतः रसानुभूति की बाह्य अभिव्यंजना के साधन है और उनमें शारीरिक व्यापार की प्रमुखता होती हैं। अभिनेता कृत्रिम रूप मे इन अनुभावो का अभिनय करता हैं। अनुकार्य दुष्यन्त आदि की अन्तस्थ रसानुभूति की बाह्य अभिव्यक्ति अनुभावो के रूप में होती हैं। रसानुभूति के अनन्तर उत्पन्न होने के कारण उन्हें अनुभाव नाम दिया गया है (अनु पश्चात् भवन्ति इत्यनुभावाः)।[2]

साहित्यदर्पणकार अनुभाव का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए कहते है -

'उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।

---

१ भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण पृ. सं. १७२

२ भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनयदर्पण पृ. सं. १७२-१७३

अनुभाव का संक्षिप्त अभिप्राय नाट्यदर्पणकार ने इस पंक्ति में अपने ही ढंग से स्पष्ट किया है -

'अनु लिङ्गनिश्चयात् पश्चात् भावयन्ति गमयन्ति लिङ्गिनं रसमित्यनुभावाः स्तम्भादयः।'[१]

अनुभाव का स्वरूप आचार्य धनञ्जय ने इस प्रकार से प्रस्तुत किया है-

'अनुभावो विकारस्तु भावसूचनात्मकः।'[२]

अर्थात् (रति आदि) भावो को सूचित करने वाला विकार (शरीर आदि का परिवर्तन) अनुभाव है।

अनुभावों का तात्पर्य मनोगत भावों के साक्षात् अभिव्यञ्जक उपादानों जैसे कि भ्रविक्षेप आदि से है। मनोगत भावों के ये साक्षात् अभिव्यञ्जक उपादान इसलिए 'अनुभाव' कहे जाते हैं क्यों कि रत्यादिरूप मनोगत भावों के उद्बोधन मे ही इनकी उत्पत्ति सम्भव है। भ्रूविक्षेप आदि का अनुभाव होना यह सिद्ध करता है कि इनके द्वारा हेतुभूत रत्यादि भावों की अभिव्यक्ति होती है। अनुभावों की चार श्रेणियॉ है -

(१) चित्तारम्भक, जैसे कि भाव-हाव-हेला आदि

(२) गात्रारम्भक, जैसे कि लीला, विलास, विच्छित्ति आदि।

(३) वागारम्भक, जैसे कि आलाप, विलाप, संलाप आदि

(४) दृध्यारंभक, जैसे कि रीति, वृत्ति आदि।[३]

---

१ नाट्यदर्पण तृतीय विवेक

२ दशरूपकम् ४/३ पृ. सं. २६१

३ साहित्यदर्पण ३ पृ. सं. २०१

उपर्युक्त अनुभाव के प्रसंग में सात्त्विक भाव का प्रसङ्ग आया है, अतः संक्षेप मे सात्त्विक भाव क्या और कौन है? इसका निर्देश प्रस्तुत है -

आचार्य धनञ्जय ने आठ सात्त्विक भावों का उल्लेख किया है -

स्तम्भप्रलयरोमाञ्चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू।।५।।

अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ, स्तम्भोऽस्मिन्निष्क्रियाङ्गता।

प्रलयो नष्टसंज्ञत्वम्, शेषाः सुव्यक्तलक्षणाः।।[१]

साहित्यदर्पणकार ने भी सात्त्विकभावों का उल्लेख किया है -

(१) स्तम्भ (२) स्वेद (३) रोमाञ्च (४) स्वरभङ्ग (५) वेपथु (६) वैवर्ण्य (७) प्रलय।

इन आठों सात्त्विक भावों का स्वरूप निम्नलिखित है -

(१) **स्तम्भ** - भय, हर्ष, रोग आदि के कारण मन किं वा शरीर के व्यापारों का रुक जाना स्तम्भ है।

(२) **स्वेद** - रति प्रसङ्ग, आतप (धूप), परिश्रम आदि के कारण शरीर से निकल पड़ने वाले जल को (पसीना) 'स्वेद' कहते है

(३) **रोमाञ्च** - हर्ष, विस्मय, भय आदि के कारण रोंगटे के खड़े होने को रोमाञ्च कहा जाता है।

(४) **स्वरभङ्ग** - मद्यपान, हर्ष, पीड़ा आदि के कारण गले के रूँध जाने विकृत हो जाने का नाम स्वरभङ्ग है।

(५) **वेपथु** - अनुराग, द्वेष, परिश्रम आदि के कारण व शरीर की कंपकंपी को वेपथु कहा जाता है।

---

१ दशरूपकम् ४,५,६

(६) **वैवर्ण्य** - विषाद, मद, रोष आदि के कारण उत्पन्न हुए वर्णविकार का नाम वैवर्ण्य है।

(७) **अश्रु** - दुःख, प्रहर्ष आदि के कारण उत्पन्न होने वाले नेत्र जल को अश्रु कहते हैं।

(८) **प्रलय** - सुख अथवा दुःख के अतिरेक मे चेष्टाशून्यता किं वा ज्ञानशून्यता प्रलय है।[१]

इस प्रकार अन्ततः हम कह सकते हैं कि रत्यादि भाव जो मनुष्य के अन्दर निहित है वह जब बाह्य जगत में वाणी या अङ्गों के अभिनय द्वारा प्रकट करते है तो उसे हम अनुभाव की संज्ञा दे सकते हैं। उद्दीपन और आलम्बन विभाव से रत्यादि भाव हृदय मे उद्बुद्ध हुआ करता है। परन्तु वही रत्यादि भाव जब आङ्गिक चेष्टाओं द्वारा लोक जीवन मे काव्य-नाटक में प्रकाशित होता है तो उसे हम अनुभाव का स्वरूप प्रदान करते है। इनकी स्थिति स्वभाविक मानी जाती है। अनुभाव में शारीरिक व्यापार जैसे कटाक्ष आदि की प्रमुखता मानी जाती है। अनुभाव रसानुभूति कराने मे साधन के रूप में होते है।

व्यभिचारीभाव - आचार्य विश्वनाथ व्यभिचारीभाव का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहते है-

विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणः।

स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नस्त्रयस्त्रिंशच्च तद्विदाः।।[२]

अर्थात् वे भाव व्यभिचारी भाव कहे जाते है जो (विभाव और अनुभाव की अपेक्षा) विशेष उत्कटता किं वा अनुकूलता से (वासनारूप से सामाजिक-

---

१ साहित्यदर्पण ३/१३५ से १३९ तक।

२ साहित्यदर्पण ३/१४०

हृदय में सदा विराजमान) रत्यादि स्थायी भावों को रसास्वादन में परिणत किया करते है तथा जिन्हे स्थायीभावो में समुद्र मे बुदबुद की भॉति उन्मज्जित किं वा निमज्जित होते हुए देखा जाया करता है।

व्यभिचारीभाव की अभिनव भारती-सम्मत व्याख्या आचार्य हेमचन्द्र के इन शब्दो में है-

'भावयन्ति चित्तवृत्तयः . . . . . .उत्साहशक्तिमानित्यत्र हेतुप्रश्नमाहुः।'[१]

तात्पर्य यह है कि रत्यादि अथवा निर्वेदादि चित्तवृत्तियो को ही भाव कहा जाता हैं, चित्तवृत्तियों को 'भाव' इसलिए कहा जाता है क्यों कि कवि कला किं वा नाट्यकला की वर्णना और अङ्कन शक्ति इन्हे 'आस्वाद्य बना दिया करती हैं। लोकजीवन में ये चित्तवृत्तियॉ रस अथवा आस्वादरूप में अनुभव का विषय नहीं बनती है। यह कलाजीवन की महिमा है जिसके कारण ये रस रूप से प्रतीत हैं। इन चित्तवृत्तियों को इस दृष्टि से भी 'भाव' कहते है क्योकि काव्य-नाट्य के क्षेत्र में सामाजिकों का हृदय इनसे व्याप्त हो जाता है। अब इन चित्तवृत्तियो मे स्थिर और अस्थिर रूप की द्विविध चित्तवृत्तियाँ हैं। स्थिर चित्तवृत्तियाँ जैसे कि रति आदि ऐसी हैं जो प्राणिमात्र के हृदय में, जन्म से ही संस्कार रूप में विराजमान रहा करती हैं। 'अब व्यभिचारीभाव' उन अस्थिर चित्तवृत्तियों का, कला-जगत में प्रसिद्ध, नाम है जो स्थायी चित्तवृत्ति सूत्र मे पिरोयी प्रतीत हुआ करती हैं। कभी ये चित्तवृत्तियाँ उदित होती है, कभी अस्त होती है। अनन्तर वैचित्र्य के साथ इनमे अविर्भाव-तिरोभाव की ऑखमिचौनी चला करती हैं। इनके कारण स्थायी चित्तवृत्तियाँ चित्र-विचित्र लगा करती हैं। स्थायी चित्तवृत्तियों में डूबना-उतराना इनकी विशेषता है। इसीलिए इन्हें व्यभिचारीभाव कहा गया है। 'ग्लानि' व्यभिचारी भाव हैं कोई

---

[१] **हेमचन्द्र का काव्यानुशासन २/१८**

कहे यह ग्लान लग रहा है तो पूछा जाता है- ऐसा क्यो? ग्लानि के हेतु का यह प्रश्न इस बात का प्रमाण है 'ग्लानि' अस्थिर' मनो भाव हैं किन्तु 'राम उत्साह की शक्ति से भरपूर है' ऐसा कहने पर कोई नहीं पूंछता ऐसा क्यो? इससे स्पष्ट है कि 'उत्साह' एक स्थिर मनोभाव है।

दशरूपककार व्यभिचारीभाव का लक्षण निम्न प्रकार से देते हैं -

'विशेषादाभिमुख्येम चरन्ती व्यभिचारिणः।

स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।।'[१]

अर्थात् विविध प्रकार से अभिमुख चलने वाले भाव व्यभिचारी भाव कहलाते है, जो स्थायी भाव से इसी प्रकार प्रकट होकर विलीन होते रहते है, जिस प्रकार सागर में तरङ्गें।

भरत के नाट्यशास्त्र में व्यभिचारी भाव की यह व्युत्पत्ति दी गयी है -

''विविधमाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः।'[२]

आचार्य विश्वनाथ ने भी व्यभिचारीभाव के ३३ भेदों का उल्लेख किया है - (१) निर्वेद (२) आवेग (३) दैन्य (४) श्रम (५) मद (६) जड़ता (७) औग्र्य (८) मोह (९) विबोध (१०) स्वप्न (११) अपस्मार (१२) गर्व (१३) मरण (१४) अलसता (१५) अमर्ष (१६) निद्रा (१७) अवहित्था (१८) औत्सुक्य (१९) उन्माद (२०) शङ्का (२१) स्मृति (२२) मति (२३) व्याधि (२४) त्रास (२५) लज्जा (२६) हर्ष (२७) असूया (२८) विषाद

---

[१] दशरूपकम् ४/७ पृ. सं. २६७

[२] **नाट्यशास्त्र सप्तम अध्याय**

(२९) धृति (३०) चपलता (३१) ग्लानि (३२) चिन्ता और (३३) वितर्क।[1]

व्यभिचारीभाव पद की व्युत्पत्ति - व्यभिचारीपद की निष्पत्ति करते हुए बताया गया है कि वि एवं अभि उपसर्गो के गति तथा संचालन अर्थ में चर् धातुसे व्यभिचारीपद निष्पन्न होता है। इस दृष्टि से विभिन्न रसो मे अनुकूलता के साथ उन्मुख या संचरित होने वाले भावों को व्यभिचारी कहा जाता है। ये व्यभिचारी विभिन्न अनुभावो से युक्त आंगिक वाचिक एवं सात्त्विक अभिनयों द्वारा स्थायीभावों को रस रूप में व्यक्त करते है अर्थात् स्थायी भावो को रस तक ले जाते हैं। इसी आधार पर आचार्य भरत ने उनकी परिभाषा (नाट्यशास्त्र ७/१४२-१७१) में कहा है कि 'जो रस में नानारूप से विचरण करते है और रसो को पुष्ट कर आस्वादन योग्य बनाते हैं उन्हे व्यभिचारी भाव कहते हैं **(विविध अभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः वागाङ्गसत्त्वोपेताः प्रयोगे रसान्नयन्तीति व्यभिचारिणः)।**

वे उसी प्रकार स्थायी भावो को रसों तक ले जाते है, जैसे लोक प्रचलित परम्परा के अनुसार 'सूर्य अमुक दिन या अमुक नक्षत्र को प्राप्त कराता या ले जाता है। इस दृष्टान्त मे यद्यपि यह नहीं कहा गया है कि सूर्य दिन या नक्षत्र को अपनी बाजुओ या कन्धों पर उठाकर ले जाता है, फिर भी लोक में प्रचलित है। जैसे सूर्य या नक्षत्र या दिन को धारण करता है या ले जाता है उसी प्रकार व्यभिचारीभाव स्थायीभावों को धारण करते या रस तक ले जाते हैं। वे स्थायीभावों को रस रूप में भावित करते हैं। इसलिए उन्हें व्यभिचारी कहा गया है।[2]

---

[1] साहित्यदर्पण ३/१४१ पृ. सं. २०५

[2] भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण पृ. सं. १७५

रस का अधिष्ठान क्या है ? (धनञ्जय और धनिक का रस विषयक दृष्टिकोण)

संस्कृत काव्यशास्त्र में इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है कि रस का अधिष्ठान क्या है? रस का आस्वाद्य कोई रसिक व्यक्ति करता है; वह रस उसके ही अन्दर होता है या कहीं अन्यत्र या तो मूलपात्र मे हो सकता है या उसका अभिनय करने वाले नर मे। धनिक का इस विषय में मत यह है कि रस रसिक मे ही विद्यमान रहता है : क्योकि वही आस्वादन करता हैं परगत वस्तु का कोई आस्वादन नहीं कर सकता। रस को हम मूलपात्रगत नहीं मान सकते। इसमें कई कारण हैं- एक तो शमादि मूल पात्र जिनका अभिनय किया जाता है, इस समय विद्यमान नहीं होते। वे अतीत की वस्तु हो चुके होते है अतः उनके भाव का बन जाता है। यद्यपि भर्तृहरि जी ने कहा है कि शब्द मे बिम्ब बनाने की शक्ति होती है। इस प्रकार वर्णना के आधार पर हमारे अन्तः करणों में रामादि के बिम्ब का निर्माण हो सकता है। पर बिम्ब विभावादि रूपता के सम्पादन मे ही कारण होता। आस्वाद प्रवर्तक नही हो सकता। कारण रूपता मे उसका उपयोग हो सकता है, स्वरूप सम्पादन में नही। दूसरी बात यह है कि कवि ऐतिहासिक राम में रसोत्पादन के लिए काव्यरचना नहीं करता; किन्तु उसका उद्देश्य सहृदयों को आनन्द देता है। सहृदयो को रससम्बद्ध आनन्द की ही प्राप्ति हो सकती हैं अतः रस को स्वगत या हृदयगत ही मानना चाहिए। एक अन्य तर्क यह है कि यदि अनुकार्यगत रस माना जायेगा तो जिस प्रकार दो व्यक्तियों को एक देखकर यह प्रतीति हो जाती है कि अमुक व्यक्ति[१] में परस्पर रति है अथवा उन व्यक्तियों को खुले में प्रेम प्रदर्शन करते देखकर लज्जा का अनुभव होता या

---

१ भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच- डॉ० राम सागर त्रिपाठी। प्रथम संस्करण १९७१ प्रकाशक- अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।

ईर्ष्या होती है अथवा स्वयं रसकान्त से अनुराग उत्पन्न हो जाता है या उनसे द्वेष हो जाता है, यही बात काव्य में होने लगेगी। किन्तु काव्य में ऐसा होता नहीं। उसमे दो व्यक्तियो के प्रेम का अभिनय देखकर या उसका वर्णन पढ़कर सहृदय के हृदय में स्वतः आनन्द उत्पन्न हो जाता है जो लोक मे नहीं होता। अतः रस अनुकार्यगत नहीं होते। व्यंग्य वहीं वस्तु होती है जो अन्य प्रकार से विद्यमान सिद्ध की जा सके। उदाहरण के लिए दीपक से घड़ा व्यक्त होता है। रस पहले से राम इत्यादि में नही माना जाता हैं अतः रस की व्यंजना व्यापार के द्वारा प्रतीति सिद्ध नहीं की जा सकती। अब नर्तक की रसाधिष्ठानता का प्रश्न शेष रह जाता है। इस विषय मे धनिक का मत है कि नर्तक को रस का अधिष्ठान मानने में कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु उस समय वह रसास्वादन परिशीलक के रूप में करेगा, नर्तक के रूप में नहीं।

(ख) जैनमेघदूतम् में रस-विमर्श

आचार्य मेरूतुङ्ग ने जैनमेघदूतम् में मुख्य रूप से दो ही रसों का प्रयोग किया है (१) शृङ्गार रस तथा इसके दोनों भेदों (क) विप्रलम्भ शृङ्गार (ख) संयोग शृङ्गार रस (२) शान्त रस। इन्होंने जैनमेघदूतम् में रस योजना की सफल निष्पत्ति के लिए रस के सभी तत्त्वों का कुशलता से समावेश किया है। सर्वप्रथम हम शृङ्गार रस को लेते हैं। शृङ्गार का अभिप्राय है जो कामोद्भेद से संभूत हो। जैनमेघदूतम् की नायिका राजीमती कामोद्भेद से संभूत है, अतः इसे हम शृङ्गार रस की कौटि मे रख सकते है। शृङ्गार रस के आलम्बन के विषय मे कहा गया है कि प्रायः उत्तम प्रकृति के प्रेमी जन हुआ करते है। हम जैनमेघदूतम् मे भी आचार्य मेरूतुङ्ग ने आलम्बन के रूप मे नायक श्री नेमि एवं नायिका राजीमती का वर्णन किया है जो उत्तम प्रकृति के हैं। शृङ्गार रस ३ के विभाव के विषय में कहा गया है कि इसके अन्तर्गत चन्द्र-चन्द्रिका, चन्दानुलेपन भ्रमर झंकार आदि होते हैं, आचार्य मेरूतुङ्ग जी ने भी उद्दीपन विभाव के रूप में चन्द्रमा, चन्दनानुलेपन, प्राकृतिक वातावरण इत्यादि का प्रयोग जैनमेघदूतम् में किया है। प्राकृतिक वातावरण से तो सम्पूर्ण काव्य ही भरा हुआ है जो कि राजीमती के हृदय में स्थित रति भाव को और भी उद्दीप्त करता है। उदाहरणार्थ -

''सद्ध्रीचीभिः स्खलितक्वचनन्यासमाशूपनीतैः

स्फीतैस्तैस्तै मलयजजलार्द्रादि शीतोपचारैः।

प्रत्यावृत्ते कथमपि ततश्चेतने दत्तकान्ता

कुष्ठोत्कष्ठं नवजलमुचं सानिदद्ध्यौ च दध्यौ।।''[१]

---

[१] जैनमेघदूतम् १/३

अर्थात् सखियों के द्वारा शोक गद-गद वचनो के साथ शीघ्र ही किये गये लोक-प्रसिद्ध चन्दन-जलार्द्र वस्त्रादि प्रभूत-शीतोपचार के द्वारा किसी प्रकार चेतन के लौटने पर राजीमती ने पति के हृदय मे तीव्र उत्कण्ठा जगाने वाले मेघ वर्षाकाल में नये-नये ऊँचे मेघो को देखकर युवतियों के मन में अपने प्रिय के प्रति तथा युवको के मन में अपनी प्रिया के प्रति सहजतया उत्कण्ठा उत्पन्न हो जाती है- को देखा और सोचा

अतः उपर्युक्त श्लोक मे उद्दीपन विभाव का अवलोकन होता है। यहॉ उद्दीपन विभाव के रूप मे मेघ युवक युवतियों के हृदय में स्थित रतिभाव को जागृत करके अपने प्रेमी तथा अपनी प्रेयसी केप्रति उत्कण्ठा उत्पन्न करता है।

आचार्य भरतमुनि ने अनुभाव की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'जिनके द्वारा वाचिक आंगिक और सात्त्विक अभिनय अनुभावित होते हैं उसे अनुभाव कहते है। जैनमेघदूतम् में वाचिक आंगिक तथा सात्त्विक अभिनय अनुभावित होते है-

नीलेनीले शितिलपनयन् वर्षयत्यश्रुवर्षन्

गर्जत्यस्मिन् पटु कटु रटन् विद्ययत्यौष्ण्यमिर्यन् ।

वर्षास्वेवं प्रभवति शुचे विप्रलब्धोऽम्बुवाहे

वामावर्गः प्रकृतिकुहनः स्पर्धतेऽनेन युक्तम् ।।[१]

अर्थात् वर्षाकाल में स्वभाव से ईर्ष्यालु विरहिणी स्त्रियाँ अपने शोक को उत्पन्न करने वाले मेघ से जो ईष्या करती हैं वह ठीक ही है (क्योंकि) मेघ के नील तुल्य श्यामवर्ण वाला होने पर वे भी मुख को श्याम बना लेती हैं। जब मेघ बरसता है तब वे भी अश्रु बरसाती है, जब वह गरजता है तो विरहिणी

---

१ जैनमेघदूतम् १/६

चातुर्य पूर्ण कटु विलाप करती है और जब बिजली चमकती है तो वे भी उष्णनिःश्वास छोड़ती हैं।

उपर्युक्त श्लोक मे अनुभाव की ४ श्रेणियों में से 'वागारम्भक' नामक श्रेणी का प्रयोग है जिसमें आलाप विलाप संलाप आदि पाया जाता है। यहाँ भी मेघ जब गरजता है तो विरहिणी विलाप करती हैं। अश्रु आदि सात्त्विक भाव है जो अनुभाव के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ विरहिणी स्त्रियों मे मुख का श्यामवर्ण हो जाना तथा उष्ण निःश्वास आदि छोड़ना इत्यादि उनके हृदय मे उद्बुद्ध रत्यादि भावो को बाहर प्रकाशित करने वाले अङ्गादि व्यापार हैं जो अनुभाव की संज्ञा प्राप्त करते है। जैनमेघदूतम् मे 'प्रलय' नामक सात्त्विक भाव भी प्राप्त होते है, प्रलय का तात्पर्य है ज्ञानशून्यता। ज्ञानशून्यता का परिचय तो राजीमती के कथनो मे मिलता है, वह अचेतन मेघ को अपना दूत बनाती है यह उसकी ज्ञानशून्यता ही कही जायेगी। ज्ञानशून्यता का दर्शन निम्न लिखित श्लोक में होता है-

अर्धोक्तायाः स्वचरिततते: स्वप्नवत्साऽथ सद्याः

संजानव्यप्यनहितधीर्व्युष्टसुप्तोत्थितेव।

संपश्यन्ती विरहविवशा शून्यमाशाः कदाशा-

पाशामुक्ता मुदिरमुदितं पर्यभाषिष्ट भूयः।।[१]

अर्थात् इसके बाद प्रातः काल सोकर उठी हुई सी, असावधान बुद्धि वाली विरह से व्याकुल कुत्सित आशा बन्धन से बाँधी हुई तथा सभी दिशाओ को शून्य सी देखती हुई राजीमती अपनी आधी कही हुई कथा का स्मरण करती हुई मेघ से पुनः बोली।

---

१ जैनमेघदतम् २/२६

व्यभिचारी भाव के सन्दर्भ में विचार करने पर हम देखते है कि व्यभिचारी भावों के ३३ भेदों में से ग्लानि नामक व्यभिचारी भाव की बहुलता मिलती है। ग्लानि का तात्पर्य है शरीर वाणी और मन के व्यापारो मे ग्लापन (दुर्बलता)। ग्लानि का उदाहरण अनेक स्थानोंपर प्राप्त होता है उदाहरणार्थ राजमती श्री नेमि के वियोग मे बार-बार मुर्छित हो जाती है अपने को धिक्कारती हुई कहती है कि हे हृदय तुम दो टुकड़े क्यों नही हो जाते। अन्ततः श्री नेमि के वियोग से राजीमती को इतना अधिक ग्लानि है कि वह आत्महत्या करने को तुल जाती है। इसप्रकार आचार्य मेरूतुङ्ग ने रस के सभी तत्त्वों को सफलता पूर्वक समाहित करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार जब हम विप्रलम्भ शृङ्गार रस के प्रकारो पर विचार करते है तो हम देखते है कि पूर्वराग का कुछ अंश काव्य के प्रारम्भ मे मिलता है। जब राजीमती श्री नेमि का गवाक्ष से साक्षात् दर्शन करती है, वह उन पर अनुरक्त हो जाती है यह समागम से पूर्व की स्थिति है। परन्तु यह अनुरक्त भाव केवल राजीमती में है, श्री नेमि तो पूर्णतः राग शून्य है।

आचार्य मेरूतुङ्ग ने विप्रलम्भ शृङ्गार रस के अन्तिम प्रकार करुण का भी प्रयोग अपने काव्य में किया है। जैनमेघदूतम् काव्य का प्रारम्भ ही वियोग की अतिकारूणिक स्थिति से होता है। नायक श्रीनेमि विवाह-भोज के लिए काटे जाने वाले पशुओं का करुण क्रन्दन सुनकर विरक्त हो जाते हैं और विवाह स्थल से तत्काल ही वापस होकर पर्वतश्रेष्ठ पवित्र रैवतक पर आत्मशान्ति एवं अध्यात्मिक सुख प्राप्ति हेतु चले जाते हैं। श्री नेमि के वैराग्य धारणा की सूचना पाते ही कामपीड़िता राजीमती मूर्छित हो जाती है।[१] विप्रलम्भ शृङ्गार रस में १० कामदशाएँ होती हैं- उनमें अभिलाप, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संप्रलाप उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृति (-) इत्यादि।

---

१ जैनमेघदूतम् १/२

उसमे 'उन्माद' जिसमें कि जड़ चेतन मे विवेक नहीं हो पाता है यही जड़ चेतन के विवेक का अभाव राजीमती में है तभी तो वे अचेतन मेघ को श्री नेमि के पास दूत बनाकर भेजती है। 'व्याधि' नामक कामभावना का भी वर्णन है इसके अन्तर्गत दीर्घनिःश्वास पाण्डुता, कृशता आदि आते है। इस काव्य मे भी दीर्घ निःश्वास, पाण्डुता, कृशता का वर्णन है -

ध्यात्वैवं सा . . . . मुग्धावाचेत्युवाच।[१]

अर्थात् नवीन मेघों से सिक्त भूमि की तरह निःश्वासों को छोड़ती हुई तथा मद के आवेग के कारण युक्तायुक्त का विचार न करती हुई राजीमती, मेघमाला जिस प्रकार प्रभूत जल को बरसाती है उसी प्रकार अश्रुओ की धरावृष्टि करती हुई दुःख से अति दीन होकर पूर्व मे कहे गये के अनुसार ध्यान करके मधुर वाणी में मेघ से बोली।

इस प्रकार निःश्वास आदि को व्याधि नामक कामभावना में समाहित कर सकते हैं। युक्तायुक्त का विचार न कर पाना एक प्रकार की मानसिक निःश्चेष्टा है अतः इसे हम जड़ता नामक कामभावना में समाहित कर सकते हैं।

आचार्य विश्वनाथ आदि के अनुसार विप्रलम्भ शृङ्गार रस के अन्तर्गत मरण का वर्णन निषिद्ध होता है क्यों कि इससे रस विच्छिन्न हो जाता हैं यदि इसका वर्णन किया भी जाता है तो मरणासन्न के रूप में या मरण की हार्दिक अभिलाषा के रूप में। अतः आचार्य मेरुतुङ्ग ने अपने इस काव्य में राजीमती के मरण की अभिलाषा को प्रकट किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शृङ्गार रस के दोनों पक्षों संयोग तथा विप्रलम्भ शृङ्गार रस का प्रयोग करते समय उनमें विद्यमान सभी विशेषताओं का समावेश किया गया है जिससे कहीं भी रस अवच्छिन्न नहीं हुआ है।

---

[१] जैनमेघदतम् १/९

जैनमेघदूतम् मे आचार्य मेरुतुङ्ग ने शृङ्गार के दोनो पक्षो का वर्णन करने के पश्चात उनको शान्त रस में समाविष्ट कर दिया है। जैन मेघदूतम् मे अभिव्यञ्जित शान्त रस की सुधाधारा रागद्वेष से ग्रस्त मानव समाज को शाश्वत आनन्द प्रदान करने की क्षमता रखता है। काव्य के प्रारम्भ मे ही श्री नेमि के रागशून्यता का दर्शन होता है जिसमें वे राजीमती को त्यागकर पर्वतश्रेष्ठ पवित्र रैवतक को स्वीकार करते है-

कश्चित्कान्तामविषयसुखानीच्छुरत्यन्तधीमा-

. .. . .रैवतकं स्वीचकार।।[१]

उपर्युक्त श्लोक मे शान्त रस की झलक आती है।

शान्त रस की अभिव्यञ्जना करती हुई राजीमती की सखियाँ श्री नेमि के अध्यात्मपरक विशेषताओं का वर्णन करती हैं और राजीमती को सम्यग् ज्ञान रूपी शस्त्र से महामोह रूपी मल्ल को मार डालने को कहती हैं-

रागाम्भोधौ ललितललनाचाटुवाग्भङ्गिभिर्यः

... . . . स्प्रष्टुमप्यक्षमास्ताः।।[२]

सखियों की इस प्रकार के वचनों को सुनकर राजीमती श्री नेमि के समीप जाकर दीक्षा ग्रहण कर लेती है-

सध्रीचीनां वचनरचनामेवमाकर्ण्य साऽथो

पत्युर्ध्यानादवहितमतिस्तन्मयत्वं तथाऽऽपत्।

सङ्ख्याताहैरधिगतमहानन्दसर्वस्वसद्मा

तस्माद्भेजेऽनुपमिति यथा शाश्वती सौख्यलक्ष्मीम् ।।[१]

---

[१] जैनमेघदतम् १/१

[२] जैनमेघदतम् ४/४०

अर्थात् सखियो की इसप्रकार की वचन रचना को सुनकर राजीमती पति का ध्यान करती हुई तन्मय हो गई। इसके बाद केवल ज्ञान कोप्राप्त भगवान नेमि के समीप जाकर दीक्षा ग्रहण कर पति के ध्यान मे लीन होकर स्वामी की तरह ही रागद्वेष आदि से युक्त होकर कुछ ही दिनों में वह परमानन्द के सर्वस्व मोक्ष कोप्राप्त कर अनुपम तथा अनन्त सुख को प्राप्त करती है।

जैनमेघदतम् में भी शान्तरस के प्रयोग में शम नामक स्थायी भाव है, इस रस का आश्रय राजीमती एवं २२वें तीर्थकर श्री नेमिनाथ हैं पशु हिंसा आदि के कारण उत्पन्न दुःख से संसार के प्रति निःसारता ही आलम्बन विभाव है और उद्दीपन विभाव पवित्र रैवतक पर्वत है, व्यभिचारीभाव निर्वेद, जीवदया आदि है।

इस प्रकार शृङ्गार रस का पर्यवसान तो शान्त रस में होता है परन्तु इसे हम इस काव्य का अङ्गी रस का रूप नहीं दे सके काव्य का अङ्गीरस विप्रलम्भ शृङ्गार रस है।

इन दोनों रसों के अतिरिक्त कवि ने काव्य के द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण और श्री नेमि की भुजबल की परीक्षा मे वीर रस का भी प्रयोग किया है। श्री नेमि के वाम हस्त से स्पर्श करते ही श्रीकृष्ण की सुदृढ़ की हुई भुजलता कन्धे तक स्वयं झुक जाती है -

हस्ते सव्ये स्पृशति किमपि स्वामिनोऽनेकपस्या।
नंस्तास्कन्धं हरिभुजलता सा स्वयं स्तब्धितापि।।[२]

---

[१] जैनमेघदूतम् ४/४२
[२] जैनमेघदूतम् २/४४

पञ्चमोऽध्यायः

काव्य शिल्प

भाषा, शैली (गुण रीतियाँ), अलंकार, छन्द

काव्य शिल्प

१- जैनमेघदूतम् की भाषा- आचार्य मेरूतुङ्ग का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वह भाषा को जिस प्रकार से चाहते हैं उस प्रकार से नचा सकते है। इनकी भाषा सबल पुष्ट और सुसंगठित है। इसमे उच्चकोटि की कल्पनाओं के साथ ही भाव गाम्भीर्य भी है। कल्पना की ऊँची उड़ान से भाषा चमत्कृत हो गई है। भाषा और शब्दकोश पर असाधरण अधिकार होने के कारण उनकी भाषा में असाधरण मनोरमता प्रौढ़ता, प्रांजलता और परिष्कार है। कवि ने भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। काव्य में मुख्यतः गौड़ी और वेदर्भी रीतियॉ ही विद्यमान है। माधुर्य गुण से अभिव्यञ्जना कर कवि ने भाषा को माधुर्य गुण से परिपूर्ण कर दिया है। ओज गुण की रमणीय छटा का दर्शन श्री नेमिनाथ द्वारा शंख बजाने और श्री कृष्ण के साथ भुजबल की परीक्षा के समय होता है। प्रसाद गुण का भी दर्शन किञ्चित स्थलो पर हो जाता है।

कवि की भाषा में रस का अजस्र प्रवाह दृष्टिगत होता है। कवि ने भावों के अनुकूल रसों का प्रयोग किया है। कवि ने शृङ्गार के दोनों पक्षों संयोग एवं विप्रलम्भ तथा वीर, शान्त रसों का भी प्रयोग किया है।

भाषा में ध्वनि का चमत्कार भी देखने योग्य है। काव्य का प्रारम्भिक श्लोक ध्वनि से पूरित मिलता है -

कश्चित्कान्तामविषयसुखानीच्छुरत्यन्त धीमा-

नेनोवृत्तिं त्रिभुवनगुरूः स्वैरमुज्झाञ्चकार।

दानं दत्वासुरतरुरिवात्युच्च धामरुरुक्षुः

पुण्यं पृथ्वीधरवरमथो रैवतं स्वीचकार[१]।।

एक और उदाहरण देखिए जिसमें विरहिणी स्त्रियो के होने वाली काम व्यथा ध्वनि रूप में अभिव्याञ्जित हो रही है -

नीलेनीले शितिलपनयन् वर्षयत्यश्रुवर्षन्

गर्जत्यस्मिन् पटु कटु रटन् विद्ययत्यौष्ण्यमिर्यन् ।

वर्षास्वेवं प्रभवति शुचे विप्रलब्धोऽम्बुवाहे

वाम वर्गः प्रकृतिकुहनः स्पर्धतेऽनेन युक्तम् [२]।

अर्थात् कवि का व्याकरण, दर्शन मनोविज्ञान, ध्वनि विज्ञान, काव्य शास्त्र आदि विषयों पर अधिकार है। कवि ने दुःखाकर्त्तुम्[३] और सुखाकुर्वतः दो नवीन व्याकरण का प्रयोग किया है। इसी प्रकार कुछ नवीन ऐसे शब्दों की रचना की है जिनका भाव समझ पाना अत्यधिक कठिन है यथा शुङ्गिका[४] (२/१५) प्राभृत[५], उलूल ध्वनि[६], क्षैरेयी[७] आदि ऐसे शब्द है जिनका अर्थ सरलता पूर्वक निकाल पाना अति दुश्शक है। कुछ ऐसे भी शब्द है जिनका कवि ने नवीन अर्थ निकाला है जैसे बर्कर[८] का क्रीड़ा से, हल्लीसकं[९] का स्त्रियो का नृत्य विशेष से और उषा[१०] को रात्रि के समान कहा है। ऐसा प्रतीत

---

१ जैनमेघदूतम् १/१
२ जैनमेघदूतम् १/६
३ जैनमेघदूतम् ३/१७
४ जैनमेघदूतम् २/१५
५ जैनमेघदूतम् २/३७
६ जैनमेघदूतम् ३/२८
७ जैनमेघदूतम् ४/१५
८ जैनमेघदूतम् २/१२
९ जैनमेघदूतम् २/१६
१० जैनमेघदूतम् ४/३४

होता है कि कवि ने इन सभी का प्रयोग अपने भाषा अधिकार को प्रदर्शित करने के लिए ही किया है। कवि का भाषा पर असाधरण अधिकार है। इन नवीन प्रयोगो द्वारा भाषा मे दुरूहता तो आयी है परन्तु उनमें भावाभिव्यक्त की कमी नहीं है। कवि द्वारा यत्र-तत्र सरल भाषा का भी प्रयोग दर्शनीय है -

पूरं पूरं सुरभिसलिलैः स्वर्णशृङ्गाणि रङ्गात्

सारङ्गाक्ष्यः स्मितकृतममुं सर्वतोऽप्यभ्यषिञ्चन् ।

धारा धाराधर। सरलगास्ताश्च वारामपाराः

स्मारादोऽङ्गप्रसृमरशरासारसारा विरेजुः[१]।।

अर्थात् सारङ्गाक्षी उन रमणियो ने अपनी स्वर्णिम पिचकारियो को सुरभित जलो के रङ्गो से भर कर मुस्कुराते हुए उन भगवान श्री नेमि को सराबोर कर दिया। हे मेघ। सीधी जाती हुई जल की वे अपार धाराएँ भगवान श्री नेमि के अङ्गो की ओर चलाए गये काम के वाणों की वृष्टि सी शोभित हो रही थी।

कवि ने काव्य में अनेक सुभाषितों का प्रयोग किया है जिससे भाषा और भी चारूतर बन गयी है। यथा '-सन्तः प्रायः परहितकृते नाद्रियन्ते स्वमर्थम् [२]। सारग्रन्थान् कविरिव सुधीः सद्गुणं सूक्तिजातम्'[३]। 'नैतन्नोद्यं विमलरुचयः प्रायशो हि श्वयन्ति, क्षीयन्ते चाभ्यधिगततमः स्तोमभावः स्वभावात्'[४] आदि इन सुभाषितों से भाषा को अलङ्कत किया है।

इस प्रकार आचार्य मेरूतुङ्ग प्रकाण्ड विद्वान कवि है उनकी विद्वत्ता काव्य में पद-पद पर परिलक्षित होती है। भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के

---

१ जैनमेघदूतम् २/४५

२ जैनमेघदूतम् ३/१८

३ जैनमेघदूतम् २/३८

४ जैनमेघदूतम् २/३१

कारण आचार्य ने अनेक नवीन शब्दों की रचना की है। लेकिन अप्रचलित शब्दो के प्रयोग से भाषा क्लिष्ट हो गई है। क्लिष्ट होते हुए भी भाषा भाव की अभिव्यक्ति करने मे समर्थ है। हम कह सकते है कि कवि की भाषा क्लिष्ट होते हुए भी मधुर है।

शैली

जैनमेघदूतम् की शैली की समालोचना से पूर्व शैली की प्रमुख घटक तत्त्वो की परिचयात्मक व्याख्या आवश्यक है। शैली के प्रमुख घटक तत्त्व- गुण, रीति, अलंकार योजना, छन्द आदि है।

इस प्रसंग मे सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय दृष्टि से गुण निरूपण किया जा रहा है -

गुणनिरूपण

वामन आदि आचार्यो के अनुसार 'काव्य के शोभा जनक धर्मों को गुण कहते है 'काव्यशोभायाः कत्तारो धर्मा गुणः'[१]। गुण रस के धर्म है- यह सिद्धान्त ध्वनि दार्शनिको का एक परिनिष्ठित काव्य सिद्धान्त है। आचार्य आनन्दवर्धन ने स्पष्ट कहा है-

''तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः।

अङ्गाश्रितास्त्वलंकारा मन्तव्याः कटकादिवत् ।।''

ये तमर्थ रसादिलक्षणमङ्गिनं सन्तमवलम्बन्ते ते गुणाः शौर्यादिवत् वाच्यवाचकलक्षणान्यङ्गानि ये पुनस्तदाश्रितास्तेऽलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत।[२]

आचार्य मम्मट ने भी गुणों को रस धर्म बतलाया है। इसी के आधार पर वे गुणो के तीन भेद स्वीकार करते हैः- माधुर्य, ओज, और प्रसाद।[३] यद्यपि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के सत्रहवें अध्याय में दस गुणों का विवरण मिलता हैः-

---

१ काव्यप्रकाश ८/पृ. सं. ४१४

२ ध्वन्यालोक द्वितीय उद्योत

३ माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश (काव्य प्रकाश ८/६८ पृ. सं. ४/१६)

'श्लेष प्रसादः समता समाधिः माधुर्ययोजः पदसौकुमार्यम् ।

अर्थस्य च व्यक्तिरूदारता च कान्तिश्च काव्यस्य रूपं गुणा दर्शते।।[१]

अर्थात श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्ति ये दस गुण हैं।

वामन ने भी दस गुणों की व्याख्या की है। आचार्य मम्मट का मत है कि काव्य मे माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीन ही गुण होते है। वामन आदि के कहे हुए दस गुण नही होते है। कारण यह है कि उनमें के कुछ गुण इन्हीं तीन के अन्तर्गत है तथा कुछ दोषों के अभाव मात्र है और उनमें से कुछ तो गुण पद के अधिकारी ही नही है क्योकिं किसी रूप में या किसी उदाहरण मे वे दोष रूप में ही दृष्टिगोचर होते है।[२]

साहित्य दर्पणकार ने भी प्राचीन आलङ्कारिको के द्वारा शब्द गुण के रूप मे गिनाये गये गुणों को ओज गुण में समावेश किया है। साहित्यदर्पणकार ने भी गुणो के तीन प्रकारों को ही स्वीकार किया हैः- 'माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा।'

इनमे माधुर्य गुण वह है जिसे एक ऐसा आह्लाद अथवा आनन्द कह सकते है जिसका स्वरूप सहृदय हृदय की 'द्रुति' अथवा 'द्रवीभूतता' है -

'चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।[३]

काव्य प्रकाशकार के अनुसार चित्त की द्रुति का कारण जो अह्लादकता अर्थात आनन्द स्वरूपता है वही माधुर्य है और वह शृङ्गार रस में होता है- 'अह्लादकत्वं माधुर्य शृङ्गारे द्रुतिकारणम् ।[४]

---

१ भरतमुनि नाट्य शास्त्र १७/९६

२ काव्यप्रकाश ८/९६ पृ. ४३०

३ साहित्यदर्पण ८/ पृ. ६४३

४ काव्य प्रकाश ८/६८ पृ. ४१६

यह माधुर्य गुण करूण विप्रलम्भ शृङ्गार तथा शान्त रस में उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर हो जाता है क्योंकि क्रमशः अत्यधिक द्रुति का कारण होता है-

करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ।

ध्वनि दार्शनिक आनन्द वर्धन की ये पंक्तियाँ भी काव्य प्रकाशकार की मान्यता को हो प्रमाणित करती है -[१]

शृङ्गारे विप्रलम्भाख्ये करूणे च प्रकर्षवत्

माधुर्यमार्दतां याति यतस्तत्राधिकं मनः।[२]

आचार्य विश्वनाथ ने भी माधुर्य गुण के क्षेत्र का निरूपण करते हुए कहा है कि यह माधुर्य संभोग शृङ्गार, करूण रस, विप्रलम्भ शृङ्गार और शान्त रस मे अनुगत रहा करता है और इनमे भी उत्तरोत्तर मधुर लगा करता है- 'संभोगे करूणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्।[३]'

इस प्रकार से यह 'माधुर्य' सम्भोग शृङ्गार की अपेक्षा विप्रलम्भ शृङ्गार में और विप्रलम्भ शृङ्गार की अपेक्षा करूण रस में और करूण रस की अपेक्षा शान्त रस मे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट लगा करता है क्योकि सहृदय के हृदय की आर्द्रता या द्रवीभावमयता संभोग की अपेक्षा विप्रलम्भ में और विप्रलम्भ की अपेक्षा करूण मे और करूण की अपेक्षा शान्तरस मे अधिक बढ़ी रहा करती है।

इस 'माधुर्य' के अभिव्यञ्जन के जो निमित्त है वे ये हैं-

---

१ काव्य प्रकाश ८/पृ. ४१७

२ ध्वन्यालोक लोचन टीका २/८

३ सा. द. ८/२/ पृ. सं. ६४४

(१) वर्ण जो कि अपने-अपने वर्ग के अन्त्य वर्ण से मिलकर श्रुति मधुर ध्वनि की सृष्टि किया करते है, अन्य वर्ण से असंयुक्त रेफ और मूर्धन्य णकार भी इस श्रेणी में आते है।

(२) असमस्त रचना

(३) अल्पसमासवती रचना

(४) मधुर पद योजना

'मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्ताष्टठडढान्विना

रणौ लघू च तद्व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा।'[१]

दूसरा परिगणित गुण 'ओज' है। 'ओज' सहृदय हृदय की वह दीप्ति अथवा प्रज्वलित प्रायता है जिसका स्वरूप चित्त की विस्तृति अथवा उष्णता है। यह ओज, वीर, बीभत्स और रौद्ररस में उत्तरोत्तर प्रकृष्टरूप से विराजमान रहा करता है।

'ओजश्चितस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।

वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।।'[२]

काव्य प्रकाशकार मम्मट के अनुसार ओज 'दीप्तिकरण' है दीप्तिरूप नहीं, जैसा की इस पंक्ति से स्पष्ट हैः-

'दीप्त्याऽत्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः'[३]

---

[१] सा. द. ८/३ पृ. ६४५

[२] सा. द. ८/४ पृ. ४

[३] का. प्र. ८/६९

अर्थात जिसे 'ओज' कहते है सहृदयहृदय की वह दीप्ति अथवा प्रज्वल्लित प्रायता है जिसका स्वरूप चित्त की विस्तृति अथवा उष्णता है। यह वीर, बीभत्स और रौद्ररस में उत्तरोत्तर प्रकृष्टरूप से विराजमान रहा करता है।

बीभत्सरौद्ररस में ओज की अधिकता होती है ऐसी मान्यता आचार्य मम्मट की है।[१]

ओज गुण के अभिव्यञ्जक साधन निम्न है -

वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौं दन्तिमौ।।[२]

उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफो टठडढैः सह।

शकारश्च षकारश्च तस्य व्यञ्जकतां गता।।[३]

तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी।

अर्थात वर्ण-जैसे कि क वर्ग आदि वर्गों के प्रथम (क, च, ट, त, प) और तृतीय (ग, ज, ड, द, ब) वर्णों का उनके अपने-अपने अत्यन्त वर्णों (वर्ग के प्रथम वर्णों के अन्त्य वर्ण ख, छ, ठ, थ, फ वर्गों के तृतीय वर्णों के अन्त्य वर्ण (ध, झ, ढ, ध, भ) से संयोग (जैसे की पुच्छ बद्ध आदि मे) नीचे ऊपर अथवा दोनों ओर से, किसी वर्ण के साथ संयुक्त रेफ (जैसे वक्त्र, निर्हाद आदि मे) संयुक्त अथवा संयुक्त ट, ठ, ड और ढ तालव्य शकार और मूर्धन्य षकार (२) दीर्घसमासवती रचना (२) औद्धत्यपूर्ण पदयोजना।

गुण का तीसरा प्रकार 'प्रसाद गुण' है। प्रसाद गुण सहृदय हृदय की एक ऐसी निर्मलता है जो कि चित्त में उसी भाँति व्याप्त हो जाती है जिस

---

१ बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च (काव्य प्रकाश ८/६९)

२ सा. द. ८/५

३ सा. द. ८/६

भाँति सूखी लकड़ी में आग। यह 'प्रसाद' सभी रसों का धर्म अथवा स्वरूप-विशेष है और इसकी अवस्थिति सभी रचनाओं की विशेषता हुआ करती है

'चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्तं शुष्केन्धनमिवानलः।।

स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।''[1]

काव्यप्रकाशकार ने 'प्रसाद गुण' का यह स्वरूप विवेक किया है -

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।

व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।[2]

अर्थात् जिस प्रकार सूखे इन्धन मे अग्नि तथा स्वच्छ में जल सहसा व्याप्त हो जाता है, इसी प्रकार जो गुण सहसा ही अन्य अर्थात् चित्त में व्याप्त होता है, वह प्रसाद गुण है, वह सर्वत्र विद्यमान रहता है।

प्रसाद के अभिव्यञ्जक साधन वे शब्द हैं, जिनके अर्थ उनके श्रवण मात्र से ही झलक उठते है।

इस प्रकार साहित्यदर्पणकार काव्यप्रकाशकार एवं आचार्य आनन्दवर्धन ने माधुर्य, ओज, प्रसाद तीन काव्य गुणों की मान्यता प्रदान की है।

अतः विभिन्न आचार्यो के विचारों पर दृष्टि डालने के पश्चात् काव्य गुण के तीन प्रकारों को ही मान्यता प्रदान की जा सकती है।

आचार्य मेरूतुङ्ग कृति में विभिन्न गुणों में अभिव्यक्ति किस प्रकार हुई है, इस पर सम्प्रति दृष्टि क्षेप किया जा रहा है -

''कश्चित्कान्तामविषयसुखानीच्छुरत्यन्त धीमा-

नेनोवृत्तिं त्रिभुवनगुरूः स्वैरमुज्झाञ्चकार।

---

[1] सा. द. इ. ५,६

[2] काव्य प्रकाश ८/७,०

दानं दत्वासुरतरिवात्युच्च धामारुरुक्षुः

पुण्यं पृथ्वीधरवरमथो रैवतं स्वीचकारः[१]।।''

अर्थात तीनों लोको के उपदेशक तथा अत्यन्त बुद्धिमान् किसी ने चिदानन्द को पाने की इच्छा से सभी पाप व्यापारों की मूल कारण कान्ता (राजीमती) को त्याग दिया। तदन्तर सुरतरू के सदृश (सम्मपति) का वितरण करके अच्युच्च पद पर आरोहण के इच्छुक बनकर पर्वतश्रेष्ठ पवित्र रैवतक को स्वीकार किया।

यहाँ पर श्री नेमि न कहकर उन्हें 'त्रिभुवन' गुरु शब्द से सम्बोधित किया गया है। व्यंगार्थ 'त्रिभुवनगुरु' शब्द से व्यञ्जना व्यापार द्वारा श्री नेमि अर्थ दिग्दर्शित होता है।

प्रथम सर्ग के द्वितीय श्लोक में भी माधुर्य गुण की अभिव्यञ्जना की गई है -

दीक्षां तस्मिन्निव नवगुणां सैषणां चापयष्टि

प्रद्युम्नाधामभीरिपुचमूमात्तवत्येकवीरे।

तद्भक्तेतिच्छलितजगता क्लिश्यमाना निकामं

कामेनाशु प्रियविरहिता भोजकन्या मुमूर्च्छ।।

इसका सामान्य अर्थः- उन अद्वितीय वीर श्री नेमि के द्वारा अपनी उस शत्रुसेना (काम जिसमें प्रमुख है) जिसमें कामदेव आदि बलिष्ठ वीर है, की ओर नवीन प्रत्यञ्चा तथा बाण से युक्त धनुष के ग्रहण करने के समान शीलादि नव गुणों एवं अहारादि शुद्धि से समन्वित दीक्षा ग्रहण करने पर समस्त संसार को छलने वाली काम रूपी (श्रीनेमि के) प्रमुख शत्रु यह

---

[१] जैनमेघदूतम् १/१

जानकर कि हमारे शत्रु श्री नेमि के भक्त है, अत्यन्त पीड़ित की जाती हुई, प्रिय विरहिता भोजकन्या राजीमती मूर्च्छित हो गयी।

माधुर्य गणु के कारण व्यंग्यार्थ कुछ इस प्रकार है- मोह आदि महाशत्रुओ को परास्त करने में श्री नेमि ने काम जिसमें प्रमुख है ऐसी विषय समूह शत्रु सेना के प्रति जब शील क्षमा आदि नवीन गुणो वाली तथा एषणा समिति से युक्त दीक्षा को ग्रहण किया तब उनका उपकार न कर सकने वाले, छल युद्ध मे कुशल कामदेव द्वारा ऐसा जानकर कि यह राजीमती नेमि भक्त भी है तथा असहाय भी है, इसलिए अत्यन्त पीड़ित की जाती हुई भोजकन्या राजीमती मूर्च्छित हो गयी।

कवि ने शृङ्गारिक प्रसंगो के वर्णन में माधुर्य गुण का प्रयोग किया है। काव्य में माधुर्य लाने का पूरा प्रयास किया है। परन्तु कुछ अप्रचलित और गूढ़ शब्दो के प्रयोग से काव्य दुरूह बन गया है जिसे समझने के लिए सामान्यजन तो क्या सहृदय रसिक भी कोष पलटने के हेतु मजबूर हो जाता है। उदाहरणार्थ जैनमेघदूतम् के एक श्लोक मे इसीप्रकार के अप्रचलित क्लिष्ट शब्दो का निदर्शन मिलता है -

काचिच्चञ्चत्परिमलमिलल्लोलरोलम्बमालां

मालां बालारूणकिशलयैः सर्वसूनैश्च क्लृप्ताम् ।

नेमे कण्ठे न्यधित स तथा चाद्रिभिच्चापयष्ट्या

रेजे स्निग्धच्छविशितितनुः प्रावृषेण्यो यथा त्वम् ।।[१]

अर्थात किसी पत्नी ने सभी प्रकार के फूलों एवं नये, लाल पत्ते से गुँथी जिस पर भौरों का समूह मडरा रहा हो ऐसी माला को श्री नेमि के गले

---

[१] जैनमेघदूतम् २/१९

में पहना दी। उस माला से युक्त वे उसी प्रकार शोभित हुए जिस प्रकार वर्षाऋतु मे सुन्दर कृष्ण वर्ण तुम (मेघ) इन्द्रधनुष से शोभित होते हो।

उपर्युक्त श्लोकों के पदो मे क्लिष्टता दिग्दर्शित है।

एक अन्य स्थल पर कवि ने पदो मे मधुरता लाने के लिए रमणीय भावो की अभिव्यञ्जना की है -

श्री खण्डस्य द्रवनवलवैर्नर्मकर्माणि बिन्दु

बिन्दुन्यासं वपुषि विमले पत्रवल्ली र्लिलेख।

पौष्पापीडं व्यधि च परा वासरे तारतारा

सारं गर्भस्थितशशधरं व्योम संदर्शयन्ती।।[1]

अर्थात एक अन्य पत्नी नर्म कर्म की पण्डिता थी चन्दन रस के नये-नये लवो में श्री नेमि के सुन्दर शरीर पर बिन्दुविन्यास पूर्वक पत्रवल्ली की रचना की। फिर उनके सिर पर फूलो के मुकूट को रखकर दिन में ही चन्द्र एवं ताराओं से युक्त आकाश को दिखलाने लगी।

अर्थात श्री नेमि का शरीर श्याम वर्ण होने से आकाश तुल्य था पत्रवल्ली ताराओं के सदृश थी तथा फूलों का मुकुट चन्द्रमा की तरह लगता था। प्रस्तुत श्लोक में कवि ने मधुरता एवं सरसता लाने का पूर्णतः प्रयास किया है। कवि ने इसप्रकार के शृङ्गारिक प्रसंगों को माधुर्य गुण ये विभूषित किया है।

काव्य में विप्रलम्भ शृङ्गार माधुर्य गुण के कारण मधुरतम की पराकष्ठा पर पहुँच गया है। जैसे सखियों द्वारा समझाये जाने पर कि तुम दूसरे राजकुमार के साथ विवाह कर लेना, इस प्रकार की बातों को सुनकर

---

[1] जैनमेघदूतम् २/२०

राजीमती की अन्तः करण की सलिला कगारो को तोड़कर बह जाती है और वह योगिनी के रूप में जीवन व्यतीत कर डालने की प्रतिज्ञा कर लेती है।

क्व ग्रावाणः क्व कनकनगः क्वाक्षकाः क्वाभरद्रुः
काचांशाः क्व क्व दिविजमणिः क्वोडुपः क्व द्युरत्नम् ।
क्वान्ये भूपाः क्व भुवनगुरुस्तस्य तद्योगिनीव
ध्यानान्नेष्ये समयमिति ताः प्रत्यथ प्रत्यजानि।।[१]

अर्थात हे मेघ। कहाॅ पत्थर और कहाॅ स्वर्ण शिखर? कहाॅ बहेड़ा और कहाॅ कल्पवृक्ष? कहाॅ कांच के टुकड़े और कहाॅ चिन्तामणि, कहाॅ तारे और कहाॅ भगवान् सूर्य? कहाॅ अन्य राजकुमार और कहाॅ त्रिभुवनगुरु श्री नेमि प्रभु? अतः मैने सखियो के समक्ष ही यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं योगिनी की तरह उन भगवान श्री नेमि के ध्यान में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर लूॅगी।

आचार्य मेरूतुङ्ग ने राजीमती के अन्तः भावों की व्यक्त करने के लिए विशिष्ट शब्दो का आश्रय लिया है तथा उसे माधुर्य गुण से विभूषित किया है। इससे उनके रचना कौशल में और भी निखार आ गया है।

कवि ने ओजगुण का प्रयोग करके अपनी प्रवीणता का परिचय दिया है। एक स्थल पर आचार्य ने ओज गुण का उत्कृष्ट रूप दिखाने का प्रयास किया है। एक बार श्री नेमि श्री कृष्ण के शस्त्रागार में प्रविष्ट होते हैं। वहाॅ पाञ्चजन्य शंख को देखकर बजा देते है। शंख बजते ही प्रलयकारी स्थिति आ जाती है इसका कवि ने बहुत ओजपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया हैः-

तस्मिन्नीशे धमति ---------- हस्तिकं च[२]

---

१ जैनमेघदूतम् ३/५४

२ जैनमेघदूतम् १/३६

अर्थात श्री नेमि प्रभु शंख बजाते ही शस्त्राध्यक्ष, जड़ से कटे हुए वृक्ष की भाँति, संज्ञाशून्य होकर, तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़े अश्वशाला छोड़कर भागते हुए घोड़ो ने अपनी गति से मन को भी पराजित कर दिया, हाथियों ने भी गजशाला का उसी प्रकार त्याग कर दिया जिस प्रकार मूर्ख विद्वान् का आश्रय छोड़ देता है अर्थात् भयवश विद्वानों की सभा से चला जाता है।

नगर की स्त्रियो ने वक्षस्थल पर धारित हार की तरह मुख मे हा-हा शब्द धारण किया अर्थात् वे हाहाकार करने लगी फाल्गुन मास मे (गिरते हुए) वृक्षो के पत्तों की तरह सैनिकों के हाथ से अस्त्र गिरने लगे। पर्वत की चोटियो की तरह महलों के शिखर ढहने लगे शंख की ध्वनि से अतिव्याकुल होकर रैवतक भी प्रतिध्वनि के बहाने नाद करने लगा अर्थात् शंख की प्रतिध्वनि उस पर्वत से आने लगी।[1] शंख की गम्भीर ध्वनि से डरकर 'अब जो होने वाला है वही होगा' इस भयाक्रान्त लज्जा के कारण ही वीर लोग राजसभा मे ठिठके रह गये 'यह क्या हो गया' इस प्रकार चकित होकर श्री कृष्ण व्याकुल हो उठे।[2]

श्रीनेमि तथा श्रीकृष्ण के बीच भुजबल की परीक्षा को आचार्य ने ओजपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया हैं श्रीकृष्ण तथा श्री नेमि के भुजबल को देखने के लिए मनुष्य और देवगण पृथिवी और आकाश मण्डल में शीघ्र एकत्र हो गये। सभी के रक्षक श्री नेमि के वाम हस्त से स्पर्श करते ही श्री कृष्ण की अत्यन्त सुदृढ़ की हुई भुजलता कन्धे तक स्वयं झुक गयी। हस्ते सव्ये स्पृशति किमपि स्वामिनोऽनेकयस्य, न्यस्तास्कन्धं हरिभुजलता सा स्वयं स्तब्धितापि।[3]

---

१ जैनमेघदूतम् १/३६

२ जैनमेघदूतम् १/३८

३ जैनमेघदूतम् १/४४

श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा का झुक जाना एक दैव योगमाना श्री नेमि ने इनके भावो को जानकर वज्र को भी तृण बना देने वाले अपने वाम हस्त को श्रीकृष्ण की ओर बढ़ा दिया। अत्याधिक प्रयास के पश्चात् श्रीकृष्ण श्रीनेमि की भुजा को झुका नही पाये-

अद्रेः शाखा मरुदिव मनाक्चालयित्वा सलीलं

स्वामी बाहां हरिमिव हरिं दोलयामास विष्वक् ।

तुल्यैर्गोत्राज्जयजयरवोद्घोषपूर्वं च मुक्ताः

सिद्धस्वार्थं दिवि सुमनसस्तं तृषेवाभ्यपप्तन्।[१]

अर्थात् जिस प्रकार वायु वृक्ष की शाखा को हिलाकर उस पर बैठे हुए बन्दर को भी कम्पित कर देता है, उसी प्रकार श्री नेमि प्रभु ने क्रीडा-पूर्वक अपनी बाहु को थोड़ा सा हिलाकर श्री कृष्ण को झकझेर दिया। उस समय आकाश में जयकार पूर्वक देवताओ द्वारा प्रक्षिप्त पुष्प श्रीनेमि के पास उसीप्रकार आ गिरे जैसे अपने गोत्र से निष्कासित मनुष्य स्वार्थसिद्धि हेतु आश्रयदाता की शरण मे, जयकार करते हुए जाता है।

इस प्रकार जैनमेघदूतम् में माधुर्य गुण सर्वत्र विद्यमान है। ओज गुण का प्रयोग अत्यल्प हुआ है। इन दोनों गुणों से काव्य जीवन्त हो उठा है। माधुर्य गुण का विप्रलम्भ शृङ्गार और शान्त रस में प्रयोग कर कवि ने काव्य को अत्यधिक रमणीय बना दिया है। माधुर्य ओजगुण की अपेक्षा प्रसाद गुण की उपस्थिति प्रायः नगण्य ही है किन्तु कहीं कहीं उनकी झलक दिखलाई देती है जैसे -

"उच्चैश्चक्रुः प्रतिदिशमविस्पन्दमाकन्दनाग-

स्कन्धारूढा कलकलरवान् कोकिलाः कान्तकण्ठाः।

---

१ जैनमेघदूतम् १/४८

संनह्यन्तं त्रिभुवनजये कामराजं जिगीषून्

नग्नप्रष्ठा इव यतिभटान् धीरमाह्वानयन्तः।।[१]

अर्थात् निश्चल आम्रवृक्ष की डालियों पर बैठे मधुर कण्ठ वाले कोटि कोकिल पक्षी सभी दिशाओ मे उच्च स्वर से ध्वनित कर रहे थे, जैसे तीनों लोक के विजय के लिए तैयार कामदेव को जीतने की इच्दा वाले यतिसमूह रूपी योद्धाओं को युद्ध में दन्दुभि बजाने वाले कामदेव के श्रेष्ठ चारण युद्ध के लिए ललकार रहे हो- कि अब कामदेव आ रहे हैं युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

एक अन्य स्थल पर भी प्रसाद गुण की झलक दृष्टिगत होती हैः-

नीलेनीले शितिलपनयन् वर्षयत्यश्रुवर्षन्

गर्जत्यस्मिन् पटु कटु रटन् विद्ययत्यौष्ण्यमिर्यन।

वर्षास्वेवं प्रभवति शुचे विप्रलब्धोऽम्बुवाहे

वामावर्गः प्रकृतिकुहनः स्पर्धतेऽनेन युक्तम् ।।[२]

अर्थात वर्षाकाल मे स्वभाव से ईर्ष्यालु विरहिणी स्त्रियॉ अपने शोक को उत्पन्न करने वाले मेघ से जो ईर्ष्या करती है, वह ठीक ही है। (क्योंकि) मेघ के नीलतुल्य श्यामवर्ण वाला होने पर वे (विरहिणी स्त्रियाँ) भी मुख को श्याम बना लेती है, जब वह (मेघ) बरसता है तब वे (विरहिणी स्त्रियाँ भी अश्रु बरसाती हैं, जब वह (मेघ) गरजता है तो विरहिणी स्त्रियॉ चातुर्य पूर्ण कटु विलाप करती है और जब वह (मेघ) बिजली चमकाता है तो (विरहिणी स्त्रियॉ) भी उष्णनिःश्वास छोड़ती है। निम्नलिखित अन्य स्थलों पर भी प्रसाद गुण की प्रतीति होती हैः-

---

१ जैनमेघदूतम् २/६

२ जैनमेघदूतम् १/६

अन्या लोकोत्तर! तनुमता रागपाशेन बद्धो

मोक्षं गासे कथंयमिति? मितं सस्मितं भाषमाणा।

व्यक्तं रक्तोत्पलविरचितेनैव दाम्ना कटीरे

काञ्चीव्याजात्प्रकृतिरिवं तं चेतनेशं बबन्ध।।[१]

धन्या मन्ये जलधर! हरेरेव भार्या स याभि-

र्दृष्टो दृग्भिः परिजनमनश्छन्दवृत्यापि खेलन्।

कस्माज्जज्ञे पुनरियमहं मन्दभाग्या स्त्रिचेर्ली

या तस्यैवं स्मरणमपि हा! मूर्छेनाप्त्या लवेन।।[२]

उपर्युक्त सभी श्लोकों को पढ़ने के या सुनने मात्र से ही अर्थ सहसा ही चित्त में व्याप्त हो जाता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य को कवि ने तीन गुणों से विभूषित किया है। इनमें सर्वाधिक प्रयोग माधुर्य गुण का हुआ है। ओज गुण का प्रयोग प्रथम सर्ग के कुछ ही श्लोकों में मिलता है, परन्तु अत्यल्प होते हुए भी ओजगुण के प्रयोग से काव्य मे सजीवता आ गई है। यद्यपि आचार्य मेरुतुङ्ग की क्लिष्ट भाषा है, फिर भी कहीं-कहीं भाषा के प्रवाह में सरलता की झलक स्पष्ट दिखलाई देती है। इन-इन स्थलों पर प्रसाद गुण ने अपना स्थान बना लिया है। कवि ने तीनों गुणों का प्रयोग अत्यन्त कुशलता से की है।

रीतियाँ

आचार्य मेरुतुङ्ग कृत काव्य में प्रयुक्त रीतियों के पूर्व रीति पर शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है-

---

१ जैनमेघदूतम् २/२१

२ जैनमेघदूतम् २/२४

काव्य मे रीति तत्त्व क्या है? इसका विचार विमर्श किया जा रहा है। साहित्यदर्पणकार ने 'रीति' की परिभाषा जो निरूपित की है वह इस प्रकार है - रीति अङ्ग रचना की भाँति पद रचना अथवा पद संघटना है जो कि रसभावादि की अभिव्यञ्जना मे सहायक हुआ करती है? 'पद सघटना रीतिः रङ्ग संस्थाविशेषवता उपकर्त्री रसादीनाम्।[१]

साहित्यदर्पणकार के अनुसार रीति और संघटना एक ही वस्तु है। रीति अथवा 'संघटना' रस अभिव्यक्ति की निमित्तभूता है और इसीलिए साहित्यदर्पणकार ने उसे रसभावादि का उपकर्त्री माना है। काव्यप्रकाशकार ने रीति तत्त्व पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला क्यो कि प्राचीन ध्वनिवादी आचार्यो की दृष्टि में 'वृत्ति' और 'रीति' का रहस्य वर्णसंघटना वैशिष्ट के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। ध्वनिकार का स्पष्ट कथन है -

वर्णसंघटना धर्माश्च माधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयन्ते तदनतिरिक्त वृत्यो वृत्तयोऽपि याः कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः, ता अपि गताः श्रवणोगोचरम् रीतियश्च वैदर्भी प्रभृतयः।[२]

रीति चार प्रकार की है - वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली और लाटी।[३]

रीतिचतुष्टय में वैदर्भी और गौडी की मान्यता में भामह और दण्डी की यह उक्ति प्रमाण है -

इति मार्गद्वयं भिन्नं तत्स्वरूपनिरूपणात्।

तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिकविस्थिताः।

इक्षुक्षीर गुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत् ।

---

१ साहित्यदर्पण १/१

२ साहित्यदर्पण नवम परिच्छेद पृ०सं० ६५८

३ साहित्यदर्पण पृ० ६५८ १/१

तथापि न तदाख्यातु सरस्वत्यापि पार्यते।[1]

रीति चतुष्टय की मान्यता मे साहित्यदर्पणकार का अभिप्राय वस्तुतः यही है कि 'जब काव्य रसात्मक वाक्य है तो रीति इसकी एक विशेषता अवश्य है। भावप्रकाशकार की काव्य समीक्षा को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है, रीति चतुष्टय का यह संकेत ध्यान देने योग्य है -

प्रतिवचनं प्रतिपुरुषं तदवान्तरजातितः प्रतिप्रीति।

आनन्त्यात् संक्षिप्य प्रोक्ता कविभिश्चतुर्धैव

त एवाक्षरं विन्यासास्ता एवाक्षरपक्तयः

पुंसि पुंसि विशेषेण कापि कापि सरस्वती।[2]

रीलि चतुष्टय मे वैदर्भी वह रीति है जिसे माधुर्य अभिव्यञ्जक वर्णों से पूर्ण असमस्त अथवा स्वल्प समासयुक्त ललित रचना कहा गया है "माधुर्य व्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका। आवृत्तिरल्पा वृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।[3]

वैदर्भी के सम्बन्ध मे महाकवि श्रीहर्ष की यह सूक्ति बड़ी सुन्दर है-

धन्यसि वैदर्भी गुर्णरूदौरर्यया समाकृष्यत् नैषधोऽपि।

इति स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरं स्वीकरोति।[4]

वैदर्भी के सम्बन्ध मे (काव्यालंकार के रचयिता) आचार्य रूद्रट का यह मत है -

असमस्तैकमासयुक्ता दशभिर्गुणैश्च वैदर्भी।

---

१ काव्यदर्श १-१०१-१०२

२ भावप्रकाश पृष्ठ ११, १२

३ साहित्यदर्पण पृ० ६६०, परिच्छेद ९

४ नैषधीयचरित ३, ११६

वर्गद्वितीय बहुला स्वल्पप्राणाक्षरा च सुविधेया।

अर्थात वैदर्भी रीति अथवा ललित पद रचना इस प्रकार की हुआ करती है जिसमे समस्त पदावली का प्रयोग नहीं हुआ करता। जहाँ एकाध पद समस्त हो जाय तो कोई हानि नहीं। जिसमें श्लेषादि दसो शब्द गुण विराजमान रहा करते है, जिसमें द्वितीय वर्ग अर्थात च वर्ग के वर्णो का बाहुल्य सुन्दर लगा करता है और जिसमें ऐसे वर्ण रहा करते हैं जो कि स्वल्प प्रयत्न से उच्चरित हो सकते है।

आचार्य भामह के अनुसार श्लेष, समता, प्रसाद, मधुरता, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्ति, ओज, समाधि इन दस गुणों का वैदर्भी रीति मे होना आवश्यक है-

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता

अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः।

इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दश गुणाः स्मृता

एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवरमीनि।[१]

गौडी वह रीति है जिसे ओजगुण के अभिव्यञ्जक वर्णो से पूर्ण, समास- प्रचुर उद्भट रचना कहा गया है।

ओजः प्रकाशकैर्वर्णबन्ध आडम्बरः पुनः।।३।।

समास बहुला गौडी[२]- रीतिवाद के प्रवर्तक आचार्य वामन के अनुसार गौडी रीति का स्वरूप यह है -

'समस्ताप्युद्भटपदामोजः कान्ति गुणान्विताम् ।

---

१ काव्यादर्श १/४१/४२

२ साहित्यदर्पण ९/३

'समस्त पञ्चषपदामोजः कान्तिसमन्विताम्।

मधुरां सुकुमारां च पाञ्चाली कवयो विदुः।।'[1]

लाटी वह रीति है जिसमें वैदर्भी और पाञ्चाली दोनो रीतियों की विशेषताएं विराजमान रहा करती है।

लाटी तु रीतिवैदर्भी पाञ्चाल्योरन्तर स्थित।[2]

आचार्य रूद्रट के अनुसार गौडी पाञ्चाली लाटी का स्वरूप विवेक वह है-

पाञ्चाली लाटीया गौडीया चेति नामतोऽभिहिता

लघुमध्यायतविरचना समासभेदादिमास्तत्र।।

द्वित्रिपदा पाञ्चाली लाटीया पञ्च सप्तवा यावत्

शब्दाः समासवन्तो भवति यथाशक्ति गौडीया।।[3]

किसी काव्याचार्य के मत में लाटी का स्वरूप यह है लाटी रीति ऐसी हुआ करती है जिसमें संयुक्त वर्णों का प्रयोग स्वल्पमात्र में ही हुआ करता है और जिसमे प्रकृतोपयुक्त से रमणीय वर्ण्य वस्तु की एक अपनी ही छटा छिटका करती है।

कतिपय काव्याचार्यो ने रीति चतुष्टय का यह सक्षिप्त स्वरूप बताया है-

वैदर्भी रीति का अभिप्राय 'मधुरबन्ध,' गौडी का अभिप्राय मिश्रबन्ध और 'लाटी रीति' का अभिप्राय 'मृदुबन्ध' है।

---

१ साहित्यदर्पण पृ० सं० ६६१, ९ परिच्छेद

२ साहित्यदपर्ण ९/ पृ० सं० ६६१

३ काव्यलंकार २/४/५

जैनमेघदूतम् और रीतियाँ

जैनमेघदूतम् में वैदर्भी गौडी, पाञ्चाली तथा लाटी रीतियो मे से कवि ने मुख्यतः गौडी रीति का ही प्रयोग किया है। पाञ्चाली रीति का भी दर्शन कई स्थलो पर होता है।

श्री नेमि द्वारा शंख बजाने के प्रभाव का वर्णन कवि ने अत्यन्त ओजपूर्णता से व्यक्त किया है जिसमें गौडीरीति का प्रयोग हुआ है-

"तस्मिन्नीशे धमति जलजं छिन्नमूलद्रुवत्ते
शस्त्राध्यक्षाः सपदि विगलच्चेतना पेतुरुर्व्याम्
आश्वं चाशु व्यजयत मनो मन्दुराभ्यः प्रणश्य-
न्मूढात्मेवामुचत चतुरोपाश्रयं हास्तिकं च।।"[१]

श्रीनेमि प्रभु ने शंख बजाते ही शस्त्राध्यक्ष, जड़ से कटे हुए वृक्ष की भाँति, संज्ञाशून्य होकर, तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़े। अश्वशाला छोड़कर भागते हुए घोड़ो। ने अपनी गति से मन को भी पराजित कर दिया हाथियो ने भी गजशाला का उसीप्रकार त्याग कर दिया, जिसप्रकार मूर्ख विद्वान का आश्रय छोड़ देता है अर्थात् भयवश विद्वानो की सभा से चला जाता है।

आचार्य ने निम्नलिखित श्लोक में ओज रीति का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत किया है-

'हारावाप्तीरदधत हृदीवानने पौरनार्यो
योद्धुर्गुच्छच्छदवदपतन् फाल्गुनेऽस्त्राणि पाणेः।
प्राकाराग्रयाण्यपि विजगलुर्गण्डशैला इवाद्रेः
पूच्चक्रे च प्रतिरुतनिभाद्भूरिभीरुज्जयन्तः।।"[१]

---

[१] जैनमेघदूतम् १/३६

अर्थात् नगर की स्त्रियों ने वक्षस्थल पर धारित हार की तरह मुख मे हा हा शब्द धारण किया अर्थात् वे हाहाकार करने लगी। फाल्गुन मास मे वृक्षो की पत्तों की तरह सैनिकों के हाथों से अस्त्र गिरने लगे। पर्वत की चोटियो की तरह महलों के शिखर ढहने लगे, शंख की ध्वनि से अति व्याकुल होकर रैवतक भी प्रति ध्वनि के बहाने नाद करने लगा अर्थात् शंख की प्रतिध्वनि उस पर्वत से आने लगी।

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने गौडी रीति का प्रयोग किया है क्योकि इसमे समास बाहुल्य है तथा ध,छ,ड,भ जैसे महाप्राण वर्णों का प्रयोग है। 'योद्धुर्गुच्छच्छदवदपतन् [१] पद मे अनुप्रास वैशिब्ध भी है। इस प्रकार ओजरीति का यह सुन्दर उदाहरण है।

यद्यपि साहित्यदर्पणकार के अनुसार काव्य में पाञ्चाली रीति का कही दर्शन नहीं होता, परन्तु जैसा कि भोजराज ने पाञ्चाली रीति की परिभाषा दी है कि पाञ्चाली रीति वह रीति है जिसमें पॉच या छः पदों से अधिक पद वाले समास नही प्रयुक्त कियें जाया करते, जिसमें ओज और कान्ति के गुण विराजमान रहा करते है और जो कि माधुर्य के अभिव्यञ्जक किं वा कोमल वर्णों से पूर्ण पद रचना हुआ करती है। इस परिभाषानुसार जैनमेघदूतम् में कई स्थलो पर पाञ्चाली रीति का दिग्दर्शन होता है। जैसे निम्न श्लोक में पाञ्चाली रीति का प्रयोग दिग्दर्शित होता है -

''तप्ताश्मेव स्फुटति हि हिरुकप्रेयसो ह्रन्ममैत-

त्तत्कारुण्यार्णवमुपतदं प्रेषयाम्यब्दमेतम्।

मन्दं मन्दं स्वयमपि यथा सान्त्वयत्येष कान्तं

---

१ जैनमूघदूतम् १/१

मत्सन्देशैर्दवमिव दवप्लुष्टमुत्सृष्टतोयैः।।''[१]

अर्थात् यह मेरा हृदय स्फुट रूप से प्रिय के बिना तप्त पाषाण की भाँति विदीर्ण हो रहा है, इस कारण मैं सामने दृश्यमान करुणा के सागर मेघ को अपने प्रेयस के समीप भेजती हूँ। जिस प्रकार यह मेघ अपने मुक्त जल से दावानल से दग्ध वन को धीरे शान्त करता है, उसी प्रकार यह मेरे स्वामी के हृदय को भी मन्द-मन्द गति से स्वयं ही मेरे सन्देश के द्वारा सात्त्वना देगा।

उपर्युक्त श्लोक के माधुर्य के अभिव्यञ्जक कोमल वर्णों से पूर्णपद रचना है जैसे मन्दं मन्दं आदि। साथ ही ओज और कान्ति के गुण भी विराजमान हैं अतः भोजराज की परिभाषा के अनुसार उपर्युक्त श्लोक में पाञ्चाली रीति का प्रयोग स्वीकार किया जा सकता है।

काव्य के द्वितीय सर्ग में भी पाञ्चाली रीति का निदर्शन मिलता है जिसमे माधुर्य गुण के अभिव्यञ्जक किं वा कोमल वर्णों से पूर्ण पद रचना प्रस्तुत की गई है-

पूरं पूरं सुरभिसलिलैः स्वर्णशृङ्गाणि रङ्गात् ।
सारङ्गाक्ष्यः स्मितकृतममुं सर्वतोऽप्यभ्यषिञ्चन्।
धारा धाराधर। सरलगास्ताश्च वारामपाराः
स्मारादोऽङ्गप्रसृमरशरासारसारा विरेजुः।।''[२]

अर्थात् सारङ्गाक्षी उन रमणियों ने अपनी अपनी स्वर्णिम पिचकारियो को सुरभित जलों के रंगो से भर कर मुस्कुराते हुए उन भगवान श्रीनेमि को सराबोर कर दिया। हे मेघ। सीधे जाती हुई जल की वे अपार धाराएं भगवान श्री नेमि के अङ्गों की ओर चलाये गये काम के वाणों की वृष्टि सी शोभित हो रही थी।

---

[१] जैनमेघदूतम् १/८

[२] जैनमेघदूतम् २/४५

(ग) अलंकार

काव्य की निर्मिति शब्द और अर्थ के संयोजन से घटित होती है। अलंकार काव्य धर्म होते है, अतः सामान्य व्यक्ति की वाणी में इनकी उपस्थिति दृष्टिगत होती है। फिर अतिरिक्त संवेदनशील और प्रतिभासम्पन्न कवियो की भाषा में उनकी छटा विशेष सौन्दर्यमयी हो उठे यह स्वभाविक ही है। काव्यशास्त्र के विभिन्न आचार्यो ने काव्य मे शोभाधायक तप्व अलंकार का लक्षण देते हुए उनकी परिभाषाएं प्रस्तुत की है जिनमें से कतिपय मुख्य परिभाषाओं का उल्लेख यहॉ किया जा रहा है-

आचार्य मम्मट ने अलंकार की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा है-

उपकुर्वत्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण् जातुचित्।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।[१]

अर्थात् जो (धर्म) अङ्ग अर्थात् अङ्गभूत शब्द और अर्थ के द्वारा (उसमें उत्कर्ष उत्पन्न कर) विद्यमान होने वाले उस (अङ्ग) रस का हार इत्यादि के समान कभी नियम से कहीं उपकार करते हैं। वे अनुप्रास तथा उपमा आदि अलङ्कार कहलाते हैं।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार अलंकार शब्द और अर्थ के उन अस्थिर धर्मो को कहा करते है जो (मानव के शरीर की शोभा के बढ़ाने वाले) अङ्गद (बाजूबन्द)आदि अलंकार (काव्य के शरीरभूत) शब्द और अर्थ की शोभा बढाया करते हैं और (अन्ततोगत्वा) काव्य के आत्मभूत रस और भाव के अभिव्यञ्जन में सहायक हुआ करते हैं, **"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा**

---

१ काव्यप्रकाश ८/६७

शोभातिशायिनः रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्''[१] अग्निपुराण में अलंकार को काव्य का अनिवार्य धर्म बताया है- **काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारा् प्रचक्षते।**

काव्य में अलंकार की उपयोगिता काव्य के वाच्य वाचक रूप अङ्गी को शोभावर्धकता के ही कारण है जैसा कि लोचनकार ने स्पष्ट कहा है- **वाच्यवाचकलक्षणान्यङ्गानि ये पुनः तदाश्रितास्तेऽलङ्काराः मन्तव्याः कटकादिवत् ।**[२] अलंकार का आधार शब्द और अर्थ होते है। इस प्रवृत्ति के बीज भामह मे खोजे जा सकते हैं। काव्यालङ्कार में शब्दार्थौ को काव्य का लक्षण दिया गया है, अतः काव्य सम्बन्धी समस्त विशेषताओं का अध्ययन शब्द एवं अर्थ के शीर्षकों में करना स्वाभाविक है। इसी हेतु अलंकार तीन प्रकार के होते है शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उभयालङ्कार। जो शब्दपर आश्रित है; शब्द का परिवर्तन हो जाने पर अर्थात् किसी शब्द का पर्यायवाची शब्द रख देने पर जहॉ अलंकार नहीं रहता (शब्दपरिवृत्त्यसहत्व शब्द के परिवर्तन को न सहना) वे शब्दालङ्कार है। किन्तु जो अर्थ पर आश्रित हैं, जहॉ किसी शब्द का पर्यायवाची शब्द रख देने पर जहाँ अलंकार रहता है । (शब्दपरिवृत्तिसहत्व) शब्द के परिवर्तन को सहना) वे अर्थालङ्कार कहलाते हैं। जो अलंकार शब्द और अर्थ दोनो पर आश्रित है वे उभयालङ्कार है।[३]

आचार्य मेरूतुङ्ग कृत जैनमेघदूतम् में अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्तवदाभास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, दृष्टान्त अप्रस्तुतप्रशंसा, निदर्शना, तुल्योगिता, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, अनुमान, परिकर आदि अलंकारों की छटा दर्शनीय है। इस प्रकार कवि ने शब्दालंकार, अर्थालङ्कार एवं उभयालङ्कार तीनों प्रकार के अलंकारो का काव्य में यथाविधि प्रयोग किया

---

१ साहित्यदर्पण १०

२ ध्वन्यालोक लोचन २.३

३ काव्यप्रकाश नवम उल्लासः प्र. सं. ४३६-३७

है। इन सभी अलंकारों मे सर्वाधिक अलंकार के रूप मे श्लेष ही प्रयुक्त है। अतः कवि को श्लेषालङ्कार अत्यधिक प्रिय है। श्लेष अलङ्कार को लेकर काव्यशास्त्रियों मे बहुत मतभेद है कि इसे किस वर्ग में रखा जायेगा। अन्त में समाधान यही बन सका है कि श्लेष कहाँ शब्दालङ्कार है और कहां अर्थालङ्कार? रुद्रट ने 'श्लेषोऽर्थस्यापि' लिखकर श्लेष को उभयालङ्कार माना है। परन्तु रूद्रट के कथन को किसी अन्यरूप में लेकर भोज ने उभयालङ्कार का 'विवेचनाय परिच्छेदमारभते' इस परिच्छेद के अन्तर्गत चौबीस उभयालङ्कारो का वर्णन किया गया है। इन चौबीस अलङ्कारों मे से केवल श्लेष और संसृष्टि को छोड़कर किसी भी दूसरे अलङ्कार को किसी भी परिचित आलङ्कारिक ने उभयालङ्कार नही माना है? [१]

काव्यशास्त्रकार आचार्य मम्मट ने श्लेष की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत है कि- 'वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद् भाषणस्पृशः शिलषयन्ति शब्दाः श्लेषाऽसावक्षरादिभिरष्टधा।' अर्थात् अर्थ का भेद होने से भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारण जब मिलकर एक हो जाते हैं तो श्लेष शब्दालङ्कार होता है।[२] आचार्य मेरूतुङ्ग को श्लेषालङ्कार सर्वाधिक प्रिय है। श्लेष अलङ्कार के प्रयोग से आचार्य मेरूतुङ्ग की प्रतिभा चमत्कृत हो उठी है इनका श्लेष प्रयोग अत्यन्त उच्चकोटि का है। काव्य के प्रारम्भ में ही श्लेषालङ्कार का दर्शन होता है।

कश्चित्कान्तामविषयसुखानीच्छुरत्यन्तधीमा-

नेनोवृत्तिं त्रिभुवनगुरूः स्वैरमुज्झाञ्चकार।

---

१ भारतीय साहित्यशास्त्रऔर काव्यालङ्कार भाग अलङ्कारों का स्वरूप विकास के अन्तर्गत पृ. सं. २३६,७ लेखक डॉ. ओम प्रकाश प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली २६ दरियागंज, दिल्ली- ११००६, प्रथम संस्करण- १९७३

२ काव्यप्रकाश ९/८४

दानं दत्वा सुरतरुरिवात्युच्चधामारुरुक्षः।

पुण्यं पृथ्वीधरवरमथो रैवतं स्वीचकार।।[१]

यहाँ एक ही वाक्य से उसी पद से अन्य अर्थ के उद्भव के कारण श्लेष अलङ्कार है जैसे कश्चित् शब्द में श्लेष स्पष्ट होता है। क्यो कि उस पद से श्री नेमिनाथ का बोध हो रहा है इसी प्रकार प्रथम सर्ग के द्वितीय श्लोक मे भी श्लेषालङ्कार की स्पष्ट झलक आती है -

दीक्षां तस्मिन्निव नव गुणां सैषणां चापयष्टिं।

प्रद्युम्नाद्यामभिरिपुचमू मात्तवत्येकवीरे।

तद्भक्तेतिच्छलितजगता क्लिश्यमाना निकामं

कामेनाशु प्रियविरहिता भोजकन्या मुमूर्च्छ।।[२]

यहाँ तस्मिन् एक वीरे श्री नेमि के लिए प्रयुक्त किया गया है 'प्रियविरहिता भोजकन्या' से राजीमती का बोध होता है अतः यहाँ भी श्लेषालङ्कार है। आचार्य ने अन्य कई स्थलों पर श्लेष अलंकार को बहुलता से प्रयोग किया है।[३] सर्वाधिक श्लेष के प्रयोग से काव्य दुरूह बन गया है अतः कुछ सुबोधता लाने हेतु कवि ने अन्य अलंकारों का आश्रय लिया है।

कवि ने उपमा अलंकार का प्रभूत प्रयोग किया है। इनकी उपमाएं कुछ नवीन प्रतीत होती हैं। इन्होंने कवि सम्प्रदाय में साधारणतया प्रचलित उपमानों का उपयोग न करके पौराणिक दार्शनिक व्यावहारिक आध्यात्मिक नवीन उपमानों का प्रयोग किया है।

---

१ जैनमेघदूतम् १/१

२ जैनमेघदूतम् १/२

३ जैनमेघदूतम् १/७, ११, १४, २०, २१, ३२, ३७, ३९, ४२, ४३, ४८, २/१, २, ४, १०, १८, २७, २९, ३०, ३२, ३३, ३५, ३७, ४०, ४३, ३/४, ६, १२, ३८, ३९, ५

निम्नलिखित श्लोक मे दार्शनिक उपमा का सुन्दर निदर्शन है -

अन्या लोकोत्तर! तनुमता रागपाशेन बद्धो

मोक्षं गासे कथमिति? मितं सस्मितं भाषमाणा।

व्यक्तं रक्तोत्पलविरचितेनैव दाम्ना कटीरे

काञ्चीव्याजात्प्रकृतिरिव तं चेतनेशं बबन्ध।।[१]

अर्थात् एक दूसरी कृष्ण की पत्नी ने हॅसते हुए संक्षेप में यह कहते हुए कि हे लोकोत्तर। तुम मूर्तिमान रागपाश से बॅधे होने पर मोक्ष को कैसे प्राप्त करोगे? लाल कमलो की माला को मेखला के बहाने श्री नेमि के कटि प्रदेश मे ऐसे बॉध दिया जैसे प्रकृति आत्मा को बॉध लेती है।

यहॉ कवि ने दार्शनिक उपमान 'प्रकृति आत्मा को बाँध देती है का प्रयोग किया है।

एक अन्य स्थल पर आध्यात्मिक उपमान की स्पष्ट झलक प्रतीत होती है -

नर्तेऽर्तीनां नियतमवरावावरीयां तपस्यां

यस्योदर्कः सततसुखकृत्यमर्ध्यं सतां तत् ।

दामत्कर्मप्रसितभविनो मोचयिष्ये चरीन् वां

नेमिः प्रत्यादिशदिति हरिं भूरि निर्बधयन्तम् ।।[२]

अर्थात बार-बार आग्रह करते हुए श्रीकृष्ण को श्री नेमि ने यह कहकर मना कर दिया की हे कृष्ण। इस तपस्या (दीक्षा) के बिना स्त्री निश्चित ही बाधाओं को दूर नहीं कर सकती। सज्जनों का वही कार्य प्रशंसनीय होता है

---

१ जैनमेघदूतम् २/२१

२ जैनमेघदूतम् ३/४८

जिसका परिणाम सदैव सुखकारी हो मै कर्मपाश से बॅधे हुए समस्त प्राणियो को इन्ही पशुओ के समान मुक्त करूगाँ।

यहॉ समस्त प्राणियो को पशुओं के समान मुक्त करना चाहते हैं। प्रस्तुत श्लोक मे समस्त प्राणियो और पशुओं मे सार्धम्य स्थापित किये जाने के कारण उपमा अलङ्कार है।

निम्नलिखित श्लोक मे सृष्टिपदार्थीय और व्यावहारिक उपमाओ का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगत होता है -

या क्षैरेयीमिव नवरसां नाथा वीवाहकाले

सारस्नेहामपि सुशिशिरां नाग्रहो पाणिनाऽपि ।

सा किं कामानलतपनतोऽतीव वाष्पायमाणा

ऽन्योच्छिष्टा नवरूचिभृताऽप्यद्य न स्वीक्रियते।।[१]

अर्थात् हे नाथ। विवाह के समय मे नवीन तथा स्थिर प्रेमवाली जिस मुझको आपने मधुर तथा घृतयुक्त किन्तु शीतल खीर की तरह हाथ से भी नही छुआ था, कामाग्नि से अत्यन्त उष्ण हो एवं वाष्पपूरितं एवं अनन्यमुक्ता उसी मुझको नवीन कान्ति वाले आप आज क्यों नहीं स्वीकार करते।

यहॉ विवाह के समय मे नवीन तथा स्थिर बुद्धि वाली राजीमती का साधर्म्य मधुर तथा घृतयुक्त किन्तु शीतल खीर से (सृष्टिपदार्थीय) से की गई है अतः यहॉ उपमालङ्कार है।

रूपक अलंकार के प्रयोग से काव्य रमणीय हो उठा है।

---

१ वही ४/१५

जैसा कि काव्यशास्त्राकार ने रूपक का लक्षण निरूपित करते हुए कहा है:- 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमयेयोः'[१] अर्थात् उपमान और उपमेय का अभेद रूपक अलंकार है।

निम्नलिखित श्लोक रूपक अलंकार का एक सुन्दर निदर्शन है। इसमे रूपक अलंकार का लक्षण पूर्णतः घटित हो रहा है -

हारावाप्तीरदधत हृदीवानने पौरनार्यो

योद्धुर्गच्छच्छदवद्पतन् फाल्गुनेऽत्राणि पाणेः।

प्राकाराग्र्याण्यपि विजगलुर्गण्डशैला इवाद्रेः

पूच्चक्रेः च प्रतिरुतनिभाद् भूरिभीरुज्जयन्तः।।[२]

अर्थात् नगर की स्त्रियो ने वक्षस्थल पर धारित हार की तरह मुख मे हा हा शब्द धारण किया अर्थात् वे हाहाकार करने लगीं फाल्गुन मास में वृक्षो के पत्तो की तरह सैनिकों के हाथो से अस्त्र गिरने लगे। पर्वत की चोटियों की तरह महलो के शिखर ढहने लगे, शंख की ध्वनि से अति व्याकुल होकर रैवतक भी प्रतिध्वनि के बहाने नाद करने लगा अर्थात् शंख की प्रतिध्वनि उस पर्वत से आने लगी।

यहॉ उपमान हार और उपमेय हाहाकार शब्द उपमान फाल्गुन मास के पत्ते की तरह उपमेय शिखर का ढहना आदि मे उपमान उपमेय का अभेद वर्णन है, अतः रूपक अलंकार है। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर रूपक अलंकार दिग्दर्शित होता है।

---

१ काव्यप्रकाश १०/९३

२ जैनमेघदूतम् १/३७

आचार्य मेरूतुङ्ग ने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रभूत प्रयोग किया है। जैनमेघदूतम् के प्रत्येक सर्ग मे उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग दर्शनीय है जो अत्यन्त उच्चकोटि के हैं।

निम्न श्लोक मे कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा प्रस्तुत की है गई है -

हा। त्रैलोक्यप्रभुनयनयोः स्पर्धनादेनसां नौ

वृत्ते पात्रं प्ररुदित इतीवानुतप्ते सशब्दम् ।।[1]

अनुतप्ते प्ररुदित इव अर्थात् अनुतप्त होकर रोते हुए से वे कमल सुशोभित हुए, में उत्प्रेक्षा अलङ्कार स्पष्ट है। इसी प्रकार जैनमेघदूतम के चारों सर्गो में उत्प्रेक्षा का प्रयोग मिलता है।

उदात्त अलंकार के निरूपण में भी आचार्य मेरूतुङ्ग ने पर्याप्त रूचि प्रदर्शित की है। वस्तु की समृद्धि का वर्णन 'उदात्त अलंकार' है 'उदात्तं' वस्तुनः सम्पत् ।[2]

निम्नलिखित श्लोक उदात्त अलंकार का सुन्दर उदाहरण है -

'विश्वं विश्वं सृजसि रजसः शान्तिमापादयन् यः

सङ्कोचेन क्षपयसि तमः स्तोममुन्निह्नुवानः।

स त्वं मुञ्चन्नतिशयनतस्त्रायसे धूमयोने।

तद्देवः कोऽप्यभिनवतमस्त्वं त्रयीरूपधर्त्ता।।[3]

यहॉ पर धूमयोने अर्थात् मेघ को अखिल विश्व के सृष्टिकर्त्ता, अन्धकार समूह का विनाश करने वाले, विश्व को क्षय करने वाले, विश्व के पालनकर्ता

---

१ वही ३/१ उत्तरार्ध

२ काव्यप्रकाश १०/११५

३ जैनमेघदूतम् १/११

तथा अभिनव त्रिरूपधारी कहा गया है अर्थात् मेघ को समृद्ध तथा श्रेष्ठ बतलाया गया है, अतः यहाँ उदात्त अलंकार की स्पष्ट प्रतीति हो रही है।

अलंकार के निरूपण मे आचार्य मेरुतुङ्ग सिद्धहस्तता है। अनेक स्थलो पर कवि ने एक ही साथ कई अलंकारों को एक साथ उपस्थित कर अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। निम्नलिखित श्लोक में एक साथ छः अलंकारो का प्रयोग बहुत निपुणता के साथ किया है -

कश्चित्कान्तामविषयसुखानीच्छुरत्यन्तधीमा-
नेनोवृत्तिं त्रिभुवन गुरूः स्वैरमुज्झाञ्चकार।
दानं दत्वा सुरतरुरिवात्युच्चधामारुरुक्षुः
पुण्यं पृथ्वीधर-वरमथो रैवतं स्वीचकार।[१]

उपर्युक्त श्लोक मे 'कश्चित्कान्तां त्यक्त्वा रैवतं स्वीचकार' कहॉ गया है अतः उसके उपलक्षण के कारण यहाँ अवसर अलङ्कार स्पष्ट हो रहा है।

कान्तां त्यक्त्वा मे विषयसुख की इच्छा हेतु है इसलिए हेतु अलंकार है। यहॉ दो क्रियाओं का परस्पर सम्बन्ध है जैसे श्री नेमि को त्यागकर पर्वतश्रेष्ठ रैवतक को स्वीकार किया, अतः दीपक अलंकार है। पुण्यं पृथ्वीधर वरं इस कथन से जाति अलंकार भी परिलक्षित होता है। एक ही वाक्य से उसी पर से अन्य अर्थ के उद्भव के कारण श्लेषालङ्कार है। सुरतरुरिव में उपमा अलंकार भी है।

इस प्रकार उपर्युक्त श्लोक में कवि ने एक ही श्लोक में कई अलंकारों को बहुत निपुणता के साथ समाहित किया है।

---

१ जैनमेघदूतम् १/१

ऐसा ही एक श्लोक देखा जा सकता है, जिसमे एक साथ आठ अलङ्कारो का आचार्य ने सुनियोजन कुछ इस ढंग से किया है जिससे उस श्लोक का मूलभाव और बाह्य शिल्प किञ्चिदपि नष्ट नहीं होने पाया है- यथा-

वाता वाद्यध्वनिमजनयन् वल्गु भृङ्गा अगायं -

स्तालान् दध्रे परभृतगणः कीचका वंश्कृत्यम् ।

वल्लयो लोलैः किशलयकरैर्लास्यलीलां च तेनु-

स्तद्भक्त्येति व्यरचयदिव प्रेक्षणं वन्यलक्ष्मीः।[१]

यहाँ पर 'वनलक्ष्मी' आदि अप्रकृति से प्रकृति 'वायु ही' जिसमें वादक है, भृंग जिसमे मधुर गीत गा रहे है, आदि की उपमा दी जाने के कारण निदर्शना अलङ्कार; लताओं का नर्तकी के समान नृत्य करने के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार; किशलय और कर में अभेद होने के कारण रूपक अलङ्कार 'तेनुस्तद्भक्त्येति' इस क्रिया का एकत्व होने के कारण दीपक अलङ्कार है, श्लोक के पूरे भाव मे उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार; 'वनलक्ष्मी' इस श्लेषयुक्त विशेषणो द्वारा अप्रकृत कथन होने से समासोक्ति अलङ्कार है। इस प्रकार आचार्य ने एक साथ कई अलङ्कारों का प्रयोग सफलता पूर्वक किया है।

आचार्य मेरुतुङ्ग कल्पना के उत्कृष्ट कलाकार हैं, इन्होंने शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार के प्रयोग में अपनी अनूठी कल्पना की अभिव्यक्ति किया है। श्लेष अलङ्कार का सर्वाधिक प्रयोग कवि के पाण्डित्य का सूचक है। किन्तु कही-कही श्लेष के प्रयोग से इतिवृत्त की स्वभाविकता में व्याघात उत्पन्न हुआ है, परन्तु इससे काव्य की भाषा एवं स्वरूप पर कहीं भी भाव भंगता या क्रमभंगता नहीं आ पायी है।

---

१ जैनमेघदूतम् २/१४

निष्कर्षतः आचार्य मेरुतुङ्ग ने उन सभी अलङ्कारो को अपने काव्य मे स्थान दिया है जो अलङ्कार साहित्यशास्त्र के प्रमुख अलङ्कार है। इन अलङ्कारो के प्रयोग से काव्य की सुन्दरता और भी निखर गई है।

(घ) छन्द

सम्पूर्ण सृष्टि लय मे बॅधी हुई है। पृथ्वी सूर्य आदि सभी ग्रहो मे गति, लय है। यह लय सूक्ष्म से स्थूल तक है। मनुष्य के भावो मे भी लय होती है। इस लय की अभिव्यक्ति छन्द से होती है।

हमारे साहित्यचार्यों ने विभिन्न प्रकार के शृङ्गार, वीर, शान्त, हास्य, करूण आदि रसो मे विभिन्न प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है। जो कुशल कवि है वह रस और परिस्थितियों के अनुकुल तथा भावो के वातावरण की सृष्टि के लिए विभिन्न प्रकार के छन्दो का प्रयोग करता है।

आचार्य मेरूतुङ्ग ने भी अपनी कृति में रस और भावो के अनुसार छन्द का प्रयोग किया है जिसका नाम है मन्दाक्रान्ता। मन्दाक्रान्ता छन्द किसे कहते है। तथा इसके विषय में विभिन्न आचार्यो ने क्या कहा है? इस पर बहुत संक्षेप मे जानना आवश्यक है।

छन्दशास्त्र आद्य ग्रन्थ 'पिङ्गलछन्दः सूत्रम्' मे मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया गया हैः-

मन्दाक्रान्ता म्भौ नतौ त्गौ ग् समुद्रर्त्तुस्वराः।[१]

आचार्य भरत ने मन्दाक्रान्ता को "श्रीधरा" नाम से सम्बोधित करते हुए इसका लक्षण इस प्रकार दिया हैः-

चत्वार्यादौ च दशमं गुरूण्यथ त्रयोदशम्

चतुर्दशं तथा पञ्च एकादशमथापि च।

यदा सप्तदशे पादे शेषाणि च लघून्यपि

---

१ पिङ्गलछन्दाःसूत्रम् ७/११

भवन्ति यस्मिन्सा ज्ञेया श्रीधरा नामतो यथा[१]।।

सुवृत्ततिलक मे कवि क्षेमेन्द्र ने मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण देते हुए लिखा है कि सप्तदश अक्षरो वाले इस वृत्त मे चार, छः एवं सात अक्षरो पर विरति होती हैः-

चतुःषट्सप्तविरतिवृत्तं सप्तदशाक्षरम्

मन्दाक्रान्ता मभनतैस्तगगैश्चाभिधीयते।[२]

श्री भट्टकेदार विरचितम् 'वृत्तरत्नाकार' मे मन्दाक्रान्ता का स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित किया गया हैः-

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत् ।

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण मे क्रम से मगण, भगज, नगण दो तगण और दो गुरू हो उसे 'मन्दाक्रान्ता' छन्द कहते हैं।[३]

उपर्युक्त सभी ग्रन्थो के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुॅचते हैं कि मन्दाक्रान्ता १७ अक्षरो से युक्त होता है अर्थात चारो चरणों मे १७-१७ अक्षर होते है। उनमे प्रथम, चतुर्थ, दशम, ग्यारहवाँ, तेरहवॉ, चौदहवॉ, सोलहवॉ एवं सत्रहवाँ अक्षर गुरु तथा शेष अक्षर लघु होते है। गणों के आधार पर इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि इसमें मगण, भगण नगण, दो तगण और दो गुरू होते हैं।

मगण भगण नगण तगण तगण गुरू

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

---

१ नाट्य शास्त्रम् १५/७६,७७

२ सुवृत्ततिलकम् १/३५

३ वृत्तरत्नाकर ३/९५ पृ. सं. १४४

आचार्य मेरूतुङ्ग ने अपनी प्रतिभा द्वारा मन्दाक्रान्ता छन्द मे अपनी स्वतन्त्र कविकल्पना से जैनकथा को रचकर काव्य जगत को एक नया आयाम दिया है। जैसा कि मन्दाक्रान्ता का लक्षण पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिया गया है उसका पूर्णतः आचार्य ने पालन किया है तथा मन्दाक्रान्ता छन्द में उपनिबद्ध काव्य का प्रत्येक श्लोक भी छन्द रचना की कसौटी पर परिपक्व सिद्ध होता है। कतिपय उदाहरण दर्शनीय है -

मगण भगण नगण तगण तगण गुरू

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

कश्चित्का न्तामवि षयसु खानीच्छु रत्यन्त धीमा

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ ऽऽ

नेनोवृ त्तिंत्रिभु वनगु रूःस्वैर मुज्झाञ्च कार

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

दानंदत्त वासुर तरुरि वात्युच्च धामारु रुक्षः

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

पुण्यं पृथ्वीधर वरम थोरैव तंस्वीच कार[१]।।

ऽऽऽ ऽ।। ।।। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ

उपर्युक्त श्लोक मे प्रत्येक चरण १७ अक्षरों का है, जिसमें पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, दसवाँ, ग्यारहवाँ, तेरहवाँ, चौदहवॉ, सोलहवॉ एवं सत्रहवॉ वर्ण गुरु है, शेष वर्ण लघु है। यथा-

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४

---

१ जैनमेघदूतम १/१

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ

क/श्चि/त/का न्ता/म/ति प/य/सु खा/ नीच/ छु / रत् /यन्

१५ १६ १७

। ऽ ऽ

त/ धी/ मान्

कवि कालिदास के अनुसार मन्दाक्रान्ता छन्द में अन्त के दो अक्षर गुरु और प्रथम चार, द्वितीय छः तथा द्वितीय सात वर्णो पर विराम होना चाहिए।[१]

कवि मेरूतुङ्ग के भी काव्य में इस बात का निदर्शन मिलता है। यथा

कश्चित्कान्ता (४)/ मविषयसुखा (६)/ नीच्छुरत्यन्तधीमा (७)/ प्रत्येक श्लोक मन्दाक्रान्ता के सुस्पष्ट लक्षणों द्वारा विभूषित काव्य की शोभा बढ़ाने तथा रसास्वादन कराने मे पूर्णतः सक्षम है। काव्य की नायिका राजीमती अत्यधिक शोक से पीड़ित है तथा वह बार-बार मूर्च्छित हो जाती है और अपने विषाद एवं पीड़ा को अत्यधिक मन्द-मन्द गति से रूक-रूक कर अपने सन्देश को मन्दाक्रान्ता छन्द मे निबद्धत कर मेघ से सुनाती है तथा उसे जाकर कहने के लिए प्रेरित करती है। आचार्य ने मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग कर अपने काव्य को जीवन्त बना दिया है। क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हुए कही भी काव्य की मधुरता मे कमी नहीं आने दी गयी है।

---

[१] श्रुत बोध १८

षष्ठोऽध्यायः

काव्य सौन्दर्य

प्रकृति चित्रण, बिम्बयोजना, उपमान

काव्यसौन्दर्य

(१) प्रकृति चित्रण -

प्रकृति मानव की शिक्षिका है, भावनाओं की पोषिका है, सुख-दुःख की सङ्गिनी है एवं अस्तित्व की धात्री है। मानव जीवन स्वयं प्रकृति के विशाल जीवन का एक अङ्ग है। फिर कवि तो प्रतिभासम्पन्न एवं कल्पनाशील होने के कारण प्रकृति से कैसे दूर रह सकता है वह प्रकृति की सहायता से ही अपनी कल्पना को साकार रूप प्रदान करता है।

समस्त संस्कृत वाङ्मय मे प्रकृति वर्णन अपना विशेष महत्त्व रखता है। आचार्य मेरुतुङ्ग कृत जैनमेघदूतम् में भी प्रकृति का भव्य रूप दृष्टिगत होता है। कवि ने प्रकृति का ललित तथा सुकुमार दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है। अतः काव्य मे प्रकृति का सौम्य रूप सर्वत्र विद्यमान है। कवि को प्रकृति से अत्यधिक अनुराग है तभी तो उसने सुरतरु के सदृश ऊँचा जो रैवतक पर्वत है उसको तपस्या स्थली के रूप में स्वीकार किया है।

आचार्य मेरुतुङ्ग की प्रकृति वर्णन के कुछ वैशिष्ट्य है- कवि ने प्रकृति के उद्दीपनात्मक स्वरूप को अपनाया है, मानवीय संवेदना को स्पष्ट करने के लिए उनके समान घटनाओ को प्रकृति में ढूढा है, कवि ने तीनों ऋतुओ का बडा ही स्वभाविक एवं सजीव वर्णन किया है, किसी भी वातावरण का वर्णन करने में प्रकृति का आश्रय लिया हैं। कवि ने प्रकृति से जो बिम्ब चयन किया है वे मानवीय भावनाओ के साथ सामानान्तर चलते हैं और मानवीय भावनाओ को अभिव्यक्ति करने में सहायक है।

कवि ने तीनों ऋतुओं वर्षाऋतु, बसन्तऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु का बड़ा ही स्वभाविक एवं सजीव चित्रण किया है। सर्वप्रथम कवि ने वर्षा ऋतु का

सजीव चित्रण किया है। वर्षाकाल के काले काले मेघों को देखकर किसका मन भाव-विभोर नही हो उठता अतः इन नवीन मेघो के दर्शन से सहजतया ही मन के भाव उद्दीप्त हो जाते है। काव्य के प्रथम सर्ग में ऐसे ही दृश्यो को देखकर पति के वियोग से दुःखित राजीमती के हृदय में तीव्र उत्कण्ठा जागृत होती है और वह सोचने लगती है कि वर्षाकाल के नये नये ऊँचे मेघो को देखकर युवतियो के मन में अपने प्रिय के प्रति तथा युवको के मन में अपनी प्रेमिका के प्रति सहजतया उत्कण्ठा उत्पन्न होती है।[१]

कवि ने बाह्य तथा अन्तः प्रकृति के समन्वय से काव्य की शोभा को द्विगुणित कर दिया है। मानवीय संवेदना को स्पष्ट करने के लिए कवि ने उनके समान घटनाओ को प्रकृति में ढूढा है। मानवीय संवेदना को स्पष्ट करने वाले एक अन्तः प्रकृति का रुचिर रूप देखिए- वर्षाकाल में स्वभाव से ईर्ष्यालु विरहिणी स्त्रियॉ अपने शोक को उत्पन्न करने वाले मेघ से जो ईर्ष्या करती है वह ठीक ही है क्यो कि मेघ के नीलतुल्य श्यामवर्ण वाला होने पर वे भी मुख को श्याम बना लेती है, जब मेघ बरसता है तो विरहिणी स्त्रियॉ भी अश्रु बरसाती है, जब वह गरजता है तो वे भी चातुर्यपूर्ण कटु विलाप करती है और जब मेघ विजली चमकाता है तो विरहिणी स्त्रियाँ भी उष्ण निःश्वास छोड़ती है।[२]

जैनमेघदूतम् की प्रकृति प्रीति की साकार मूर्ति है। प्रकृति के सभी पदार्थ भावमय एवं चेतनामय हैं। वे मानवीय भावों से ओत-प्रोत है। मेघ अपने मुक्त जल से दावानल से दग्ध वन को धीरे-धीरे शान्त करता हैं इसीलिए राजमती भी अपने स्वामी के पास उसके द्वारा सन्देश भेजकर उनके

---

[१] जैनमेघदूतम् १/३
प्रत्यावृत्ते कथमपि ततश्चेतने दत्तकान्ता
कुण्ठोत्कण्ठं नवजलमुचं सानिदध्यौ चदहयौ १/३

[२] वही १/६

हृदय को मन्द-मन्द गति से संतोष देना चाहती है। इस प्रकार यह मेघ करूणा का सागर है, यह दीन दुखियों के दुःखों को सुनता है, अपने सत्त्व से पृथ्वी को सींचते हुए अखिल विश्व की सृष्टि करता है, अन्धकार समूह का विनाश करता है। अतः यह मेघ अतिनम्र कोई अभिनव त्रिरूपधारी देव है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति को सजीव पात्र की भाँति वर्णन किया है।

कवि ने वर्षाकालीन मेघ का चित्रण करने के पश्चात् वसन्त ऋतु का हृदयग्राही बिम्ब उभारा है। वसन्त के आने पर नये नये कपोल एवं सुन्दर सुन्दर पत्तों से मुक्त वृक्ष राग-पराग रूपी लक्ष्मी के साक्षात् निवास की तरह शोभित हो रहे मन मे राग को उत्पन्न करने वाले फूलो की रज से आकाश को व्याप्त करती हुई कमियों के लिए प्रिय मलयाचल की हवाएं मन्द मन्द बह रही है अर्थात् ऐसा लग रहा है कामदेव के घोडे स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करते हुए काम रूपी फूलों के राग रूपी धूल से पूरे आकाश को व्याप्त कर रहे है।

वसन्त के आगमन पर पर्वत की शोभा अवर्णनीय प्रतीत हो रही है -

रेजुः क्रीडौपयिकगिरयो राजातालीवनाढ्याः

श्यामाः कामं किशलितनगा निष्क्रमोचापराताः

सन्नह्यन्तः स्मरनरपतेः केतनव्रातकान्ताः

सिन्दूराक्ता इव करटिनो वर्ण्यसौवर्णवर्णाः।[१]

अर्थात् वसन्त के आने पर वनों के कारण काले दीखने वाले क्रीडायोग्य पर्वत कामरूपी राजा के युद्ध के लिये तैयार हाथियों की तरह शोभित हो रहे हैं। पर्वत पर उगे ताड़ के वृक्ष ही उनकी ध्वजाएँ हैं वृक्षों के

---

१ जैनमेघदूतम् २/३

नवीन लाल लाल पत्ते ही उनके शरीरपर लिप्त सिन्दूर एवं वर्णनीय सुनहरे केले की पंक्तियॉ ही उनके दॉत पर मढा हुआ सोना है। वसन्त ऋतु के सुहावने प्राकृतिक दृश्य केवल मानव हृदय को नहीं वरन् पशु-पक्षियों तथा अन्य अचेतन वस्तुओ मे भी प्रेम विह्वलता और अपूर्व उत्कण्ठा का संचार करते हुए दिखाई देते हैं। मनोहर कूजन करते हुए राजहंस तलाबो मे चारों तरफ खेल रहे है, जो काम रूपी राजा के द्वारा शत्रु नगरी मे प्रवेश के समय बजाये जाने वाले शंखों की तरह लग रहे हैं तथा एक आम्रवृक्ष से दूसरे आम्रवृक्ष पर जाने वाली तोतो की पंक्तियॉ नये नये पत्तो से बॉधी गयी वन्दनवार की शोभा को धारण कर रही है।

चारो तरफ प्रकृति की ऐसी रमणीय छटा देखकर मानव, पशु-पक्षी तो अपना सूझ-बूझ खोये ही रहते है। यति लोग भी ऐसी वसन्त ऋतु की सम्पदा को देखकर डरने लगते है कि कहीं कामदेव हम पर आक्रमण न कर दे। ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव ने भी उनके डर का कारण समझ लिया है और अपनी सेना को तैयार कर विजय की दन्दुभि बजाकर यतियों को ललकार रहा हैं। कवि को प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं के मनोरम सौन्दर्य मे कामदेव धनुष, बाण, कटार आदि से सुसज्जित युद्ध के लिए तैयार दिखलाई देता है। वसन्त में खिलने वाले अर्ध विकसित फूलों के भीतर छिपी हुई तथा कुछ दीखने वाली पीली पीली केसरों वाली कामदेव के कन्धे पर बॅधे हुए तरकसों मे रखे हुए, दीप्त तथा सुन्दर स्वर्णमुख वाले वाणों के समान सुशोभित हो रही है।[१] नगर के बाहरी बागों में, मूल में तथा शिखर भाग मे सीधे वृक्षो की तनों से लिपटी हुई मध्य भाग में फलों के गुच्छों से लदी हुई तथा अपने उत्कट परिमल गन्ध के कारण भौरों के समूह से घिरी

---

१ जैनमेघदूतम् २/८

लताएं धनुष और बाण चढाए हुए कामदेव की शोभा कोप्राप्त हो रही है।[१] शिखर पर घिरे हुए भ्रमर समूहरूपी शिरस्त्राण रूपी बाहो मे फल रूपी ढालो को धारण किये बल्कल रूपी कवच को पहने हुए पत्तो के अंकुरण रूपी मुस्कान एवं शुको के शब्द रूपी किलकिलाहट से युक्त वृक्ष, धनुष बाण से युक्त उत्कृष्ट योद्धा की तरह शोभित हो रहे है।[२]

इस प्रकार आचार्य ने वसन्तु ऋतु का जैसा स्निग्ध एवं हृदयहारी वर्णन किया है वैसा अन्यत्र पाना दुर्लभ है। बाह्य प्रकृति का वर्णन करते समय ऐसा प्रतीत होता है उनकी अन्तरात्मा प्रकृति के साथ तदाकार हो गई है। एक स्थानपर वन मे आये हुए श्रीकृष्ण और श्री नेमि की सेवा मे वन लक्ष्मी ने नृत्य गीत का आयोजन किया हैं। उस समय की शोभा का कवि ने कितना सजीव चित्रण किया है-

वाता वाद्यध्वनिमजनयत् वल्गु भृङ्गा अगायं-
स्तालान् दध्रे परभृतगणः कीचका वंशकृत्यम् ।
वल्ल्यो लोलैः किशलयकर्लास्यलीलां च तेन-
स्तद्भक्त्ये व्यरचयदिव प्रेक्षणं वन्यलक्ष्मीः।[३]

अर्थात् उस समय वन की शोभा ऐसी लग रही थी मानो वन्यलक्ष्मी ने उन दोनो की सेवा में नृत्यगीत का आयोजन किया हो। जिसमें वायु वाद्य यन्त्रो को बजा रहा है, भौंरे सुमधुर गीत गा रहे हो, कोयलों का समूह ताल दे रहा हो, छिद्रयुक्त बाँस वंश वर्णन कर रहे हैं तथा लताएँ अपने हिलते हुए पत्तो से नृत्य कर रही है।

---

१ जैनमेघदूतम् २/९
२ जैनमेघदूतम् २/१०
३ जैनमेघदूतम् २/१४

कवि ने वन लक्ष्मी की सुन्दरता का वर्णन किसी रमणीय युवती से कम नही किया है-

ताराचारिभ्रमरनयनपद्मवद्दीर्घकास्या

किञ्चिद्धास्यायितसितसुमा शुङ्गिकाव्यक्तरागा।

ताभ्यां तत्र प्रसवजरजः कुङ्कुमस्यन्दलिप्ती

नानावर्णच्छ निवसना प्रैक्षि विनेयलक्ष्मीः।[१]

अर्थात् भ्रमररूपी पुतलियो वाले कमल ही जिसके नेत्र है, कमलों से युक्त वापियाँ ही जिसके मुख है उज्ज्वल पुष्प ही जिसकी मुस्कुराहट है, फलों से गिरता हुआ पुष्परज ही जिसका कुङ्कुमलेप है और नाना प्रकार के पत्ते ही जिसके वस्त्र है, इस प्रकार की वह वनलक्ष्मी है।

कवि ने वर्षाऋतु, वसन्तऋतु का वर्णन करने के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया है। ग्रीष्म ऋतु भी मानवीय भावनासे ओत-प्रोत है। ये भी वसन्त ऋतु की भाँति श्री नेमि और श्रीकृष्ण का भव्य स्वागत करती हैं। ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठमास के आगे कर रसदार फलो से युक्त आम्र वृक्ष को नम्रीभूत शाखा रूपी भुजा से एवं पृथिवी पर गिरे हुए आम्र फलों से उन दोनों का स्वागत किया।[२]

कवि की असामान्य काव्य प्रतिभा इस काव्य के अक्षर अक्षर में मुखरित होती हुई दिखाई देती है। काव्य में एक तरफ प्रकृति के ललित रूप का दर्शन होता है दूसरी तरफ प्रकृति का कठोर रूप का दर्शन होता हैं। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रचण्ड धूप से परेशान लोगों का कवि ने कैसा स्वभाविक वर्णन किया है- ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के प्रचण्ड धूप से नदी के तट का बालू

---

१ जैनमेघदूतम् २/१५

२ जैनमेघदूतम् २/३६

अत्यधिक गरम हो जाता है जो मार्ग में चलने वाले पथिको को जला देता है। प्रतापी सूर्य के उष्ण किरणो से कमलों के निवास स्थान तालाब सूख गये हैं। ग्रीष्म में ताप के विस्तार से पीडित लोगो के हाथों से जलकण वर्षा एवं वायु के लिए डुलाये जा रहे पंखे ऐसे शोभित हो रहे है मानो शीतलता रूपी बडे वृक्ष को तोडने के लिए लाखों शरीर धारण करने वाले धूप रूपी मतवाले हाथी के मदकण टपकाने वाले चञ्चल कान हों -

तापव्यापाकुलितजनतपञ्चशाखे, तुषारान्
संवर्षद्भिः पवनतुलितैस्तालवृन्तैर्विरिजे।
धर्तुः शैल्योन्नततरुभिदे वर्ष्मलक्षाणिधर्म-
व्यालस्येव स्रुतमदकणैः कर्णतालैर्विलोलैः[१]।।

काव्य मे विभिन्न प्रकार के बिम्बों का प्रयोग प्राप्त होता है। कवि ने जो भी बिम्ब चयन किया है वे मानवीय भावनाओं के साथ समानान्तर चलते है। ऐसे ही ध्वनि बिम्ब का एक अनूठा निदर्शन देखिए, जिसमें प्रकृति भी श्रीकृष्ण की पत्नियो के साथ नाटक के शोभावर्द्धन मे सहायक होते है। ऐसा प्रतीत होता कि श्री नेमि श्रीकृष्ण की पत्नियो से घिरे हुए नवरसों से युक्त नाटक कर रहे है। ऐसा तथा उस नाटक मे रमणियों द्वारा उछाले गये जल से उत्पन्न ध्वनि मृदङ्ग की ध्वनि है, लहरों के झोकों से हिलती हुई कमलिनी अच्छी प्रकार से नृत्य करने वाली नर्तकी है एवं भ्रमर का गुञ्जार कानों को प्रिय लगने वाला गीत है।[२]

प्रकृति में सर्वत्र स्नेह, करूणा, आतुरता, विह्वलता, संवेदना और सुकुमार आदि मानवीय भावनाओं का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। एक

---

१ जैनमेघदूतम् २/३४
२ जैनमेघदूतम् २/४४
तासां लीलोल्ललनजनिता ...... शुद्धसङ्गीतरीतिः। २/४४ जै.

श्लोक मे कवि ने वात्सल्य प्रेम का कितना नवीन एवं हृदयहारी चित्र उपस्थित किया है-

त्यक्त्वा नाग दृढितपरमप्रेम हस्तेन हस्तं

वद्धवा बन्धोर्गज इव गजस्यैष बम्भ्रम्यभाणः

वीक्षाञ्चक्रे सरससरसीः सस्मितं पाणिपद्मै-

राम्भीनर्मानिव कलरुतान् पत्रिणः खेलयन्ती। [१]

अर्थात् हे मेघ। उन श्रीकृष्ण ने हाथी के हाथ को छोड़कर अपने प्रेम को और दृढ करते हुए, श्रीनेमि के हाथ से हाथ मिलाकर घूमते हुए हँसते हुए तलाबो को देखा जिसमें हवा के झोंकों से हिलते हुए कमलों के साथ कलरव करते हुए जलपक्षी खेल रहे थे। वे ऐसे लग रहे थे जैसे तलाब रूपी मॉ कमल रूपी हाथो से रोते हुए बच्चों की तरह शब्द करते हुए पक्षियों को खिला रही हो।

प्राकृतिक सौन्दर्य तथा मानवीय सौन्दर्य दोनो का ही आचार्य ने अपने काव्य मे बढ़ चढकर वर्णन किया है। इनके अद्भुत काव्य की प्रशंसा कहां तक की जाय।

कवि की बिम्बसंयोजना भी उच्चकोटि की है। बिम्ब संयोजना का एक रमणीय उदाहरण दर्शनीय है, जिसमें श्री नेमि के अंगों की सुन्दरता का वर्णन है-

पद्मं पद्भ्यां सरसकदलीकाण्ड उर्वोर्युगेन।

स्वर्वाहिन्याः पुलिनममलं नेमिनः श्रोणिनैव।

शोणो नाभ्याञ्चति अदृशतां गोपुरं वक्षसा च

जैनमूघदूतम् २/३९

छुद्रो शाखानवकिशलयो बाहुपाणिद्वयेन।[१]

अर्थात् कमल उनके चरणो के, कदली स्तम्भ उनकी उरूओ के, गङ्गा का तट उनकी कटि के, शोण उनकी नाभी के, प्रतोलीद्वार (तोरण) उनके वक्ष के, कल्पवृक्ष की शाखा उनकी भुजा के और उसके किसलय उनके करों के पूर्णचन्द्र उनके श्रीमुख के, कमल पत्र उनके नेत्रों केपुष्प सुगन्ध उनके मुखामोद के और उत्तम रत्न उनके शरीर के तुल्य है।

पूर्णन्दुः ...... उपमाधिक्यदोषस्तथापि।

नेमि के सुन्दर वदन से पूर्णचन्द्र सदृश्य प्राप्त करता है। नेमि के नेत्रों से कमल-दल सदृश प्राप्त करता है। नेमि के शरीर से रिष्टरत्न सदृशता प्राप्त करते है। अगर विद्वज्जन कहीं भी वर्णनीय पदार्थ समूहो की भगवान के अङ्गों द्वारा उपमा देते हैं तो भी उपमाधिक्य दोष होता है?

कवि ने अनेक स्थलो पर सुन्दर कल्पना का परिचय दिया है। ऐसी ही एक अदभुत कल्पना को देखिए जिसमें प्रकृति मनुष्य की तरह रोते पश्चात्ताप करते हुए दिखाई देती है। जलक्रीडा कर निकले हुए उन भगवान् श्री नेमि के कर्णाभूषण बने हुए कमल जलबूंदों को टपकाते हुए एवं गुञ्जार करते हुए भ्रमरो से युक्त होकर ऐसे लग रहे थे, मानों वे रोते हुए पश्चात्ताप कर रहे हों, कि 'हाय मै प्रभु के नेत्रो की स्पर्धा करने के कारण पाप का पात्र बन गया हूँ-

एक अन्य स्थल पर कवि ने श्री नेमि के श्यामवर्ण शरीर के प्रत्येक अङ्ग से हो रहे जलस्राव को अनेक प्रकार से कल्पना किया है-

दानच्येतिर्द्विप इव झरन्निर्झरो वाञ्जनाद्रिः

पिण्डीभूतं वियदिव मनाक् शारदं वर्षदब्दम् ।

निन्ये सर्वापघननिपतन्मेघपुष्पोऽञ्जनाभः

---

१ जैनमेघदूतम् १/२३

श्रीमान्नेमिः सपरिवृढतां फुल्लकङ्केल्लिमूलम् ।।[१]

भगवान श्री नेमि एक पुष्पित अशोक के वृक्ष की मूल में बैठ गये। श्यामवर्ण वाले श्रीनेमि के प्रत्येक अङ्ग से जलस्राव हो रहा था, ऐसा लग रहा था मानो कोई मदस्रावी गज हो अथवा ऐसा अञ्जन पर्वत हो जिससे झरने बह रहे हो या शरद् ऋतु मे थोडा थोडा जल बरसाने वाले एकत्रित मेघो से युक्त आकाश हो।

इस प्रकार कवि की प्रत्येक कल्पना में प्रकृति के सुरम्य दृश्य दृष्टिगोचर होते है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति के बिना काव्य अधूरा रह जाता।

---

१ जैनमेघदूतम् ३/२

बिम्ब योजना

बिम्ब[१] बिम्ब का आविर्भाव कल्पना से होता है और बिम्बों से प्रतीक का। बिम्ब विधान कला का क्रिया पक्ष है जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है, तब बिम्ब उत्थित होते है और जब पुनः पुनः प्रयोग के कारण किसी बिम्ब का निश्चय अर्थ निर्धारण हो जाता है, तब प्रतीक का निर्माण होता है। अतः तात्त्विक दृष्टि से बिम्ब कल्पना और प्रतीक का मध्यस्थ बिन्दु है।

"बिम्ब विधान बहुत अंशों मे कलाकार की सहजानुभूति की अभिव्यक्ति की सफलता को प्रमाणित करता है और कलाकार की सौन्दर्यचेतना को भी द्योतित करता है। वस्तुतः विम्ब विधान कला का वह मूर्त पक्ष है जिससे कलाकार की भावना से श्लिष्ट सौन्दर्यानुभूति को वस्तु सत्य का संस्पर्श या तदगत सम्पृक्त आधार के साथ सादृश्याभास मिल जाता है"।[२] शायद इसीलिए पाश्चात्त्य सौन्दर्यशास्त्रियों तथा काव्याचार्यों ने बिम्ब विधान को कविकी अभिव्यंजना का अनिवार्य एवं निर्वैकल्पिक प्रसाधन माना है।

बिम्ब वस्तुजगत् के संसर्ग से मन में उत्पन्न अरूप भाव संवेदनों को रूप प्रदान करते है। इसके अतिरिक्त संश्लिष्ट एवं समृद्ध विम्ब अभिव्यंजना को रूप सज्जा और अलंकरण भी प्रदान करते है। काव्य मे बिम्ब की यह उपयोगिता है।

साधारण अर्थ में काव्यगत बिम्ब शब्दो द्वारा निर्मित चित्र है। शब्दों द्वारा चित्र खडा करना बिम्ब की मूलभूत विशेषता है। बिम्ब यथा तथ्य और

---

१ पंतकाव्य मे कला शिल्प और सौन्दर्य पृ. सं. २०-२१

२ सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व- डॉ० कु. विमल पृ. २०१

सर्वाङ्गीण होते हैं तथा एक अविच्छिन्न वस्तु व्यापार का प्रतिपादन करते है। बिम्ब अनेकार्थ व्यंजक होते है तथा काव्य के जीवन्त तत्त्व माने जाते है। अतः उत्कृष्ट कलाकृति योजित बिम्बो के द्वारा अपने क्षेत्र मे आयी हुई वस्तुओं को गेटे के कथनानुसार कंक्रीट युनिवर्सल बना देते हैं।

काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से बिम्ब योजना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैनमूघदूतम् मे आचार्य मेरुतुङ्ग ने बिम्बों का प्रयोग अत्यधिक कुशलता से किया है। इन्होने प्राकृतिक बिम्ब सामाजिक बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, गंध एवं स्पर्श बिम्ब आदि सभी प्रकार के बिम्बों को अपने काव्य मे स्थान दिया है। कवि ने अपनी कल्पना को बिम्बो के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान किया है इनके काव्य में काल्पनिक बिम्बो का आधिक्य है। कवि ने बिम्बों का चयन प्राकृतिक क्षेत्र से अधिक किया है। कवि ने जीवन के शाश्वत मूल्यो को बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया है। काव्य मे स्पष्ट और यथार्थवादी बिम्बों का प्राधान्य है। कवि ने सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूल भावों को बिम्बों के माध्यम से वर्णन किया है।

जैनमेघदूतम् के प्रथम सर्ग में एकस्थान पर ध्वनि बिम्ब प्रतिबिम्बित होता है-

नीली नीले शितिलपयन वर्षयत्यश्रुवर्षन्

गर्जत्यस्मिन् पटु कटु रटन् विद्ययत्यौष्ण्यर्मियन्।।[१]

उपर्युक्त श्लोक में मेघ का गरजना तथा विरहिणी स्त्रियों के चातुर्य पूर्ण कटु विलाप द्वारा ध्वनि बिम्ब व्यञ्जित होताहै।

निम्नलिखित श्लोकों में सामाजिक प्रतिबिम्ब की झलक मिलती है-

कृष्णो देशप्रभुरभिनवश्चाम्बुदः कालिमानं

---

१ जैनमेघदूतम् १/६

न्यध्यासस्ते तदवगमयाम्येनसैवार्जितेन।

तत्रैकोऽस्मत्पतिविरचिता भ्रेषपेषानिषेधा-

दन्योऽस्माकं गहनगहने विप्रयोगेऽग्निसर्गात् ।[1]

इसी प्रकार निम्न श्लोको मे श्री कृष्ण की पत्नियाँ श्री नेमि को पाणिग्रहण करने के लिए आग्रह करती है इसमें भी सामाजिक बिम्ब द्रष्टव्य है-

रूपं कामस्तव निशमयन् व्रीडितोऽभूदनङ्गो

लावण्यं चाबिभ ऋभुविभुर्लोचनानां सहस्रम् ।

तारूण्यश्रीव्यशिषदथ ते पुष्पदन्तौ शरद्व-

न्नेताऽरण्यप्रसवसमतां त्वं बिना स्त्रीरमूनि।।[2]

उत्तस्थेऽथो सपदि गदितुं वाग्मिसीमा सुसीमा

धीमन। पश्याकल इव गृही न प्रणाप्यः।

तत्वं तन्वन्नु गुरूगिरा स्वद्वितीयां द्वितीयां

प्राप्स्यस्यग्र्या विधुरिव कलाः सर्वपक्षे वलक्षे।[3]

प्रकृति बिम्ब से तो मानो पूरा काव्य ही भरा पड़ा है। प्रकृति से ग्रहीत सुन्दर बिम्बो का उदाहरण द्रष्टव्य है-

वानस्पत्याः कलकिशलयैः कोशिकाभिः प्रवातैः

स्तस्याराजन्निव तनुभृतो रागलक्ष्मीनिवासाः।

---

१ जैनमेघदूतम् १/५

२ जैनमेघदूतम् ३/८

३ जैनमेघदूतम् ३/११

उद्यन्मोहप्रसवरजसा चाम्बरं पूरयन्तोऽ

भीकाभीष्टा मलयमरुतः कामवाहाः प्रशंसुः।[१]

वसन्त के आने पर नये नये कपोलों एवं सुन्दर सुन्दर पत्तो से मुक्त वृक्षराग पराग रूपी लक्ष्मी के साक्षात् निवास की तरह शोभित हो रहे थे। मन में राग (काम) की उत्पन्न करने वाले फूलों की रज अर्थात पुष्प पराग कणों से आकाश को व्याप्त करती हुई कामियो के लिए प्रिय, मलयाचल की हवाये स्वेच्छा पूर्वक बह रही थी अर्थात् ऐसा लग रहा था कि कामदेव के घोडे स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए काम रूपी फूलो के राग रूपी धूल से पूरे आकाश मण्डल को व्याप्त कर रहे हैं।

संक्रीडन्तः .... दलकिशलयामुक्तमङ्गल्यदाम्नः।।[२]

मनोहर कूजन (शब्द करते हुए राजहंस तालाबों में चारो तरफ खेल रहे थे, जो काम रूपी राजा के द्वारा शत्रुनगरी में प्रवेश के समय बजाये जाने वाले तोतो की पक्तियॉ नये नये पत्तो से बाँधी गई वन्दनवार की शोभा को धारण कर रही थी। जैनमेघदूतम् में कवि ने गंध एवं स्पर्श बिम्ब का भी प्रयोग किया है। निम्न श्लोक मे गंध बिम्ब द्रष्टव्य है -

ध्यात्वैवं सा नवधनधृता भूरिवोष्णायमाना

युक्तायुक्तं समदमदनावेशतोऽविन्दमाना।

अस्त्रासारं पुरु विसृजती वारि कादम्बिनीव

हीना दुःखादथ दकमुचं मुग्धवाचेत्युवाच।।

स्पर्श बिम्ब का प्रयोग निम्नलिखित श्लोक में देखिए-

---

१ जैनमेघदूतम् २/२

२ जैनमेघदूतम्

व्योमव्याजादहनि कमनः पट्टिकां सम्प्रमृज्य

स्फूर्जल्लक्ष्मालकशशिखतीप्रात्रमादाय रात्रौ।

रुग्लेखिन्या गणयति गृणान् यस्य नक्षत्रलक्षा-

दङ्कास्तन्वन्न खलु भवतेऽद्यापि तेषामिवोक्ताम् ।।

अर्थात् ब्रह्मा प्रतिदिन प्रभुनेमिनाथ के गुणगणन मे ही व्यस्त रहते हैं दिन मे आकाश रूपी पट्टिका को मार्जित कर रात्रि में प्रकाशित चन्द्रमा की कलङ्करूपी स्याही और चन्द्रमा रूपी दावात तथा उसकी किरण रूपी लेखनी से तारों रूपी अंको के लिखने के व्याज से प्रभु के गुणों को गिनते हैं लेकिन आज भी उन गुणों की इयत्ता नहीं प्राप्त कर सके।

(३) उपमान

आचार्य मेरूतुङ्ग ने जैनमेघदूतम् मे जीवन के तथ्य मूल्य को अधिक गहराई से समझाने के लिए तथा उसके सौन्दर्य बोध के उत्कर्ष रूप दिखाने के लिए अप्रस्तुत विधान का प्रयोग किया है। कवि ने अपने काव्य मे दार्शनिक प्राकृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक आदि विभिन्न प्रकार के उपमानो का प्रयोग किया है। कवि ने अप्रस्तुत विधान का प्रयोग व्यावहारिक एवं जन जीवन से ग्रहण किया है अधिकांश अप्रस्तुत विधान का प्रयोग पौराणिक तथान नवीन दोनों रूपों में मिलता है। इस प्रकार स्थूल उपमानों का भी प्रयोग मिलता है।

दार्शनिक उपमानो का प्रयोग आचार्य मेरूतुङ्ग ने अनेक स्थलों पर अत्यन्त निपुणता से किया है। इसप्रकार के अप्रस्तु विधानों में विचित्र प्रकार की सजीवता की झलक आती है।

निम्नलिखित श्लोको मे दार्शनिक उपमानों का प्रयोग किया गया हैः-

अन्या लोकोत्तर---------------- बबन्ध[१]

एक दूसरी कृष्ण की पत्नी ने हॅसते हुए संक्षेप में यह कहते हुए कि-हे लोकोत्तर। तुम मूर्तिमान् रागपाश से बॅधे होने पर मोक्ष को कैसे प्राप्त करोगे? लाल कमलो की माला को मेखला के बहाने श्री नेमि के कटि प्रदेश में ऐसे बॉध दिया जैसे प्रकृति आत्मा को बॉध लेती है।

यहॉ पर कवि ने कितनी सुन्दर दार्शनिक उपमा प्रस्तुत की है। कि जिस प्रकार प्रकृति आत्मा को बाँध लेती है, उसी प्रकार श्री कृष्ण की पत्नी ने उस माला को श्री नेमि के कटिप्रदेश में बॉध दिया है।

---

१ जैनमेघदूतम् - २/२१

निम्नलिखित श्लोक मे अत्याधिक अप्रस्तुत विधान का प्रयोग हुआ है-

पत्याकूतं यदुपतिगृहाः संविदाना मदाना-

माद्यं बीजं निवसितश्लक्ष्णपत्तोर्ववर्ण्याः।

दृक्कोणेन त्रिभुवनमपि क्षोभयन्त्यः परीयुः

कर्मापेक्षाः परमपुरुषं मोहसेनाः प्रभुं तम् ।।२४३।।[१]

श्री कृष्ण की पत्नियों ने अपने पति का संकेत पाते ही मदों के मूल कारण उन प्रभु श्री नेमि को उसी प्रकार घेर लिया जैसे कर्म की उपेक्षा रखने वाली मोहसेना आत्मा को घेर लेती है।

काव्य मे प्राकृतिक उपमानो का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर मिलता है -

लाग्नेऽभ्यासीभवति दिवसे दारकर्मण्यकर्मा-

यारभ्यन्त प्रति यदुग्रहं व्यक्तकृत्यान्तराणि।

वासन्ताहे प्रतितरु यथा पल्लवानि प्रकामं

पुष्पोत्पाद्यन्यखिलगलितप्रत्नपत्रान्तराणि।।३।२५।।[२]

लग्न के दिन जैसे-जैसे नजदीक आने लगे वैसे ही सभी यादवों के घर मे अन्य कार्यो को छोड़कर उसी प्रकार विवाह से सम्बन्धी कार्य होने लगे जैसे बसन्त के आने पर वृक्षों से पुराने पत्ते गिरने लगते हैं और नये पत्ते एवं पुष्प वृक्षो मे लगने लगते हैं।

कवि ने अन्य श्लाको में भी प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है -

दुग्धं स्निग्धं ------------------मां ययाचे।३/२३।।[३]

---

१ जैनमेघदूतम् २/४३

२ जैनमेघदूतम् ३/२३

३ जैनमेघदूतम् ३/२५

तस्यां श्रेणिद्वयसपयसि---------------- नेमिम् ।।२।४२[१]

कटि भाग पर्यन्त जलवाली, खिले कमलो वाली, रत्नजटित दृढ़ स्वर्ण सीढ़ियो वाली उस दीर्घिका 'बावली' मे श्रेष्ठ सुन्दरी समूह के साथ हर्ष से खेलते हुए श्री नेमि का श्रीकृष्ण ने उसी प्रकार एक चक्कर लगाया जैसे चन्द्रमा तारा समूह के साथ मेरू का चक्कर लगा रहा हो।

---

१ जैनमेघदूतम् २/४२

सप्तमोऽध्यायः

जीवन दृष्टि एवं जीवन मूल्य

जीवन दृष्टि एवं जीवन मूल्य

आचार्य मेरुतुङ्ग का साहित्य क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। आचार्य मेरूतुङ्ग जैनी हैं अतः इनकी जैन धर्म में पूर्ण आस्था है। इन्होनें जैन धर्म के प्रख्यापन हेतु जैनमेघदूतम् की रचना की है। जिसमें इन्होनें जैनधर्म के २२ वें तीर्थकर श्री नेमि के जीवन चरित्र के आधार पर जैन धर्म के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते हुए जीवन के मूल्य एवं जीवन दृष्टि को दर्शाया है।

कवि ने 'मोक्ष' को ही जीवन की दृष्टि एवं जीवन का मूल्य समझा है। मोक्ष की प्राप्ति 'मि रत्न' के माध्यम से की जाती है ऐसा जैनदर्शन की मान्यता है। प्रसिद्ध जैन दार्शनिक उमा स्वामी का कहना है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चरित्र ही मोक्ष के साधन है।[१] ये तीनों मिलकर ही मोक्ष का साधन बनते है अलग-अलग नहीं। अतः ये त्रिरत्न कहे जाते हैं।

काव्य का नायक श्री नेमि के चरित्र में ये त्रिरत्न (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्र) की पूर्णतः प्राप्ति होती है।

१. सम्यग्दर्शन - सम्यग्दर्शन का तात्पर्य है सच्ची आस्था या श्रद्धा। हमे यथार्थ सच्ची आस्था के बिना नहीं प्राप्त हो सकता। अतः सम्यग्दर्शन ही सम्यग्दृष्टि उत्पन्न करता है। सम्यग्दर्शन के आठ अंग बतलाये गये हैंः-

२. निःशंकता - सत्यमार्ग के अपुसरण में साधक को निःशंक होना चाहिए। अपने गन्तव्य मार्ग पर तथा मार्गद्रष्टा पर अविचल विश्वास या अटूट श्रद्धा होनी चाहिए। काव्य मे श्री नेमि सत्य-मार्ग में निःशंक हैं, वे अपने माता-पिता एवं स्त्री धन-सम्पत्ति सभी कुछ त्याग की अटूट श्रद्धा से अपने गन्तव्य मार्ग पर बढ़ते जाते हैं।

---

[१] सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रमोक्षमार्गः - तत्त्वर्थाधिगमसूत्र १/१

(३) निःकाक्षिता - निःकाक्षिता सम्यग्दर्शन का प्रमुख अंग है। इसके अन्तर्गत साधक को निष्काम होकर साधना मे लगना चाहिए तथा किसी प्रकार के लौकिक सुख की इच्छा नहीं होनी चाहिए और साधक को निरीह होना चाहिए। जैनमेघदूतम् मे साधक निष्काम भाव से अपनी साधना मे लगे हुए है उन्हे अन्य किसी प्रकार की सुख की इच्छा नही है।

(४) निर्विचिकित्सा - साधक को मनुष्य के शारीरिक वैभव या दरिद्रता आदि पर ध्यान न देकर उसे उसके गुणों पर ही ध्यान देना चाहिए। यह भी सम्यग्दर्शन के प्रमुख अंग है।

(५) अमुद्धदृष्टि - साधक में इतना विवेक होना चाहिए कि वह कुमार्ग पर चलने वालो की बातो मे न आये तथा सन्मार्ग से विचलित न हो। काव्य के नायक श्री नेमि भी अपने जीवन पर्यन्त सन्मार्ग से विचलित नही हुए है।

(६) उपवृंहण - साधक को अपने गुणों को बढ़ाते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

(७) स्थिरीकरण - किसी भी प्रलोभन में पड़कर सन्मार्ग का त्याग नही करना चाहिए तथा अपनी स्थिति सुहृद करनी चाहिए। जैनमेघदूतम् में श्री नेमि माता -पिता तथा श्रीकृष्ण और श्री कृष्ण की पत्नियों द्वारा लाख कहने पर या प्रलोभन देने पर भी किसी प्रकार के प्रलोभन में नहीं आते हैं और सन्मार्ग का त्याग नहीं करते है वे निरन्तर मोक्ष की प्राप्ति मे लगे रहते है।

(८) वात्सल्य - साधक को अपने सहयोगी धर्मावलम्बियों से स्नेह करना चाहिए। श्री नेमि अपने सभी सम्बन्धियों के साथ स्नेह करते हैं परन्तु अपनी साधना में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाना चाहते हैं।

(९) प्रभावना - साधक को अपने सच्चे धर्म का प्रचार करना चाहिए। पॉच प्रकार की मिथ्यादृष्टि शंका, आकांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि, प्रशंसा तथा अन्यदृष्टि संस्तव से बचना चाहिए।

श्री नेमि जैन धर्म के प्रचार के लिए जैन धर्म के सभी सिद्धान्तों का पालन करते है साथ ही पाँचो मिथ्या दृष्टि से बचने का प्रयास करते है।

सम्यग्दर्शन के पश्चात् सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चरित्र के विषय मे संक्षेप मे उल्लेख करते है क्योकि इन तीनो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। इन त्रिरत्नो द्वारा ही मनुष्य मोक्ष मार्ग को प्राप्त कर सकता है।

सम्यज्ञान[१] - सम्यज्ञान तथा सम्यग्चरित्र में घनिष्ठ संबध है। सम्यज्ञान की उत्पत्ति मिथ्यादृष्टि के समाप्ति से होती है। जीव तथा अजीव के मूल तत्वो का ज्ञानप्राप्त करना ही सम्यज्ञान है अर्थात जीव तथा अजीव का भेद करना सम्यग्ज्ञान[२] से संभव है। इसी कारण सम्यग्ज्ञान मोक्ष का साधन माना गया है।

जैनमेघदूतम् के नायक श्री नेमि की मिथ्या दृष्टि समाप्त हो गई है। उन्हे जीव तथा अजीव के मूल तत्वो का ज्ञान है। तभी तो वे मोह उत्पन्न होने वाले कर्मो के बंधन में बॅधना ही नहीं चाहते है।

सम्यक्चरित्र - चरित्र के दो अंश है प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक प्रवृत्तिमूलक चरित्र बंधन का कारण है तथा निवृत्तिमूलक चरित्र मोक्ष का कारण है। प्रवृत्तिमूलक विहित कर्मो का वर्जन तथा निवृत्तिमूल विहित कार्यों का आचरण ही सम्यक चरित्र है। संक्षेप में सम्यक्चरित्र उसको कहते है जो

---

१ भारतीय दर्शन - डा. बी. एन. सिंह - डा. आशा सिंह

२ स्वपरान्तरं जानाति यः स जानाति इष्टोपदेश ३३

माना जा चुका है और जो जाना जा चुका है और जो कर्म मे परिणत किया गया हो।

अंहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह ये सम्यक्चरित्र के अंग है।

१- अंहिसाः- अहिंसा को जैन दर्शन मे परम धर्म माना गया है। अहिंसा ही परम धर्म, मानव का सच्चा धर्म, मानव का सच्चा कर्म मानने वाले केवल जैन लोग है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वैदिक संस्कृति की अपेक्षा श्रमण संस्कृति मे अहिंसा का अधिक महत्त्व है। वैदिक संस्कृति मे जीवो के प्रति दया का भाव रखना ही अहिंसा का अर्थ माना जाता है। परन्तु यज्ञ मे दिये गये निरीह पशु की बलि को हिंसा नहीं माना जाता उसे अहिंसा माना जाता है। जैन दर्शन में किसी को मारना तो दूर छोटे जीव को कष्ट पहुॅचाना भी हिंसा है।

जैन धर्म मे हिंसा के दो प्रकार बतलाये गये है- द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसा। किसी को कष्ट पहुॅचाने का भाव न होने पर भी यदि हिंसा हो जाय तो वह द्रव्य हिंसा है। इसके विपरीत किसी को घात पहुँवाने या कष्ट पहॅुचाने का भाव हो तो वह भाव हिंसा है। यर्थाथ में भाव हिंसा है। द्रव्य हिंसा भी हिंसा है परन्तु इसमे पाप नहीं लगता।

अर्थात् अहिंसा शब्द का अभिधार्थ है 'हिंसा' का त्याग और हिंसा मे मन, वाणी और कर्म तीनो से होने वाली हिंसा शामिल है। अहिंसा से तात्पर्य यह है कि किसी मनुष्य को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाएँ। परन्तु जैन धर्म व्यक्तिगत पक्ष को केवल वहीं तक महत्त्व देता है जहाँ तक उसकी नीति का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास है।

आचार्य मेरुतुङ्ग का दृष्टिकोण है कि मनुष्य को अपने जीवन में अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए। इस व्रत के पालन से मनुष्य अन्तिम

लक्ष्य तक पहुँचने मे सक्षम होता है। कवि ने काव्य मे अहिंसा धर्म का पालन भी किया है। श्री नेमि अहिंसा के परम पुजारी है। जैनमेघदूतम् के तृतीय सर्ग मे विवाह स्थल पर पशुओ के करूण कन्दन को सुनकर और यह जानवर कि इन पशुओ के मास से विवाह की शोभा बढ़ेगी। श्री नेमि अत्यन्त दुःखित होते है साथ ही यह संकल्प करते है कि 'मैं इन पशुओं को छुड़ाकर दीक्षा ग्रहण कर लूँगा।'

अन्ततः श्री नेमि मौत के डर के कारण कॉपते हुए तथा असह्यावस्था मे दीन होकर ऊपर देखने वाले उन पशु-पक्षियों को उसी प्रकार छुड़ा देते है जैसे राजा प्रसन्न होने पर सापराधी लोगो को छोड़ देता है।

'दीनोत्पश्यन् पुरवननभश्चारिणश्चारबन्धं

बद्धान बन्धैर्गलचलनयोर्वेपिनो मृत्युभीत्या।'[१]

यहॉ पर श्री नेमि ने अहिंसा धर्म का पूर्णतः पालन किया है।

२- सत्य - मिथ्या वचन का परित्याग तथा यथा दृष्टि, यथाश्रुत वस्तु के स्वरूप का कथन ही सत्य कहलाता है। सत्य केवल यर्थाथ स्वरूप का कथन ही नहीं वरन हित भी है। यदि भावना में अहित हो अथवा जिससे किसी को कष्ट पहुँचता हो तो वह सत्य वचन असत्य हैं। जैन दर्शन में सत्य का स्वतन्त्र स्थान नहीं वरन् सत्य अहिंसा की रक्षा के लिए बतलाया गया है। असत्य वचन के ४ प्रकार हैः-

(१) किसी सत् वस्तु के स्वरूप, स्थान, काल आदि के सम्बंध में झूठ बोलकर असत् उसे बतलाना।

(२) किसी असत् वस्तु के स्वरूप, स्थान, काल आदि के विषय में झूठ बोलकर उसे सत् बतलाना।

---

१ जैनमेघदूतम् ३/४४

(३) किसी वस्तु के यर्थाथ स्वरूप को छिपाकर कुछ दूसरा वर्णन कर देना।

(४) अहित, अमंगल, अप्रिय वचन बोलना।

काव्य के नायक श्री नेमि ने सत्य मार्ग का अनुसरण किया है। इन्होंने जीवन के वास्तविक सत्य को पहचाना है। वे झूठे संसार के बॅधनों में बॅधना नही चाहते है। माता-पिता द्वारा पाणिग्रहण हेतु बारम्बार आग्रह करने पर उन्हे मधुर वाणी मे यह कह कर प्रतीक्षा कराते है-

लप्स्ये लोकम्पृणगुणखनी चेतकन्नीतद्विक्ष्ये

ऽतीक्ष्णोक्तो त्याग मर्यत कियत्कालमेषोऽप्यलक्ष्यः।

अर्थात यदि मैं लोकप्रतिकारिणी शाम मार्दव, सन्तोष आदि गुणो के समान किसी कन्या को प्राप्त करूॅगा तो उसी से विवाह करूगाँ। इनके कथन का अभिप्राय है कि प्रीतिकारी गुणो से युक्त एक मात्र दीक्षा ही है समय आने पर उसी को ग्रहण करूॅगा।

यहॉ आचार्य ने जीवन व्यापी सत्य को स्वीकार किया है।

इसीप्रकार श्री नेमि कभी भी किसी को अहित, अमंगल अप्रिय वचन नही बोलते है। काव्य में श्री नेमि श्रीकृष्ण की पत्नियो का मन रखने के लिए राजीमती से विवाह करने को भी तैयार हो जाते है जबकि वे विवाह करना नहीं चाहते है। अतः वे उन्हें किसी प्रकार का अप्रिय बात बोलकर दुःखित नहीं करना चाहते है। इस प्रकार श्री नेमि ने सत्य का पालन किया है।

३- अस्तेय - सर्वथा और वृत्ति का त्याग करना अस्तेय कहलाता है। जैनदर्शन मे घन सम्पत्ति को मनुष्य का वाह्य जीवन कहा गया है। अतः धन सम्पत्ति का अपहरण हिंसा माना गया है। अस्तेय व्रत के निम्नलिखित अंग है

(१) स्वयं चोरी करना चोरी करने की प्रेरणा देना।

(२) चोरी का माल खरीदना।

(३) किसी को नाप तौल मे कम या अधिक देना।

(४) कम कीमत की वस्तु को अधिक मूल्य में बेचना।

(५) किसी असामन्य परिस्थिति से लाभ उठाने के लिए वस्तु के मूल्य मे वृद्धि।

उपरोक्त पॉच प्रकार की चौर वृत्ति से बचना ही अस्तेय है। आचार्य मेरूतुङ्ग ने जैनमेघदूतम् मे अस्तेय व्रत का प्रत्यक्ष रूप से कही भी वर्णन नहीं किया है क्योकि काव्य के नायक श्री नेमि जैनधर्म के २२वें तीर्थंकर है अर्थात् उनके लिए अस्तेय की परिकल्पना करना अपनी दृष्टिकोण में उचित नही समझते हैं। परन्तु अपरोक्ष मे हम अस्तेय का दर्शन करते हैं जैसे काव्य मे कवि ने अपरिग्रह का विस्तृत वर्णन किया है। अपरिग्रह अस्तेय व्रत के बिना असंभव है।

बह्मचर्यः- कामवासना का परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के अग्रलिखित अंग बतलाये गये है -

(१) दुराचारिणी स्त्रियो से बचना।

(२) अश्लील बातो का त्याग करना।

(३) शक्ति से अधिक भोग न करना।

(४) अप्राकृतिक मैथुन से बचना आदि।

संक्षेप मे अपनी स्त्री से संयोग तथा परायी स्त्री से वियोग दोनों ही ब्रह्मचर्य के अंग है।

काव्य मे श्री नेमि ने कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया है। श्री नेमि स्वप्न मे भी किसी स्त्री के विषय में नहीं सोचते हैं। यहाँ तक कि वे

पाणिग्रहण के लिए भी तैयार नही है। श्री नेमि की जितेन्द्रियता को देखकर प्रकृति भी आश्चर्य से सिर पीटने लगती है। इनके ब्रह्मचर्यव्रत को देखकर गान्धारी बोल उठती है कि जन्म से ही ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके आप ब्रह्म से ऊँचा कोई पद तो पाओगे नही और शादी कर लेने पर भी आप उस पद को प्राप्त करेगे ही। अतः 'एवमस्तु' कहकर आप हमसब को सुखी बनाओ, हम आपके पैरों पर गिरती हैं, हम सब आपकी दासी हैं ईश! उपयुक्त चाटुकारिता से हम लोगो को सुख तो दो।[१]

इसप्रकार श्री नेमि आजीवन अविवाहित रह कर कठोर ब्रह्मचर्य व्रत के नियम का पालन करते हैं।

अपरिग्रह - विषयासक्ति का त्याग ही अपरिग्रह है। स्त्री पुत्र धन सम्पत्ति आदि मे जो आसक्ति है वही ममत्व कहलाता है। इस ममत्व का त्याग ही अपरिग्रह है। मनुष्य विषयों की ओर स्वभावतः आकृष्ट होता है। वह सदा धन सम्पत्ति इन्द्रिय सुख को बढ़ाने वाले विषयों की ही चिंता करता है। यही परिग्रह का स्वरूप है सभी विषयों मे मैं परिग्रह बुद्धि का परित्याग ही अपरिग्रह है।

जैनमेघदूतम् के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में ही आचार्य मेरुतुङ्ग ने अपरिग्रह व्रत का पालन किया है। काव्य के नायक श्री नेमि मोक्ष पाने की इच्छा से अपनी कान्ता राजीमती का परित्याग कर देते है और सम्पूर्ण सम्पत्ति का भी वितरण करके तपस्या के लिए रैवतक पर्वत पर चले जाते हैं।

कश्चित्कान्तामविषयसुखानीच्छुरत्यन्तधीमा

नेनोवृत्तिं त्रिभुवनगुरूः स्वैरमुज्झाञ्चकार।

---

१ जैन मेघदूतम् ३/१५
गान्धारी ------------------------**राज्यमप्याप्यमीश।**

दानं दत्त्वासुरतरुरिवात्युच्चधामारुरुक्षुः

पुण्यं पृथ्वीधरवरमथो रैवतं स्वीचकार।।[१]

इस प्रकार आचार्य मेरुतुङ्ग ने सम्यग्चरित्र के प्रत्येक बिन्दु का काव्य मे चित्रण किया है।

निष्कर्षतः हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि आचार्य मेरूतुङ्ग की जीवन दृष्टि जैन धर्म पर आधारित है। इन्होने जैनमेघदूतम् के माध्यम से अपने इस दृष्टिकोण को दर्शाया भी है।

आचार्य ने जैन दर्शन के एक-एक अंग के आधार पर श्री नेमि के चरित्र का वर्णन किया है! जैनमतानुसार जीवन का मूल्य मोक्ष है। यह मोक्ष त्रिरत्नो से ही प्राप्त हो सकता है। ऐसा आचार्य मेरूतुङ्ग ने इस काव्य में इंगित किया है। यही जैन धर्म का भी मत है।

---

१ जैनमेघदूतम् १/१

अष्टमोऽध्यायः

मूल्यांकन

जैनमेघदूतम् का मूल्यांकन

जैनमेघदूतम् आचार्य मेरुतुङ्ग की काव्य प्रतिभा का ज्वलंत निदर्शन है। सन्देशकाव्य का आदर्श उदाहरण स्वरूप यह काव्य अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति दोनो के रुचिर चित्रण मे अपूर्व है। यह चार सर्गों के लघु कलेवर का होने पर भी जीवन के मूल रहस्यों का सन्देश देने मे समर्थ रचना है। कवि ने एक विशेष उद्देश्य तत्त्वज्ञान के प्रतिपादन को लेकर इस काव्य कृति की रचना की है और वे इसमे सफल भी हुए है। काव्य मे भावो का नैसर्गिक प्रवाह है। श्री नेमि के चरित्र के प्रति आचार्य की प्रगाढ़ श्रद्धा है। यह श्रद्धा इनके काव्य की मार्मिकता और मनोहरता के लिए उत्तरदायी है। घटनाओं के वर्णन मे कवि जितना कुशल और जागरूक है उतना ही श्लाघनीय हैं। भावो के चित्रण मे भी उतना ही दक्ष और सम्वेदनशील है। हृदय पर सद्यः प्रभाव उत्पन्न करने वाली स्पृहणीय उपमाओ के प्रयोग से अनेक वर्णन अत्यन्त स्वभाविक और प्रभावपूर्ण हो गये हैं; चाहे वे अन्तः प्रकृति के हो चाहे बाह्य प्रकृति के। आचार्य ने व्यावहारिक जगत से ही अपनी उपमाएँ गृहीत नहीं की, अपितु अध्यात्मिक व शास्त्रीय उपमाओं का भी कुशल प्रयोग किया है। इतनी सच्ची परख होने पर भी आचार्य द्वारा उपमाओं के प्रयोग में कहीं-कहीं असावधानी हो गई है जिससे काव्य मे अधिकोपमा दोष तथा हीनोपमा दोष दृष्टिगत होता है। जैसे एक स्थान पर कवि ने नायक के अङ्गो का वर्णन नीचे से ऊपर की ओर किया है जबकि कवि परम्परा में अङ्गों की सुन्दरता का वर्णन ऊपर से नीचे की ओर किया जाता है -

पद्मं पद्भ्यां सरलकदलीकाण्ड ऊर्वोर्युगेन

स्ववाहिन्याः पुलिनममलं नेमिनः श्रोणिनैव।

शोणो नाभ्याञ्चति सदृशतां गोपुरं वक्षसा च

छुद्रो शाखानवकिशलयो बाहुपणिद्वयेन।।[१]

पूर्णेन्दुः ----------------उपमाधिक्यदोषस्तथापि।[२]

अर्थात् कमल उनके चरणो के कदलीस्तम्भ उनकी उरूओं के गङ्गा का तट उनकी कटि के शोण उनकी नाभि के, प्रतोलीद्वार (तोरण) उनके वक्ष के, कल्पवृक्ष की शाखा उनकी भुजा के और उसके किसलय उनके करों के, पूर्णचन्द्र उनके श्री मुख के, कमलपात्र उनके नेत्रो के, पुष्प सुगन्ध उनके मुखामोद के और उत्तम रत्न उनके शरीर के सदृश है।[३]

नेमि के सुन्दर वदन से पूर्णचन्द्र का, नेमि के नेत्रों से कमल दल का तथा नेमि के शरीर से रत्न का साम्य है। (यदि विद्वज्जन कही भी वर्णनीय पदार्थ समूहो की भगवान के अङ्गो द्वारा उपमा देते है तो भी उपमाधिक्य दोष होता है)।[४]

जहॉ काव्य में उपमेय की अपेक्षा उपमान अधिक हीन प्रतीत होने लगता है तो वहॉ पर हीनोपमा दोष आ गया है उदाहरणार्थ-

त्वं जीमूत। प्रथितमहिमानन्यसाध्योपकारैः

-------------जगज्जन्तु जीवातुलक्ष्म्यै।[५]

अर्थात हे जीमूत। जो उपकार अन्यों के लिए असाध्य है उन उपकारों के करने के कारण आप विख्यात महिमा वाले है आपको देखकर ऐसा कौन है जो अपनी दृष्टि को फैली हुई हथेली के सदृश विशाल नहीं बना देता है

---

१ जैनमेघदूतम् १/२३

२ वही १/२४

३ जैनमेघदूतम् १/२३

४ वही १/२४

५ जैनमेघदूतम् १/१२

आपने अपने दान से उन प्रसिद्ध कल्पवृक्ष और चिन्तामणि को भी नीचे कर दिया है, जगत के जीवन की लक्ष्मी को धारण करने आपको कौन नही चाहता।

आचार्य मेरूतुङ्ग मानव मनोविज्ञान के सम्वेदनशील ज्ञाता है। आचार्य ने नायिका की भावनाओ का वर्णन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक रीति से किया है।

प्रायः देखा जाता है कि आसमान मे काले मेघो के आते ही समस्त जीव-जन्तु प्राणी आदि प्रसन्न हो जाते है। यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इसी मनोवैज्ञानिकता को कवि ने काव्य मे व्यक्त किया है। एक स्थान पर आचार्य मेरूतुङ्ग ने विरह सन्तप्त मानव चित्त को दुःखी करने वाले मेघ के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को 'एकं तावद्विरहिहृदयद्रोहकृन्मेघकालो'[१] यह कहकर स्पष्ट किया है।

इसी प्रकार विरहिणी स्त्रियों को इस मेघकाल में होने वाले कष्ट का जैनमेघदूतम् मे कवि ने अति मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है- "वर्षाकाल में स्वभाव से ईष्यालु स्त्रियॉ अपने शोक को उत्पन्न करने वाले मेघ से जो ईर्ष्या करती है, वह ठीक ही है। क्योकि नीलतुल्य जब यह मेघ श्याम वर्ण हो जाता है, तो वे भी मुख को श्याम बना देती है। जब यह मेघ बरसता है तो वे भी अश्रु बरसाती हैं। यह मेघ गरजता है, तो वे भी चातुर्यपूर्ण कटु-विलाप करती है और जब यह मेघ विद्युत चमकता है तो विरहिणी भी उष्ण निःश्वास छोड़ती है। [२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने मेघागमन से प्राणियों पर होने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों का सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है।

---

१ जैनमेघदूतम् १/४

२ जैनमेघदूतम् १/६

इस काव्य मे प्रकृति का वर्णन अत्यन्त सजीव और हृदयावर्जक है। आचार्य की सूक्ष्म दृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यो को सावधानी से हृदयंगम किया है। इन्होंने ग्रीष्म, शरद एवं वसन्त ऋतु का वर्णन इतना सजीव किया है कि वे हमारे नेत्रो के सामने सजीव हो उठती है। मनुष्य तथा प्रकृति का मंजुल साहचर्य तथा दोनो मे अद्भुत एकात्मता दिखाकर कवि ने मानव और प्रकृति को परस्पर पूरक रूपे में चित्रित किया है। आचार्य ने प्रकृति के हृदय के प्रत्येक स्पन्दन को पहचाना है। इस काव्य में कवि ने जितने भी उपमान दिये है। उनमे से अधिकांश प्रकृति जगत से गृहीत है।

अलंकार की दृष्टि से यह काव्य उच्चकोटि का है। अलंकार निरूपण मे आचार्य मेरुतुङ्ग अति निपुण हैं। जैनमेघदूतम् में नियोजित अनेकविध अलंकार उनकी काव्यप्रतिभा के निदर्शन हैं। काव्य में प्रत्येक अलंकार अपने आप मे एक विशेष चमत्कृति रखता है। प्रायः जैनमेघदूतम् का प्रत्येक श्लोक चार पाँच अलंकारों के गुच्छक से अलंकृत है। आचार्य अलंकार प्रतिभा में सिद्धहस्त है, तभी तो एक ही श्लोक में सात आठ अलंकारों के समूह से सन्निवेश होने पर भी उस श्लोक का मूल भाव और शिल्प नष्ट नहीं होने पाया है, उदाहरणार्थ-

'वाता वाद्यध्वनिमजनयन् वल्गु भृङ्गा अगायं -
स्तालान् दध्रे परभृतगणः कीचका वंशकृत्यम् ।
वल्ल्यो लोलैः किशलयकरैर्लास्यलीलां च तेनु-
स्तद्भक्त्येति व्यरचयदिव प्रेक्षणं वन्यलक्ष्मीः।।'[१]

यहाँ पर अप्रकृति से प्रकृति की उपमा दी जाने के कारण अतिशयोक्ति अलंकार; किसलय और कर में अभेद होने के कारण रूपक अलंकार;

---

१ जैनमेघदूतम् २/१४

'तेनुस्तद् भक्त्येति' इस क्रिया का एकत्व होने के कारण दीपक अलंकार, श्लोक के पूरे भाव मे उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा अलंकार; 'वनलक्ष्मी' इस श्लेषयुक्त विशेषण द्वारा अपकृत का कथन होने से समासोक्ति अलंकार; 'वल्ल्यो लोलैः किसलयकरैर्लास्यलीला' मे अनुप्रास अलंकार तथा उपर्युक्त अलंकार के संयोग से संकर अलंकार समाविष्ट हो रहा है।

इसप्रकार सात-आठ अलंकारो का समावेश होने पर भी इस श्लोक का भाव खण्डित नहीं हुआ है आचार्य मेरुतुङ्ग का श्लेष भी प्रशंसनीय है। किन्तु कही-कही अत्यन्त क्लिष्ट हो जाने से काव्य मे दुरूहता आ गई है। फिर भी सामान्यतः आचार्य की अलंकार योजना सुन्दर और प्रभावोत्पादक है और अपने अलकृत काव्य शिल्प द्वारा जैनमेघदूतम् ने साहित्य जगत में महती प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा अर्जित की है।

रस की दृष्टि से यदि हम इस काव्य का मूल्यांकन करें तो हम देखते है कि आचार्य मेरुतुङ्ग जैन मतावलम्बी कवि होने के कारण अन्य जैनकवियों की ही भाँति शृङ्गार के उभय पक्षों को चरम बिन्दु पर पहुँचाकर भी काव्य का पर्यवसान शान्त रस में ही करते हैं। शान्त रस राग द्वेष से ग्रस्त मानव समाज को शाश्वत आनन्द की प्राप्ति कराने की क्षमता रखता है। कवि का भी मूल उद्देश्य यह है, इसीलिए शृङ्गार के दोनो पक्षों की प्रमुखता देते हुए अन्त में उसका पर्यवसान इन्होंने शान्त रस में किया है। इस काव्य का प्रधान रस विप्रलम्भ शृङ्गार ही है। यह रस प्रिय वियोग से व्यथित नायिका की मनः स्थिति को तो स्पष्ट करता है साथ ही सांसरिक भोगों के प्रति उसकी विरक्ति को भी प्रदर्शित करता है। काव्य मे प्रमुख रूप से शृङ्गार तथा शान्त रस एवं कुछ स्थल पर वीर रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है।

काव्य शिल्प की दृष्टि से यदि काव्य का अवलोकन करें तो हम देखते हैं कि कवि ने जिस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति की है, उन्हीं के अनुकूल

रस का प्रयोग किया है और रस के सम्यक परिपाक मे सहायक गुणो का ही प्रयोग किया है।

जहॉ शृङ्गार रस और शान्त रस का प्रसंग है वहाँ कवि ने माधुर्य गुण का समावेश किया है क्योंकि माधुर्य गुण युक्त शब्दावली अत्याधिक कोमल होती है।

जहॉ काव्य मे वीरता और उग्र भाव का प्रदर्शन करना है, वहाँ कवि ने ओज गुण का सहारा लिया है। जहॉ भाव और भाषा की सहज सम्प्रेषणीयता अभीष्ट है। वहाँ कवि ने प्रसाद गुण का आश्रय लिया है। शायद कवि ने काव्य को माधुर्य गुण से विभूषित करने के लिए ही काव्य की भाषा को व्यञ्जना सिक्त कर दिया है, सुन्दर वाक्य विन्यास तथा अलंकारों की झडी लगा दी है। इस प्रकार कवि ने तीनों गुणों का कुशल प्रयोग कर काव्य की प्रभावोत्पादकता बढ़ा दी है।

"भाषा पुष्प है तो शैली उसकी सुरभि है।" अतः भाषा और शैली का परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध है। कवि मेरूतुङ्ग की काव्य भाषा प्रायः क्लिष्ट है। विन्यास भी समासाकुल है। ग, ध, छ, ड, भ जैसे महाप्राण वर्णो का अनल्प प्रयोग है, साथ ही अनुप्रास अलङ्कार का भी प्रचुर प्रयोग है, अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि द्वारा मुख्यतः गौडी रीति का ही प्रयोग किया गया है। वैदर्भी तथा पञ्चाली रीतियो का भी यत्र-तत्र दर्शन हो जाता है।[१]

आचार्य मेरुतुङ्ग भाषा के सम्राट है। शब्दों पर उनकी अद्भुत प्रभुता है। इनके काव्य में कुछ ऐसे शब्द मिलते है जिनका प्रयोग साहित्य में सामान्य रूप से देखने को नही मिलता है। ऐसे प्रयोग आचार्य ने सम्भवतः अपने भाषा पर अधिकार को प्रदर्शित करने के विचार से ही किये हैं; तभी तो उन्होने ऐसे शब्दों को अपने काव्य में प्रयुक्त किया है जिनके अर्थ किसी

---

१ जैनमेघदूतम् २/१२

प्रमुख कोश में खोजने पर भी नहीं मिलते। जैसे अमा,[1] हल्लीसक, खरू, वशा आदि कवि ने कहीं-कहीं अत्यन्त रम्य कल्पनाओं को भी बड़ी दुरूह भाषा मे प्रस्तुत किया है।[2]

चरित्र निर्माण की दृष्टि से यदि काव्य का मूल्यांकन किया जाय तो हम देखते है कि आचार्य ने पात्रो को इतनी सजीवता के साथ चित्रित किया है उनकी मञ्जुल मूर्ति हमारे नेत्रो के समक्ष उपस्थित हो जाती है।[3] काव्य के नायक श्री नेमि का चरित्र काव्य का प्रमुख चरित्र है। वे काव्य नायक है। ये जैनधर्म के २२वें तीर्थंकर हैं। ये आदर्श व्यक्तित्व के स्वामी हैं। इनका व्यक्तित्व सुन्दर और प्रभावशाली है। इनमें वे सभी गुण विद्यमान है जो एक आदर्श योगी में मिलते हैं। इनका स्वभाव विनोदी है। साथ ही ये अत्यन्त पराक्रमी भी हैं। काम वासना इनके अन्दर रंच मात्र भी विद्यमान नहीं है, तभी तो अत्यन्त सुन्दरी और गुणवती राजकुमारी राजीमती को त्यागकर और अपनी सम्पत्ति का दान करके तपस्या के लिए रैवतक पर्वत पर चले जाते हैं। श्री नेमि जागरूक है। श्री नेमि अत्यन्त वैराग्यवान महापुरूष हैं और सांसारिक प्रलोभन इन्हे आत्म-साक्षात्कार के संकल्प से डिगा नहीं पाते। इन पर अपने चचेरे भाई श्री कृष्ण तथा उनकी पत्नियों द्वारा की जाती हुई नाना प्रकार की जल क्रीड़ाएॅ, बसन्त का आगमन तथा राजीमती के उपालम्भ और अश्रुओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

दूसरी पात्र के रूप में काव्य की नायिका राजीमती के चरित्र का अङ्कन करके आचार्य ने नारी जाति की प्रतिष्ठा की है। आचार्य ने राजीमती के चरित्र को सर्वोच्च शिखर पर असीन कर यह आदर्श प्रस्तुत किया है कि नारी केवल भोग-विलास की वस्तु नहीं है वह सच्ची जीवन सङ्गिनी है। वह मोक्ष

---

१ वही २/१६

२ जैनमेघदूतम् २/२५

३ वही २/४

रूप जीवन के चरम लक्ष्य प्राप्त करने की सामर्थ्य रखती है। राजीमती विदुषी है। उसे साहित्य, दर्शनशास्त्र आदि का अच्छा ज्ञान है। उसका हृदय कोमल भावनाओं से भरा हुआ है। वह दया, करूणा, प्रेम, सहानुभूति आदि गुणो से युक्त है। वह अतिथि-सत्कार में कुशल है। वह एक पतिव्रता नारी है; एक बार श्री नेमि को पति के रूप मे वरण करने के बाद अन्य किसी पुरूष से विवाह करने के लिए तैयार नहीं होती है।

राजीमती का चरित्राङ्कन करते समय कवि मानव-मन में अपनी गहरी पैठ का परिचय देते है। प्रथम मेघ दर्शन पर राजीमती की उक्तियो के द्वारा वे विरहिणी स्त्री की भावनाओं और चेष्टाओ तथा मेघ के बीच उपस्थित भाव-संवाद को बड़ी मनोवैज्ञानिक पकड़ के साथ उभारते है।

राजीमती का चित्रण उन्होंने भावुक किन्तु बुद्धिमती स्त्री के रूप में किया है। स्वामी के वैराग्य से दुःखी और मर्माहत वह उन्हें तरह-तरह से समझाने का प्रयत्न करती है। उनके जीवन में अपना स्थान और महत्व वह अनेक तर्कों से सिद्ध करती है।

जैनमेघदूतम् मे इन दो प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियो के चरित्र हमारे सामने आते हैं। श्रीकृष्ण श्री नेमि के चचेरे भाई थे। इन दोनो मे अत्यधिक स्नेह थे। आचार्य ने काव्य में श्री कृष्ण के व्यक्तित्व को बहुत छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से उभारा है। काव्य में श्री कृष्ण विद्वान, दयालु, विनम्र, बलशाली, रसिक और आकर्षक पति की भूमिका में आते है। ये गृहस्थ आश्रम के साथ-साथ मानव जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करने मे विश्वास रखते हैं। श्रीकृष्ण अत्यन्त सहृदय हैं और किसी को दुःखित नहीं देख सकते।

श्री कृष्ण की पत्नियों का चरित्र स्वभाविकता के साथ चित्रित है। ये पतिव्रता नारी है। ये अपने पति की आज्ञा की अवहेलना नहीं करती। श्री

कृष्ण की आठो पत्नियाॅ विदुषी है; उन्हे अध्यात्मिक दार्शनिक, साहित्यिक सभी प्रकार के विषयों का ज्ञान है। ये अपने देवर श्री नेमि से अत्यधिक प्रेम करती है। ये सभी मिलकर श्री नेमि से जल-क्रीड़ा करती हैं और उन्हे राजीमती का पाणि ग्रहण करने के लिए तैयार करने के लिए चेष्टा करती हैं।

काव्य में अन्य पात्रो के रूप मे श्री नेमि के माता-पिता भी हैं। इनके पिता का नाम श्री समुद्र और माता का नाम शिवा देवी है। श्री समुद्र राजाओ मे श्रेष्ठ है और दशो दिशाओ के स्वामी हैं। वे अत्यन्त धार्मिक और बलशाली है। इनके राज्य मे इनकी प्रजा सुखी है। अपने पुण्य कर्मों के कारण ये सदैव विजय को प्राप्त करते है। ये अति प्रकृष्ट बुद्धि वाले हैं। शिवा देवी और श्री समुद्र का हृदय वात्सल्य प्रेम से भरा हुआ है; श्री नेमि के माता पिता प्रमदवन मे युवतियो के साथ क्रीड़ा करते हुए यदुकुमारों को देखकर भाव विह्वल हो जाते हैं। उन्हे पाणिग्रहण करने का आग्रह करते हैं। श्री नेमि के माता-पिता को अपने पुत्र का विवाह देखने की अत्यधिक लालसा है।

इस प्रकार आचार्य की तूलिका से चित्रित पात्र पाठकों के चित्त पर अपना अमिट प्रभाव डालते है। सच्चा कवि वही है जो संसार का विविध अनुभव प्राप्त कर उनके मार्मिक पक्ष के ग्रहण में समर्थ होता है; और इस कसौटी पर कसने से आचार्य मेरुतुङ्ग का दूतकाव्य 'जैनमेघदूतम्' खरा उतरता है।

सहायक-ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूचनिका

अग्निपुराण — महर्षि व्यास, प्रकाशन संस्कृत संस्थान, बरेली, द्वितीय संस्करण, १९६९

अभिनव रस सिद्धान्त — लेखक- डॉ० दशरथ द्विवेदी, प्रकाशन- विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९७३

अभिज्ञान शाकुन्तलम् — कालिदास प्रकाशन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी प्रथम संस्करण, १९७०

अमरकोश — सम्पादक हरगोविन्द शास्त्री, प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१ प्रथम संस्करण १९७०

अलंकार सर्वस्व — राजानकरूपयक, प्रकाशन चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९७१

अलंकारों का क्रमिक विकास — पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६७

आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प — लेखक- मोहन अवस्थी, प्रकाशन हिन्दी परिषद्, प्रथम संस्करण, १९६२

उत्तररामचरितम् — भवभूति, सम्पादक- जनादनशास्त्री, प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६३

उत्तरपुराण — आचार्य गुणभद्र, संस्कृत अनुवादक पं० पन्नालाल

	साहित्याचार्य एकोसप्ततिमयवर्ष
ऋग्वेद	प्रकाशन संस्कृति संस्थान, बरेली, १९६२
कालिदास की अमर कृतियाँ	लेखक- वी०पी० भास्करशास्त्री प्रकाशक सुखपाल गुप्त, आर्य बुक डिपो, करौल बाग दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६२
कालिदास का सौन्दर्यबोध	लेखक- डॉ० शंकरदत्त ओझा, प्रकाशन अग्रवाल शिवाजी मार्ग, लखनऊ
काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट, व्याख्या आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशन ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६०
कालिदास की अमर कृतियाँ	लेखक बी०पी० भास्कर शास्त्री, प्रकाशक सुखपाल गुप्त, आर्य बुक डिपो करौल बाग दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७२
कालिदास के सौन्दर्य लिद्धान्त और मेघदूत	अर्चना प्रकाशन प्रथम संस्करण १९६४
कालिदास के साहित्य में विम्ब विधान	लेखक भवानी दत्त काण्ड पाल, प्रकाशक शब्द श्री प्रकाशन शोध प्रबन्ध एवं दुर्लभ साहित्य के प्रकाशक सप्तलासस शहीद भगतसिंह मार्ग, आगरा प्रथम संस्करण १९८५
कालिदास के काव्य	लेखक रामप्रताप त्रिपाठी, प्रकाशन किताब महल (प्ता०) लिमि०, इलाहाहाबाद प्रथम संस्करण १९६६
कालिदास की लालित्य योजना	लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रथम राजकमल प्रकाशन

लि०, ८ फौज बाजार, दिल्ली-६, वि०सं० १९६०

कालिदास के काव्य में ध्वनितत्त्व लेखक डॉ० मजुंला जायसवाल, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

कालिदासीय मेघदूतम् सम्पादित वी०जी० परांजपे, प्रकाशन डेकन बुक स्टाल, फार्ग्युसन कालेज रोड, पूना, द्वितीय संस्करण, १९४१

काव्यादर्श दण्डी कपि, प्रकाशन श्री कमलमणि ग्रन्थमाला कार्यालय, वाराणसी वि०सं० १९३८

काव्यालंकार रूद्रट, व्याख्या रामदेव शुक्ल, प्रकाशन- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६६

काव्य एवं काव्यरूप लेखक डॉ० जगदीश प्रसाद कौशिक, प्रकाशक ग्रन्थ विकास सी-३६ राजपार्क, आदर्शनगर, जयपुर, प्रथम संस्करण १९८७

चार तीर्थकर लेखक पं० सुखलाल संघवी, संपादक डॉ० सागरमल जैन, प्रकाशक पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी, आइ०टी०आई० रोड, द्वितीय संस्करण १९८९

छन्दोमञ्जरी गंगादास, 'प्रभा' व्याख्यासहित, प्रकाशक चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी

जिनरत्नकोश हरिदामोदर वेलणकर, प्रकाशन-भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना, १९४४

जैनग्रन्थावली प्रकाशक- श्री जैन श्वेताम्बर कांफ्रेंस, बम्बई, वि. सं. १९६५

जैनमेघदूतम्	आचार्य मेरुतुङ्ग प्रकाशक- श्री जैन आत्मानन्दसभा, भावनगर, सन् १२२४
जैन साहित्य का बृहद इतिहास भाग २	लेखक- डा० जगदीश चन्द्र जैन व डा० मोहन लाल मेहता, प्रकाशक- पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैनाश्रम हिन्दी युनिवर्सिटह। प्रथम संस्करण १९६९
जैन धर्म के ऐतिहासिक रूप रेखा	लेखक- डा० झिनकू यादव, दिग्विजय सिंह एम. ए. (शोध छात्र) प्रकाशक- इण्डिक अकादमी, भारतीय संस्कृति साहित्य के प्रमुख प्रकाशक एवं विक्रेता वराणसी, प्रथम संस्करण १९८१ ई.
जैन साहित्य का बृहद इतिहास भाग ६	लेखक- श्री गुलाबचन्द चौधरी प्रकाशक- पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणसी-५
जैन सिद्धान्त भास्कर भाग २ (पत्रिका)	लेखक- श्रीयुत चिन्ताहस्ता चक्रवर्ती एम. ए. काव्यतीर्थ आरा द्वारा प्रकाशित विक्रम संतव १९९६
जीवन ज्योति	लेखक- श्री गुणसागर सूरिश्वर जी.म.साहेब, मेरुत्रयीदशी प्रकाशक- आर्यरहित जैन तत्व ज्ञान विद्यापीठ द्वारा संचालित, श्री कल्याण सागर सूरि ग्रन्थ, प्रकाशक केन्द्र वी. सं. २०३८,आर्य सं. ८०३
दशरूपकम्	धनिककृयाऽवलोक व्याख्यया समेतम् , (समीक्षात्मक भूमिका भाषानुवाद व्याख्या टिप्पणी सहित) सम्पादक- डा० श्री निवास शास्त्री प्रकाशक- शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक, सुभाषा बाजार